प्रकाशक—
अध्यक्ष,
हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद्
चौक, जौनपुर, उ० प्र०

संस्करण—जनवरी १९६० ई०
मूल्य—पाँच रुपए
५.००

मुद्रक—
श्रीकाशीनाथ
श्रीसीताराम प्रेस,

हिन्दी-काव्य साहित्यके [illegible] भक्ति-साहित्यका वही स्थान है, जो शरीरमें हृदयका [illegible] हृदयकी महत्ताको कम करना सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्वके साथ अन्याय करना है। जहाँ करुणा नहीं, कोरा तर्क है, वहाँ रसोंकी निष्पत्ति सम्भव नहीं। जहाँ रस नहीं, वहाँ साहित्य-सर्जना कैसे होगी? 'रसोवैसः' के सिद्धान्तका आखिर कुछ तो अर्थ है ही।

भारतीय सांस्कृतिक-जीवनमें देशव्यापी भक्ति-आन्दोलनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। सामाजिक-जीवनकी संजीवनी शक्ति, प्रेरणा तथा पराभवमूलक तत्वोंसे हटकर मुकाबला करनेका बल भक्ति-आन्दोलनने ही प्रदान किया था। हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें भक्ति-आन्दोलनसे प्रभावित महान तत्वज्ञों, दार्शनिकों और समाज-हितचिन्तकोंकी कृतियोंका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, और इनमें भी गोस्वामी तुलसीदास तथा भक्तिशिरोमणि सूरदासका स्थान सर्वोपरि है। इसी प्रकार सन्त-परम्परामें कबीरका स्थान सर्वोच्च है। भक्ति और सन्त आन्दोलनोंसे अलग हटकर समन्वय-मूलक (?) सूफी आन्दोलन चला, जिसका सबसे सुन्दर निखार मलिकमुहम्मद जायसीकी रचनाओंमें हुआ। कबीर, सूर, जायसी और तुलसी इन चारों महाकवियोंका युग प्रायः डेढ़ सौ वर्षके अन्दर समाप्त हो जाता है, परन्तु इस युगमें जिस प्रकृष्ट-साहित्य-की रचना हुई, वह सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्यके सौभाग्य-सिन्दूरकी [illegible] भी जगमगा रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थमें कबीर, जायसी, [illegible] साहित्यका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है

हिन्दीके विख्यात कवि एवं लेखक

अगाध श्रद्धाके पात्र

श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी

को

सादर सप्रेम समर्पित।

—सत्यदेव चतुर्वेदी

और उनका युग, ८—मानसकी रचनाके बाह्य उपकरण, ९—धार्मिक दृष्टिकोण, १०—मानसमें भावपक्ष और शब्दशिल्प, ११—कविकी अन्य राम-कथा संबन्धी रचनाएँ—(अ) दोहावली, (आ) कवितावली, (इ) गीतावली और (ई) विनय-पत्रिका, १२—तुलसीकी राम-कथाकी दार्शनिक पृष्ठभूमि—(१) राम-नामके विविध अर्थ, (२) राम और विष्णुका रहस्य, (३) दार्शनिक भावना, १३—भाषा सम्बन्धी विचार १४—भाषा सम्बन्धी अन्य विचार

४—महात्मा सूरदास (कृष्ण-काव्य) पृ० २२० से २४४

१—कृष्ण-भक्तिकी परम्परा, २—मत-सिद्धान्त और दार्शनिक पृष्ठ-भूमि, ३—कवि और रचनाएँ, ४—महात्मा सूरकी रचनाएँ, ५—रस-निरूपण, ६—भक्तिभावना, ७—भाषा और उसपर अधिकार ८—कृष्ण-काव्यका प्रसरण ।

———

भारतीय उपासनाकी परम्परा

भारतीय मनीषाने अपनी चिन्ताधाराके प्रथम विकासकालमें समग्र परिवर्तनशील ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जिस तत्वको शाश्वत समझा, उसका नाम 'ब्रह्म' घोषित किया। यही 'ब्रह्म' जिज्ञासाका विषय बना। इसी परमतत्वकी अनुभूति तथा बोध हमारी चिन्ताधाराका साध्य हुआ। इसी साध्य परमतत्वकी प्राप्तिके निमित्त, कर्म, ज्ञान और भक्ति तीन साधना मार्गोंका विधान हुआ।

भारतीय सनातन प्रजाकी धार्मिक साधना—ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड—की परम्परा वेदोंसे चली आ रही है। धर्म-प्रवर्तक मूल पुरुष पितामह ब्रह्माको सर्वप्रथम उत्पन्नकर परमपिता-परमेश्वरने जिस ज्ञानको प्रदान किया, उस पूर्ण ज्ञानको 'वेद' कहा जाता है। भारतीय विचारकोंका कथन है—विशुद्ध ज्ञानमात्र 'वेद' है, तब शुद्धान्तःकरण महात्माओंके समस्त उपदेश वेद क्यों नहीं मान लिए जाते? इसका उत्तर है कि महापुरुषोंका ज्ञान विशुद्ध होनेपर भी इसलिए वेद नहीं कहा जाता कि वह वस्तुतः मूल ज्ञान नहीं है। वह ज्ञानकी पुनरुक्तिमात्र है। आदि सृष्टिमें जो ईश्वरीय ज्ञान मानवको प्राप्त हुआ, उस ज्ञानमें कुछ वृद्धि नहीं हुई—वृद्धि हो भी नहीं सकती, क्योंकि वह सर्वथा पूर्ण ज्ञान है; जैसे पात्रमें भरा गंगाजल यद्यपि विशुद्ध गंगाजल है, फिर भी वह गंगाजी नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें मनुष्य जो अनन्त ज्ञानराशि पाता है, वह मनुष्यके हृदयकी एकमात्रका प्रयत्न नहीं है, वह ईश्वरकी ओरसे आया ज्ञान है, अतः वेद केवल पूर्ण अपौरुषेय ईश्वरी ज्ञानको ही कहते हैं।*

---

* देखिए 'कल्याण' का 'हिन्दू संस्कृति अंक' पृ० २६५ गीता गोरखपुर।

सुविधानुसार ऋषियोंने फेरफार किया है। इसी सम्पादनक्रमसे शाखाएँ बनीं, किन्तु ऐसा होने पर भी न तो एक मात्रा घटायी गयी और न बढ़ी।*

परमार्थी ऋषियोंकी इस परम पुनीत भावनाने कालान्तरमें वेदकी ज्ञानराशिको सर्वसाधारण तक पहुँचानेका जो प्रयत्न किया, उसीके फल-स्वरूप, आरण्यकों, संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों आदिकी सृष्टि हुई। भिन्न-भिन्न ऋषियोंके विचार और अनुभूतियाँ जब वाणी-रूपमें प्रस्फुटित हुईं अर्थात् जब सूक्ष्म तत्व स्थूल वाणीका विषय बना, तब जिस रूपमें तत्व-बोध हुआ था, उस रूपमें ज्योंका-त्यों वह तत्व न रहकर वाणीके माध्यमसे सर्वसाधारण तक आते-आते कुछ बदला और अन्य जिज्ञासुओंके ग्रहण करते-करते कुछ और भी हो गया। कालान्तर-में इसी प्रकार विस्तार पाते-पाते अनेक दर्शन और अनेक साधना-मार्ग स्थिर हो गए। ऋषियों द्वारा वैशेषिक; न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा आदि दर्शन प्रचलित हुए। इनमें कुछ-न-कुछ बाह्य दृष्टिसे अन्तर अवश्य है; किन्तु तात्विक दृष्टिसे सबमें समानता है। कालान्तरमें अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैत-वाद, अचिन्त्य भेदाभेदवाद, शैव-दर्शन, पाशुपत दर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन, शिवाद्वैत, लकुलीश-पाशुपत-दर्शन और शक्ति-दर्शन तथा कुछ अन्य दर्शनभी हैं, जो विभिन्न विचारकों द्वारा प्रवर्तित हुए।

वेदोंके दो भाग हुए, जिनके नाम ब्राह्मण और मन्त्र हैं। ब्राह्मण भागमें मंत्रोंका अर्थ निर्णीत है। यज्ञ सम्बन्धी अनुष्ठानोंके विस्तृत विवरण इसमें मिलते हैं और बहुतमें उपाख्यान पाए जाते हैं। ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण-भागका संकलन होनेसे ही इसका नाम 'ब्राह्मण' या 'ब्राह्मण-

---

* देखिए 'कल्याण' का 'हिन्दू संस्कृति अंक' पृ० २६६–२७०

ग्रन्थ' है। विचारकोंकी धारणा है कि ब्रह्मका एक अर्थ यज्ञ भी है। अतः यज्ञ-प्रतिपादित होनेसे इनका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा। ब्राह्मणोंके वे अंश अरण्य या विपिनमें पठित और उपदिष्ट हैं, उनका नाम 'आरण्यक' है। इन्हीं ब्राह्मणों या आरण्यकोंमें जो भाग गहन-गम्भीर हैं एवं तत्त्व चिन्तन-मननसे पूर्ण हैं, उनका नाम उपनिषद है।

ब्राह्मणों एवं आरण्यकों को कर्मकाण्ड कहा जाता है तथा उपनिषदों को ज्ञान-काण्ड। उपनिषदोंमें जो परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, पुनर्जन्म, स्वर्ग एवं धर्म आदिका विवरण मिलता है, उसका आज भी महत्त्व है; बल्कि यों कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्मका यह बहुत बड़ा आधार है। उपनिषदोंके संबन्धमें विद्वानोंके विचार हैं कि ये ज्ञानकी भण्डार हैं। इन्हींसे समग्र दर्शन, सभी शास्त्र, सब तर्क, सम्पूर्ण उक्तियाँ, सारे ग्रन्थ, सभी पुराण, विज्ञान और सब विद्याएँ निकली हैं। अर्थात् इनका हमारे जीवनमें बड़ा ही महत्त्व है।

हमारी भक्तिकालीन हिन्दी-काव्यकी साधना इन्हीं धर्म एवं दर्शनसे प्रभावित है। इस कारण प्रसंगानुसार अनादिकालसे चली आती धर्म और तत्त्वके चिन्तन-प्रवृत्तियोंकी ओर संकेत करना आवश्यक था।

धर्मकी धारा, कर्म, ज्ञान एवं भक्तिके सामञ्जस्यसे प्रवाहित रहती है। इनमेंसे किसी एकके भी अभावमें वह शिथिल हो जाती है। कर्मसे गति, ज्ञानसे दृष्टि और भक्तिसे धर्ममें सजीवता आ जाती है। इनके अतिरिक्त अपनी तात्त्विक विशेषताओंके कारण योगमार्ग भी— ज्ञान, कर्म एवं भक्तिके साथ सम्बद्ध है;—विशेष महत्त्व रखता है।

समय पाकर कर्म पाखण्ड और बाह्याचारोंकी ओर, ज्ञान अद्वैत तथा गुह्यरहस्यात्मकताकी ओर और भक्ति विलासिताकी ओर जब जाती है, तब ये साधना-मार्ग दोष-ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा आज विश्वास है।

भक्तिकालमें साधनाके ये तीनों मार्ग दोष-ग्र

गए थे। अनेक छोटे-छोटे कारणोंके साथ राजनीतिक विप्लव इन्हें दूषित करनेका प्रमुख कारण था। भारतीय इतिहासका यह युग दो संस्कृतियोंके आदान-प्रदानके कारण संघर्षमय हो गया था; जिसके फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्रमें बड़ा विप्लव उठ खड़ा हुआ। इस समय समाजमें दो प्रवृत्तियोंके सुधारक दिखाई पड़े। अपने जीवन-दर्शनकी महनीय चेतनाओं और अनुभूतियोंसे तथा परम्परा द्वारा आती हुई साधना-पद्धतियोंमें किसी प्रकारकी विषमता न होनेसे व्यास, श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीरामानन्द तथा तुलसीदास आदि चिन्तक पुरानी रूढ़ियों पर अटल रहते हुए युगानुसार साधना-पद्धतियोंकी नवीन व्याख्या करनेवाले प्रवृत्तिके सुधारकोंमें से थे।

दूसरी परम्पराके सुधारकोंमें बुद्ध, अश्वघोष, नागार्जुन, गोरख एवं महात्मा कबीर हैं, जिन्होंने परम्परासे आती हुई रूढ़िमग्न साधना-पद्धति-का निषेधकर एक बार फिरसे मूल तत्वोंकी ओर संकेत करनेका प्रयत्न किया है।

महात्मा कबीरके आविर्भाव-कालमें* भारतीय सामाजिक परिस्थितियों-में बड़ी जटिलता आ गयी थी। जब मुसलमान यहाँ विजेता होकर आए थे, उस समय वे अपने साथ एक संस्कृति भी लाए, किन्तु भारत-आगमनके पूर्व ही मुसलमानी एकेश्वरवादी धर्म रूढ़िग्रस्त हो चुका था। भारतमें विजेताके रूपमें आने पर कालान्तरमें उलमा लोग सुल्तानोंकी इच्छानुसार धर्मकी व्याख्या करने लगे थे। उनका कथन था कि जो सुल-तानकी आज्ञाका पालन करता है, वही ईश्वरका आज्ञाकारी भी है। इस प्रकार मुसलमानोंके धर्ममें एकांडका स्फुरण स्पष्ट रूपमें होने लगा था। इसके पहलेसे ही मुसलमानोंके एकेश्वरवादकी प्रतिक्रिया सूफियों द्वारा हो चुकी थी; क्योंकि पर्शियन साम्राज्यकी स्थापनाके साथ ही

* महात्मा कबीरका जन्म सं० १४५६ माना जाता है।

अलग भक्ति-धाराएँ प्रवाहित होने लगी थीं। ज्ञान और कर्म-मार्गका भक्तिके अन्तर्गत समावेश होनेसे उपर्युक्त आचार्योंने इसकी वेदमूलकता प्रमाणित कर इसे अधिक पुष्ट कर दिया था। इधर स्वामी शंकराचार्यके वेदान्तमें जब भक्तिको आश्रय न मिल सका, तब उसकी आलोचना करते हुए उपर्युक्त आचार्योंने विशिष्टाद्वैत—श्रीरामानुजाचार्यने, द्वैत—श्रीमध्वाचार्यने, द्वैताद्वैत—श्रीनिम्बार्काचार्यने तथा शुद्धाद्वैत—श्रीवल्लभाचार्यने वेदान्तका नए ढंगसे प्रतिपादन किया।

शैव-भक्ति—इसका सम्प्रदाय रूपमें प्रचलन पाशुपत-धर्ममें सबसे पहले पाया जाता है। पाशुपत लोग 'महेश्वर'की पूजा करते थे, ये महेश्वर शिव थे। इनका दर्शन सांख्य-दर्शनके अधिक समीप है। तामिल प्रान्तमें ईसाकी पाँचवीं-छठीं शताब्दीमें वैष्णवों एवं शैवोंमें संघर्ष चल रहा था, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। धीरे-धीरे शैव-सम्प्रदाय अन्तर्मार्तीयरूप ग्रहणकर चुका था। इसकी एक प्रबल शाखा काश्मीरमें भी थी, जो वेदमूलक शैव-साधना थी। तामिल और काश्मीरके शैवोंकी साधना-पद्धति लगभग एक-सी ही थी। अधिकांश विद्वान् ऐसा ही मानते हैं।

शाक्त सम्प्रदाय—विद्वानोंका कथन है कि सांख्य-दर्शनमें प्रकृतिका जो स्वरूप निरूपित है, यह सम्प्रदाय उसीको स्थूलताको मानकर चलता है। सांख्य-दर्शनके अनुसार प्रकृति स्वभावतः निष्क्रिय है; पुरुषसे संबंध होने पर ही उसमें कर्तृत्व शक्ति स्फुरित होती है। पुराणोंमें पुरुषको ईश्वर एवं प्रकृतिको उसकी शक्ति माना गया है। शक्ति-दर्शन मानता है कि पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरीसे ही शब्द तथा सब वस्तुओंका उद्भव हुआ है। परमतत्व शिव हैं। शक्तिके स्फूर्तिरूप धारण करने पर शिवने उसमें तेजस् रूपसे प्रवेश किया, तब बिन्दुका उद्भव हुआ। शिवमें शक्तिके प्रवेशसे नारीतत्व—नाद व्यक्त हुआ। ये ही दोनों तत्व—नाद और बिन्दु—मिलकर अर्द्धनारीश्वर हुए। यही कामतत्व है। पुंतत्व सफेद और नारीतत्व अरुणवर्ण है। दोनोंसे कलाकी उत्पत्ति हुई है। इस काम

एवं कलाके और नाद तथा बिन्दुके योगसे ही सृष्टि हुई है। मूलतत्व अव्यक्त तथा अनन्त है। सृष्टिके प्रत्येक विकासमें उस शिवतत्वका आगम है। उस शिवकी अज्ञा आद्या-शक्ति ही प्रकृतिरूपा है।

आराधनाके लिए महाशक्तिके दस महाविद्यारूप माने गए हैं १—महाकाली, २—उग्रतारा, ३—षोडशी (त्रिपुर सुन्दरी) ४—भुवनेश्वरी, ५—छिन्नमस्ता, ६—भैरवी, ७—धूमावती, ८—बगलामुखी, ९—मातंगी, और १०—कमला। इन सभी शक्तियोंके साथ परातत्वके दस आराध्य रूपोंकी उपासना होती है। क्रमशः उनके नाम हैं—१—महाकाल, २—अक्षोभ्य पुरुष, ३—पंचवक्त्र रुद्र, ४—त्र्यम्बक, ५—कबन्ध, ६—दक्षिणामूर्ति, ७—एकवक्त्ररुद्र, ८—मतङ्ग, ९—सदाशिव तथा १०—विष्णु। जीव आराधना एवं आचारनिष्ठासे तथा शक्तिकी कृपासे शिवत्वको प्राप्तकर शापमुक्त होता है। कालान्तरमें प्रकृति एवं पुरुषकी कल्पना साधारण स्त्री तथा पुरुषके रूपमें कर ली गयी। शाक्तोंमें प्रकृतिके शक्तिरूपमें मान लेनेसे शक्ति-उपासनाका भी अधिक प्रचलन हुआ, किन्तु शैव एवं वैष्णवमतके समान उसे सफलता न मिल पायी। कालान्तरमें पौराणिक युगमें सभी देवताओंकी विशेषताओंके साथ उनकी शक्तियोंकी भी कल्पना करली गयी थी और दूसरे शाक्तमतमें अनेक वामाचारोंके गृहीत हो जानेसे इसकी लोक-प्रियतामें अभाव-सा होने लगा। महात्मा कबीरके युगसे प्रथम ही मूल-साधनासे विचार-विस्मतायुक्त शाक्तमत हो था।

२—बौद्धोंकी सहजयानी शाखा

भगवान् बुद्धके पश्चात् उनके शिष्योंने जब उनके मतका — करना चाहा तब, विचार-भिन्नताके कारण बौद्ध-धर्म तीन प्रधान — बँट गया। १—हीनयान, २—महायान और ३—वज्रयान।

हीनयान मत गौतमको एक महापुरुष मानता था, जिन्होंने साधन द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था। यह निर्गुण प्रधान मत था, जिसका स्वरूप

एवं आराध्य 'अर्हत्' था। महायान भक्तिको प्रधानता देने लगा। हीनयानके भावुक भक्तोंने इसका प्रचार किया। हीनमतके ग्रन्थ पाली भाषामें थे। महायानका संस्कृतमें विस्तारपूर्वक साहित्य बना। इस मतके आराध्य 'बोधिसत्व' हैं। भगवान् बुद्ध सामान्य महापुरुष न माने जाकर अवतार माने गए। बौद्ध-धर्ममें आगे चलकर तांत्रिक साधनाएँ प्रचलित हो गयीं। इसे प्रधानता देनेवाली शाखा 'वज्रयान' कहलायी।

दर्शनकी दृष्टिसे बौद्धधर्मके चार भाग हैं—१—मध्यम-दर्शन, २—योगाचार, ३—सौत्रान्तिक और ४—वैभाषिक।

अनेक बाह्याचारों, पूजा-विधानों तथा जटिल नियमोंके गृहीत हो जाने से वज्रयान भी शिथिल होने लगा। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप सहजयान आया, जिसने सहज मार्गसे सहजानुभूतिका निर्देश किया। इनकी यह सहज-भावना उपनिषदोंके ब्रह्मके समान है।

३—नाथपंथी योगधारा

इसकी उत्पत्ति रसायन मतसे संबंधित प्राचीनकालमें प्रचलित सिद्धोंके एक सम्प्रदायसे मानी जाती है। कुछ विद्वान् इसे सहजियोंका ही परिष्कृत-रूप मानते हैं। नाथपंथी योगियोंकी साधना-पद्धतिमें शैवों, बौद्धों तथा प्राचीन रसायनियों आदि सभीके तत्वसन्निहित हैं। विशुद्ध छाया-साधना द्वारा जीवन-मुक्ति प्राप्त करनेकी ओर इस सम्प्रदायने लक्ष्य किया था। इस ...-निग्रह पर विशेष ध्यान दिया गया था। इसके प्रवर्त्तक ... जिन्होंने पतंजलिके उच्च लक्ष्य—ईश्वर-प्राप्तिको लेकर ...न किया। इस मतका प्रचार राजपूताना और पंजाबमें ... ।

४—मुसलिम एकेश्वरवाद

...ओंको मान्यता न देकर एक ही देवताको महानता प्रदान ... है।

'ला इलाहि इल्लिल्लाह मुहम्मदर्रसूलिल्लाह' अर्थात् अल्लाहका कोई अल्लाह नहीं, वह एकमात्र परमेश्वर है तथा मुहम्मद उसका रसूल या पैग़म्बर है। यह सिद्धान्त पहले था, किन्तु जब उलमाओंके द्वारा यह दोष-ग्रस्त हो गया; तब इनसे भिन्न सूफियोंने अपना अलग मत स्थिर किया। भारतमें मुसलमानोंके साथ ये दोनों धार्मिक धाराएँ भी आयीं।

५—सूफीमतवाद

सातवीं शताब्दीमें इस्लाम धर्मकी जन्मदात्री पुण्य-भूमि अरबका बहुत बड़ा अशान्तिपूर्ण वातावरण था। इस समय शान्ति चाहनेवाले जन-समुदायको मुहम्मद साहबके जीवनसे तथा कुरानकी पवित्र आयतोंसे एक नयी दिशा झलकने लगी जो सूफी-धर्मका मूल यहीं पर इस्लामको एक गहरा धर्म माननेमें है। सूफी-मतके सम्बन्धमें अगले परिच्छेदमें विशेष विचार किया जायगा। भारत आनेपर सूफियोंने उलमाओंसे पृथक रहकर अपने धर्मका प्रचार किया।

हिन्दी-काव्यकी भक्तिकालीन—(सं० १३७५–१७००) *—रचनाएँ उपर्युक्त धार्मिक विचार-धाराओंसे विशेष प्रभावित हैं, अतः भारतीय उपासनाकी परम्परा पर संकेत कर देना आवश्यक था।

भक्तिकालकी रचनाओंमें मुख्य प्रवृत्तियाँ जो पायी जाती हैं, उनमें ज्ञानाश्रयी शाखा या सन्त-काव्य, प्रेममार्गी (सूफी) शाखा या प्रेम-काव्य, राम-भक्ति शाखा या राम-काव्य और कृष्ण-भक्ति शाखा या कृष्ण-काव्य निर्गुण और सगुण दो धाराओंके बीच प्रवाहित होनेवाली हैं। इन प्रवृत्तियोंमें पड़े हुए जो धारा विशेषके विशिष्ट कवि हैं, हम उनकी काव्य-पद्धति, रचनाएँ, भाषा पर अधिकार, मत और सिद्धान्त, साहित्यमें उनका स्थान एवं उनकी विशेषताका सिंहावलोकन करेंगे।

———

* आचार्य शुक्लजीने हिन्दी साहित्यके पूर्वमध्यकालको भक्तिकाल माना है। दे०—'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'।

हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालके चार प्रमुख साधक

निर्गुणधारा

१—महात्मा कबीर—(ज्ञान-काव्य)

२—मलिक मुहम्मद जायसी—(प्रेम-काव्य)

सगुणधारा

३—गोस्वामी तुलसीदास—(राम-काव्य)

४—महात्मा सूरदास—(कृष्ण-काव्य)

निर्गुणधारा

१. महात्मा कबीर (सन्त-काव्य)

ज्ञान-पंथके प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। इनका जन्मकाल विक्रम-संवत् १४५६ माना जाता है, ये जेठकी पूर्णिमाके दिन पैदा हुए। इनके जन्मके संबंधमें कहा जाता है कि ये किसी विधवा ब्राह्मणीके गर्भसे पैदा हुए थे, जिसने पैदा होनेपर इन्हें लहरतालाके तालमें फेंक दिया था। अली या नीरू नामके जुलाहेने इन्हें देखा और घर लाकर पाला। महात्मा कबीरमें हिन्दू-भावसे भक्ति करनेकी प्रवृत्ति बाल्यकालसे ही थी, वे 'राम-राम' कहते और माथेमें तिलक लगाते थे। इनकी इस भावनाको इनके पालन-पोषण करनेवाले माता-पिता न रोक सके। बड़े होनेपर रामानन्दजीके द्वारा राम-नामका गुरुमंत्र इन्होंने पाया। आगे चलकर इन्होंने जुलाहेका धन्धा भी किया। संवत् १५७५ के लगभग इनका देहान्त हो गया।

१—कबीरपंथ—कबीर-पंथमें मुसलमान भी थे, जो सूफी फकीर शेख तकीको ही इनका गुरु मानते थे; किन्तु अधिकांश विद्वान् लोग इनका गुरु रामानन्दजीको ही मानते हैं। यद्यपि कबीर भक्तिमार्गके प्रवर्तक स्वामी रामानन्दजीके शिष्य थे, किन्तु इन्हें वैष्णव-सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं माना जा सकता। रामानन्दजीके 'राम' से कबीरके 'राम' भिन्न थे। कबीरने काफी भ्रमण किया, हठयोगियों और सूफी संतोंसे इनका सम्पर्क हुआ, जिससे ये बहुत प्रभावित भी हुए; अतः निर्गुण ब्रह्मज्ञानकी ओर ये विशेष प्रवृत्त हो गए। जिस सगुणब्रह्म—रामकी उपासनाका उपदेश स्वामी रामानन्द देते थे, उसे न ग्रहणकर कबीरने कहा—

'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम नामका मरम है श्राना ।'

हिन्दुश्रोंकी विचारधारामें जिस निर्गुण ब्रह्मका निरूपण ज्ञानमार्गके श्रन्तर्गत था, कबीरने उसे सूफियोंकी भाँति - उपासना एवं प्रेमका विषय बनाया । हठयोगकी साधनाको भी उसकी प्राप्तिमें सहायक मानते थे । इस प्रकार कबीरके पंथको, भारतीय ब्रह्मवादके साथ सूफियोंके भावात्मक रहस्यवादसे, हठयोगियोंके साधनात्मक रहस्यवादसे तथा वैष्णवोंके अहिंसा-वाद-प्रपत्तिवादसे बड़ा बल मिला ।

महात्मा कबीरका श्राविर्भाव ऐसे समयमें हुश्रा था, जब भारतीय समाजमें धार्मिक-क्षेत्रके श्रन्तर्गत बड़ी विषमता पैदा हो चुकी थी । ऊँच-नीचकी भावना ज़ोरों पर थी, जातियोंके व्यक्तिगत नियम कठोर होते जा रहे थे, नयी जातियाँ उत्पन्न होने लगी थीं । हिन्दू-मुसलमानका एक प्रश्न श्रलग ही था । महात्मा कबीरने श्रपनी पैनी दृष्टिसे सारे देशमें भ्रमण करते समय सब प्रकारकी श्रराजकताका श्रध्ययन किया । यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे न थे, किन्तु सत्संगके प्रभावसे उनकी श्रलौकिक प्रतिभाका लोहा श्रधिकांश जन-समुदाय मानने लगा था, तीखी, व्यंग्यपूर्ण, मर्मभरी तथा रहस्यपूर्ण इनकी वाणी साधारण जनताको शीघ्रही श्रपनी श्रोर श्राकृष्ट कर लेती थी । कबीरको पहलेसे श्राती हुई साधना-पद्धतियाँ एक ी ऐसी न दिखाई पड़ीं; जो समुचित ढंगसे उन्हें श्रपनी श्रोर श्राकृष्ट रतीं । गुणके साथही सभी प्रकारकी साधना-धाराएँ दोषग्रस्त उन्हें श्रधिक गीं । फल यह हुश्रा कि सबकी श्रच्छाइयोंको ग्रहण करते हुए उन्होंने पना एक श्रलग पथ खड़ा किया, जिसमें नाथों, वैष्णवों, सन्तों, मुसल-ों तथा सूफियोंकी भावनाश्रोंका मिश्रण पाया जाता है । यह सब होते निर्भयद्रष्टा महात्मा कबीरने श्रपना व्यक्तित्व सुरक्षित रखा, ाधार पर ही वे हिन्दू-मुसलमान ऐक्यका प्रतिपादन तथा रूढ़ि-कार कर सके । इनकी रचनाश्रोंमें हिन्दुश्रोंके मूर्ति-पूजन, व्रत, वं मुसलमानोंके पैग़म्बर, रोज़ा, नमाज़ क़ुरबानी श्रादिका

हिष्कार है [illegible] इनके [illegible] सच्चे हृदयसे ब्रह्म, [illegible]या, जीव, अन-
द्नाद सृष्टि [illegible] एक ब्रह्मज्ञानी दार्शनि[illegible] भाँति मिलती
है। इन्होंने [illegible] सात्विक-जीवनका
चार किया है।

मूर्ति पूजाके संबंधमें वे कहते हैं :—

'जो पाथर कहँ कहते देव। ताकी बिरथा होवे सेव॥'

इसी प्रकार वे अवतारवादमें विश्वास नहीं करते :—

"दसरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहि लंका के राय सताया॥
नहि देवकि के गर्भहि आया। नहि यशोदा गोद खिलाया॥"

महात्मा कबीरके अनुसार समग्र विश्वमें परमतत्व परिव्याप्त है। शरीरमें प्राणकी भाँति वह समस्त सृष्टिमें समाया है। उनका इस संबंधमें कथन है :—

'हरि माँह तनु है तनु महि हरि है सरब निरंतर सोइरे।'

\+ + +

'थलि-थलि पूरि रहे प्रभु सुआमी। जत देखउ तत अन्तरजामी॥'

\+ + +

'देही माहि विदेह है साहब सुरति सरूप।
अनन्त लोकमें रमि रहा जाके रंग न रूप॥

\+ + +

मनुष्यके हृदयमें भी वह निवास करता है, किन्तु अज्ञानवश उसे कोई देख नहीं पाता—

'जा कारन हम ढूंढिया, सो तो घट ही माँहि।
परदा दीया भरमका तातैं सूझै नाहि॥'

\+ + +

'तेरा साईं तुज्झमें ज्यों पुहुपनमें बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरि-फिरि ढूँढ़ै घास॥'

वे कहते हैं कि इसी शरीरमें वे सभी ज्योतियाँ तथा सभी मंगलवाद्य मौजूद हैं, जो बाह्य जगतमें दिखाई पड़ते हैं। इसीमें विश्वव्यापी वह अनाहद्नाद भी सुनाई पड़ती है, किन्तु वह कानोंको सुनाई नहीं पड़ता जिसके ज्ञाननेत्र नहीं खुले हैं, उसे ज्योतिके दर्शन नहीं होते :—

"चन्दा झलके यही घट माहीं। अंधी आँखन सूझै नाहीं॥
यहि घट चंदा यहि घट सूर। यहि घट बाजै अनहद तूर॥
यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा सब्द सुनै नहि कान॥"

कबीर कहते हैं—जो सच्चा साधक है, उसे मन्दिर या मसजिद, काबे या कैलाशके चक्कर लगानेकी जरूरत नहीं। किसी क्रिया-कर्म, योग-वैराग्यमें उसकी खोज करनेकी जरूरत नहीं; हाँ, खोजनेवाला चाहे तो क्षणमात्रमें उसे पा सकता है।

"मोको कहा ढूढे बंदे मैं तो तेरे पासमें।
ना मैं मन्दिर ना मैं मसजिद ना काबे कैलासमें।
नातो कौनो क्रिया कर्ममें नहीं जोग बैरागमें।
खोजी होयतो तुरतै मिलिहौं पलभरकी तालासमें।
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवासमें।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सब साँसनकी साँसमें।"

इस प्रकार धार्मिक-क्षेत्रमें समस्त रूढ़ियोंका खण्डनकर एक नवीन पंथ चला देनेवाले महात्मा कबीर कुछ जनताका प्रतिनिधित्व करने लगे। देशमें प्रचलित इन धार्मिक-सम्प्रदायोंके मूलतत्वोंने कबीरको इस भाँति प्रभावित भी किया कि इनकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे। ज्ञानाश्रयी अर्थात् निर्गुण-धाराके अन्तर्गत जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उसके प्रवर्त्तक महात्मा कबीर थे।

२—मत और सिद्धान्त—महात्मा कबीरने अद्वैतवाद और सूफी- ... पुष्टिकी। इस रहस्यवादी सिद्धान्तके

अनुसार आत्मा परमात्मासे मिलकर एक स्वरूप हो जाती है। इसके मूलमें प्रेमकी प्रधानता है, जिसकी श्रेणी दाम्पत्य प्रेमकी है। इस रहस्यवादमें कबीरने आत्माको स्त्री रूप देकर परमात्मा रूपी पतिकी आराधना की है। जब तक ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक आत्मा विरहिणी स्त्रीकी भाँति दुःखी रहती है। जब आत्मा ईश्वरको पा लेती है, तब रहस्यवादके आदर्शकी पूर्ति हो जाती है। ईश्वरकी उपासनामें महात्मा कबीरने अपनी आत्माको पूर्ण रूपसे पतिव्रता स्त्री माना है; क्योंकि वे परमात्मासे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल हैं। ईश्वरसे विरहका जीवन उन्हें असह्य है :—

"बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुम मिलन कूँ मन नाहीं विश्राम"॥ १

* *

"कै विरहिन कूँ मीच दे कै आपा दिखलाइ।
आठ पहरका दाझणाँ मो पै सहा न जाय॥" २

कबीरका रहस्यवाद अत्यन्त भावपूर्ण है; क्योंकि उसमें परमात्माके लिए अविचल प्रेम है। जब उसकी पूर्ति होती है, तो कबीरकी आत्मा एक विवाहिता पत्नीकी भाँति पतिसे मिलने पर प्रसन्न हो उठती है—

"दुलहिनी गावहु मंगलचार। हम घर आए हो राजाराम भतार।३

विरह और मिलनके पदोंमें ही महात्मा कबीरने रहस्यवादकी प्रतिष्ठा की है। सन्तमतके अन्य कवियोंने भी इसी रहस्यवादी ढंगकी रचनाएँ कीं; किन्तु कबीर जैसी अनुभूति उनमें नहीं है। इस मतके कवि अपने विचारोंको साधारण भाषामें प्रकट करनेको जब असमर्थ हुए हैं, तब उन्होंने किसी न किसी रूपकका आश्रय ग्रहण किया है। इन रूपकोंका अर्थ वे ही समझ पाते हैं, जो सन्तमतसे पूर्ण परिचित होते हैं। कबीरकी

---

१ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ ८। २ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ १०।

३ कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ ८ ।

रहस्यात्मियाँ प्रसिद्ध हैं। जैसे :—

"पहले पूत पीछे भई माइ। चेला के गुरु लागै पाइ॥
जल की मछली तरवर ब्याई। पकड़ि बिलाइ मुरगैं खाई॥
पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन करतूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया * ॥

इनका सम्बन्ध रहस्यवादसे है। कबीरने रूपकोंको प्रायः पशुओं, पुशादेकी कार्यावली तथा दाम्पत्य-प्रेमसे लिया है।

महात्मा कबीरकी रचनामें गुरुका महत्व, नाम-स्मरण, संगति-कुसंगति एवं साधु और असाधुकी विवेचना स्पष्ट रूपसे हुई है। गुरुके उपदेशसे ही मायाका भ्रम दूर होता है, जिससे साधकका मन निर्मल हो जाता है और सांसारिक विषय-वासनाके प्रति उदासीनता प्रकट होने लगती है। आत्मतत्वका बोधकरा, साधकके मनमें गुरु ही स्थिरता प्रदान कराता है। महात्मा कबीरके अनुसार ज्ञान भक्तिकी एक सीढ़ी मात्र है। ज्ञानोपदेशके द्वारा गुरु भक्तको भगवत्-प्रेमका पाठ पढ़ाता है; इसीलिए शिष्यको भक्ति-क्षेत्रमें आनेसे पूर्व गुरुकी खोज कर लेनी चाहिए। सद्गुरुकी खोजकर लेनेके पश्चात् शिष्यको चाहिए कि उसे वह आत्मसमर्पण कर दे। नीचे कुछ पद दिए जाते हैं :—

"माया दीपक नर पतंग भ्रमि-भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान के एक आध उबरन्त॥"
"पापणि पाई थिति भई, सतगुरु दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर॥"

महात्मा कबीरने नाम स्मरणको बहुत बड़ा महत्व दिया है, जिसमें ध्यान-धारणा, पद-सेवा आदिको स्थान नहीं दिया गया है। नाम-स्मरण-को कबीरने जितना महत्व दिया है, उतना और किसी अन्य कविने नहीं दिया। वे कहते हैं और उनका इस पर दृढ़-विश्वास भी है कि:—

* कबीर-ग्रन्थावली पृ० ६१।

"कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।
आदि अन्त सब सोधिया दूजा देखौं काल ॥"

इसी भाँति महात्मा कबीरने सत्संगतिको भी बहुत महत्व दिया है, किन्तु इसका विचार भी कर लेना आवश्यक है कि सत्संगति करनेके पूर्व साधु-असाधुका निर्णय कर लिया गया है, अथवा नहीं। साधुओंकी पहचानके लिए कबीरने कुछ आवश्यक लक्षणोंको गिनाया है :—

निष्काम-भक्ति, विषय-हीनता, विरक्ति, हरि-प्रेम, संशय-हीनता और अन्य लोगोंके प्रति निःस्वार्थ आदर-भाव इत्यादि। कबीरने मनकी कपट, आशा, दुविधा और चिन्ता आदिकी चेतावनी दी है, इन सभी मानसिक विकारोंसे दूर रहनेके लिए उन्होंने उपदेश दिया है।—

मन गोरख मन गोविन्दौ मन ही औघड़ होइ।
जे मन राखै जतनकरि तौ आपै करता सोइ ॥"

मनके ऊपर कबीरने बड़ी विस्तृत रचनाकी है। "कथनी बिना करनी कौ अंग", "चित कपटी कौ अंग", "सारग्राही कौ अंग" "भेष कौ अंग", "मधि कौ अंग" और "बेसास कौ अंग"- अर्थात् कथनी और करनीका रूप एक होना चाहिए। चित्तकी दुविधा और कपट दोनों ही बुरे हैं। तत्वग्रहण करनेकी शिक्षा आवश्यक है, माला, तिलक, मुंडन, गेरुआ वस्त्र आदि साधुओंका वेश अर्थात् बाह्याडम्बर व्यर्थ है। मध्य मार्गका प्रतिष्ठापन—अर्थात् पंडित मार्ग, लोक-मार्ग, द्वैत-अद्वैत, हिन्दू और मुसलमान आदिसे सभीके कल्याणके लिए मध्य मार्ग खोजना। चिन्ता त्यागकर ईश्वरमें दृढ़तापूर्वक प्रीति करना। कबीरकी रचनाओंसे पता चलेगा कि उनके निम्नलिखित मत मुख्य हैं—

१—गोविन्दकी कृपासे गुरुकी प्राप्ति होती है।

२—माया, मोह, तृष्णा, कांचन और कामिनीके प्रति विरक्ति, भक्ति और ज्ञानकी प्राप्ति आदि गुरुके ही द्वारा संभव है।

३—महात्मा कबीरका कथन है कि मनुष्यको भक्ति प्राप्तिके लिये

प्रयत्न करना आवश्यक है, जो गुरुकी सेवा और सत्संगतिसे ही संभव है। इसके लिये अपने अवगुणोंका परित्याग करते जाना तथा सद्गुणोंका संग्रह करते रहना बहुत आवश्यक है।

४—साधक अन्तमें विरह-साधनामें प्रविष्ट होता है। अब उसके लिए मात्र नामस्मरणका ही आधार बच पाता है। विरहकी साधनामें पहुँचकर भक्त आत्म-समर्पण कर देता है। यही भावना 'लौ' नामसे विख्यात है।

५—आत्म-समर्पणकी भावना ईश्वरके प्रति हो। कबीरने अलख, राम, निरंजन और हरि आदि अनेक नाम लिया है, जो ब्रह्मके प्रतीक हैं। उनका कथन है कि जो निराकार है, उसके गुणों या अवगुणोंके वर्णन करनेकी क्षमता प्राणी-मात्रमें नहीं है। उनके इन नामोंके साथ मात्र अनुग्रहका भाव हो सकता है। इसके पश्चात् साधक प्रेम और आत्म-समर्पणका भाव प्रकट करता है। यह स्थिति आगे चलकर इतनी बढ़ जाती है कि साधक अपनेको 'रामकी बहुरिया' का अनुभव करने लगता है। इस प्रकार महात्मा कबीरके विचार, वैष्णव-मतके अत्यधिक समीप हैं। जो अन्तर है, वह आलम्बनमें कुछ हेर-फेर हो जानेके कारण साधनोंमें ही। अवतारवादी दृष्टिकोणको न अपनानेके कारण महात्मा कबीर रूप-विग्रह और ध्यान-धारणाको सर्वथा मानते ही नहीं; परन्तु 'लय' की स्थितिमें प्रविष्ट होनेके लिए गोरखमतमें प्रचलित कुंडलिनी, सुषुम्ना और षटकमल आदिके महत्वको मान लेते हैं। साधनाको इन्होंने सहज माना है। योग-साधनाके वाह्याचारोंको न मानते हुए भी कुंडलिनी जागृति करनेवाली योग-साधनाको थोड़ा-सा कबीरने ग्रहण किया है; किन्तु उसमें भी भक्तिको ही प्रधानता उन्होंने दी है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि महात्मा कबीर एकेश्वरवाद, हिंसवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा, वर्णव्यवस्था आदिके विरोधी हैं। उनके मुहावरेके अनुसार एकेश्वरवाद शब्द ठीक नहीं;

किसीमें योगियोंके साधना-तत्वका, किसीमें सूफियोंके मधुर प्रेम-तत्वका और किसीमें व्यावहारिक ईश्वर भक्ति (कर्त्ता, पिता, प्रभुकी भावनासे युक्त) का ।......निर्गुण पंथमें जो थोड़ा-बहुत ज्ञान-पक्ष है, वह वेदांतसे लिया हुआ है, जो प्रेमतत्व है, वह सूफियोंका है, न कि वैष्णवों का। "अहिंसा" और "प्रपत्ति" के अतिरिक्त वैष्णवत्वका और कोई अंश उसमें नहीं है। उसके 'सुरति' और 'निरति' शब्द बौद्ध सिद्धोंके हैं। बौद्धधर्मके अष्टांगमार्गके अंतिम मार्ग हैं—सम्यक् स्मृति और सम्यक्समाधि "सम्यक्स्मृति" वह दशा है, जिसमें क्षण-क्षण पर मिटनेवाला ज्ञान स्थिर हो जाता है और उसकी शृङ्खला बँध जाती है, अतः 'सुरति' 'निरति' शब्द योगियोंकी बानियोंसे आए हैं, वैष्णवोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं।*

सन्त-काव्यमें ऐसे ईश्वरकी कल्पनाकी गई है, जो मुसलमानों तथा हिन्दुओंके धर्ममें समान रूपसे ग्राह्य हो सके। वह रूप-कुरूप-रहित है। वह एक है, वह सर्वशक्तिमय, सर्वव्यापक एवं अखण्ड ज्योतिस्वरूप है। उसे समझनेके लिए आत्मज्ञानकी आवश्यकता है। वास्तवमें ईश्वरके इस रूपका प्रचार हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संस्कृतिके मिश्रणसे हुआ। इस सम्प्रदायमें जहाँ एक ओर अवतारवाद, मूर्ति-पूजा तथा तीर्थ-व्रत आदिका विरोध है, वहाँ दूसरी ओर नमाज, रोजा और हलाल आदिका भी निषेध है। कर्मकाण्डके अन्तर्गत जितने बाह्याडम्बरके रूप उपस्थित हो सकते हैं, संतमतमें उनका बहिष्कार सब तरहसे किया गया। वास्तवमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंके धर्मोंमें जिन कर्मकाण्डोंके द्वारा विषमता पैदा हो सकती थी, उसका बहिष्कार आवश्यक समझा गया। ऐसी दशामें सन्त-काव्य ईश्वरके तात्विकस्वरूपकी ही मीमांसा करता है। जिसमें संस्कृति-

---

* आचार्य शुक्लका "हिन्दी-साहित्यका इतिहास" छठा संस्करण ६२ तथा ६३ देखिये।

विचारधारा और बौद्धिक गवेषणाके लिए कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। अतः इस मतका दार्शनिकपक्ष किसी एक दार्शनिक श्रेणीके अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि भारतीय ब्रह्मज्ञान; योग-साधना और सूफियोंके प्रेमतत्वके मिश्रणसे अपना सिद्धान्त बनाकर उपासनाके क्षेत्रमें यह मत अग्रसर हुआ है।

महात्मा कबीरने ईश्वरको सब गुणोंसे परे कहा है। उनका कथन है कि ईश्वरको किसी गुण विशेषसे विभूषित करना, उसे सीमित करना है।

"बाहर कहौं तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौं तो झूठा लो"
"कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै आकाश।
वह तो उन दोउन ते न्यारा जाने जाननहारा॥"

वास्तवमें वह निर्गुण और सगुणसे परे है:—

"अपरम, परम रूप मगु नाहीं तेहि संख्या आहि।
कहहिं कबीर पुकारि के अद्भुत कहिए ताहि॥
एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर बिचारि॥"

और उसके लिए एक तथा दोकी संख्या भी नहीं कही जा सकती। मान लोग उसे एक कहते हैं, तो हिन्दू लोग उसे अनेक कहते हैं; वह संख्यामें नहीं बांधा जा सकता। परमात्मा सबसे परे है। वहाँ किसीकी गति नहीं है:—

"पंडित मिथ्या करहु विचारा, नहिं तहँ सृष्टि न सिरजनहारा
थूल अस्थूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा।
ोति सरूप काल नहिं उहवाँ बचन न आहि सरीरा।"

। जो वास्तविक स्वरूप है, वह अकथनीय है, उसे 'सैना' और
ी समझना पड़ता है, अब यह सिद्धान्त यहींसे रहस्यवाद हो
के कथनके लिए रूपकों और अन्योक्तियोंका आश्रय ग्रहण
इतना सब कुछ होते हुए भी ईश्वरकी समग्र संसारमें

विचारधारा और बौद्धिक गवेषणाके लिए कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। अतः इस मतका दार्शनिकपक्ष किसी एक दार्शनिक श्रेणीके अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि भारतीय मनुष्यत: योग-साधना और इस्लामके प्रेमतत्वके मिश्रणसे अपना सिद्धान्त बनाकर उपासनाके क्षेत्रमें यह मत अग्रसर हुआ है।

महात्मा कबीरने ईश्वरको सब गुणोंसे परे कहा है। उनका कथन है कि ईश्वरको किसी गुण विशेषसे विभूषित करना, उसे सीमित करना है।

"बाहर कहीं तो सतगुरु लाजै, भीतर कहीं तो झूठा लो"

"कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै आकारा।
वह तो उन दोउन ते न्यारा जाने जाननहारा॥"

वास्तवमें वह निर्गुण और सगुणसे परे है :—

"अपरम, परम रूप मगु नाहीं तेहि संख्या आहि।
कहहि कबीर पुकारि के अद्भुत कहिए ताहि॥
एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहे कबीर बिचारि॥"

और उसके लिए एक तथा दोकी संख्या भी नहीं [illegible] मुसलमान लोग उसे एक कहते हैं, तो हिन्दू लोग उ[illegible] किन्तु वह संख्यामें नहीं बांधा जा सकता। परमात्मा [illegible] तक किसीकी गति नहीं है :—

"[illegible] मिथ्या करहु विचारा [illegible] तहँ स[illegible]

जिनकी भाषा तथा शैली प्रायः अव्यवस्थित तथा ऊटपटांग है। इस वर्गकी भावना शास्त्रीय पद्धतिसे रहित होनेके कारण शिक्षित वर्गको अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। इस मतके सिद्धान्तों और विचारोंकी काव्यके अन्तर्गत जो मीमांसाकी गयी है, वह दो-एक प्रतिभा-सम्पन्न कवियोंकी रचनाओंको छोड़कर, महत्वहीन है, क्योंकि इस मतके कवियोंकी रचनाओंमें ज्ञान-मार्गकी सुनी-सुनाई बातोंका पिष्टपेषण एवं हठयोगकी बातोंके कुछ रूपक (भद्दी तुकबंदियों) का ही आधिक्य है। भक्ति-रसमें मग्न करनेवाली सरलताका सर्वथा अभाव-सा है। यही कारण था कि जनताका अधिकांश समुदाय इसे ग्रहण न कर सका; किन्तु इतना तो मानना ही होगा कि अशिक्षित साधारण जनताको इस सन्तमतने बहुत प्रभावित किया। साहित्यिक क्षेत्रमें इस मतका उतना महत्व नहीं रहा, जितना कि धार्मिक क्षेत्रमें था; क्योंकि मुसलमानोंका शासन प्रतिमा-पूजनके लिए सर्वथा प्रतिकूल था, वे मूर्तियाँ तोड़नेमें लगे थे और वे हिन्दू-धर्मकी मूर्ति-सम्बन्धी प्रवृत्तिका अन्त कर देना चाहते थे। हिन्दू मतावलम्बियोंके समक्ष एक जटिल समस्या थी, किन्तु इसका सुलझाव, सन्तमतमें देनेकी चेष्टा की गई। इसके प्रवर्त्तक महात्मा कबीर थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानी धर्मोंके मूल सिद्धान्तोंके मिश्रणसे एक नवीन पंथ खड़ा किया। तात्विक-दृष्टिसे सन्त-साहित्यका वर्ण्य-विषय प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हो सकता है। प्रथम तो आध्यात्मिक है और द्वितीय सामाजिक।

आध्यात्मिक भावनाके अन्तर्गत निराकार ईश्वरका गुणगान है, ईश्वरानुभूतिमें जितने साधन हो सकते हैं, उनका वर्णन—जैसे गुरु, भक्ति, साधु-संगति और विरह आदि। इसके अन्तर्गत दया, क्षमा, संतोष, भक्ति, विश्वास, मौन और उच्च विचार आदिको स्थान दिया जाता है। सामाजिक भावनाके अन्तर्गत उपर्युक्त भावनाओंका धारण कर कुरुचिपूर्ण भावनाओंका दमन कर, जैसे—माया, तृष्णा, कांचन, कामिनी, निन्दा, मांसाहार एवं तीर्थ व्रत इत्यादिसे बचकर शुद्ध अन्तःकरणसे ईश्वरका

चिन्तन करना आवश्यक है। सन्त-काव्यके अन्तर्गत यदि विचार किया जाय, तो समग्र-काव्य आध्यात्मिक आधार ग्रहण करता है; किन्तु इस संत-साहित्यका अध्ययन करनेसे ज्ञात होगा कि ये सन्त न तो निराकारकी ठीक उपासना कर सके हैं और न साकारकी पूरी भक्ति ही। यद्यपि इन सन्तोंके मतका प्रचार साधारण जनतामें हुआ, किन्तु ईश्वरकी भावनाका रूप बहुत अस्पष्ट रह गया। उसे न तो निराकार एकेश्वरकी उपासना कही जा सकती है और न साकारकी भक्ति ही।

सन्त-साहित्यमें मुसलमानी प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता है, क्योंकि संतमत मुसलमानी संस्कृतिके अधिक निकट है। हिंदू-धर्मकी रूपरेखा होते हुए भी इसके निर्माणमें इस्लामका हाथ प्रमुख रहा। इस विचारधाराके अंतर्गत दो संस्कृतियों और दो धर्मोंकी धारा मिलकर प्रवाहित हुई है। इसके अन्तर्गत जो मूर्तिपूजाका विरोध और जाति-बन्धनका बहिष्कार पाया जाता है, वह केवल इस्लामकी देन कही जा सकती है।

सन्त-साहित्यमें जिन सिद्धान्तोंकी चर्चा है, वे अनेक बार दोहराए गए हैं। किसी कविने अपनी प्रतिभासे कोई मौलिक सन्देश देनेका प्रयत्न नहीं किया। एक ही बात बार-बार एक ही ढंगसे इस श्रेणीके कवियोंने शब्दोंके हेर-फेरसे कही है, जो साहित्यिक दृष्टिसे महत्वहीन है।

सन्त-साहित्यके अन्तर्गत छोटे-बड़े अनेक कवि हैं, किन्तु कबीरदास, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास और अक्षरअनन्य विशेष उल्लेखनीय हैं, इन कवियोंमें महात्मा कबीरदास संतमतके प्रधान प्रवर्त्तक थे और साथ ही प्रतिनिधि कवि भी।

५ महात्मा कबीर और उनकी रचना चातुरी—कबीरकी कितनी रचनाएँ हैं, यह एक सर्वसम्मतिसे नहीं निश्चय किया जा सकता; क्योंकि कबीरके सम्बन्धमें जब 'मसि कागद छुश्रा नहीं' निश्चित है तो वे अपनी रचनाओंको लिपिबद्ध तो कर नहीं सके, निर्विवाद है। लिपिबद्ध करनेका कार्य तो उनके शिष्योंने किया होगा। यही कारण है कि

महात्मा कबीरकी रचनाओंका शुद्ध पाठ नहीं मिल पाता। किन्तु विद्वानों-ने इनके ५७ ग्रन्थोंको माना है जिनमें लगभग बीस हजार पद्य हैं।*

इन ग्रन्थोंका वर्ण्य-विषय प्रायः एक ही है। सभी ग्रन्थोंमें ज्ञानोपदेशकी ही चर्चा है; जिसमें योगाभ्यास, भक्तकी दिनचर्या, सत्य-वचन, प्रार्थना, विनय, नाम-महिमा, सन्तोंका वर्णन, आरती उतारनेकी रीति, माया विषयक सिद्धान्त, सत्पुरुषनिरूपण, रागोंमें उपदेश, गुरु-महिमा, सत्संगति और स्वर-ज्ञान आदिका विवरण है। महात्मा कबीरकी रचनाओंमें काव्य-तत्वका उतना प्राधान्य नहीं है, जितना कि सिद्धान्तोंके प्रतिपादनका। यही कारण है कि इनकी रचनाओंमें साहित्यके सौन्दर्यका साक्षात्कार नहीं हो पाता; किन्तु उसमें एक महान् सन्देश तो मिलता ही है। वास्तवमें सम्पूर्ण सन्त-साहित्यमें साहित्यिकताका भलीभांति निर्वाह नहीं हो पाया है। इसमें तो भाव मिलेंगे, सिद्धान्त मिलेंगे और मिलेंगे आत्म-निर्माण संबंधी उपदेश। इस स्थल पर उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है।

महात्मा कबीर रहस्यवादी कवि थे, जिसके आधार पर उन्होंने परमात्माको पति रूपमें और आत्माको पत्नी रूपमें चित्रित किया है, ऊपर ऐसा लिखा जा चुका है। कबीरकी कल्पना बड़ी सुन्दर है। इसीके कारण उनकी रचनामें कुछ न कुछ साहित्य-सौष्ठवके भी दर्शन होजाते हैं। अर्थात् उनकी रचनामें विप्रलम्भ तथा संयोग-शृंगारके स्रोत प्रवाहित होते दिखायी पड़ते हैं। इनमेंसे विप्रलम्भ-शृंगारका वर्णन संयोग-शृंगारकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और मर्मस्पर्शी है। कबीरके काव्यमें वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्यकी अच्छी छटा दिखाई पड़ती है। लोक-व्यवहारकी अनेक बातें अनूठे ढंगसे कहकर जनताको अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेकी

---

* डा० रामकुमार वर्मा कृत "हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास" पृ० २५८ तीसरा संस्करण देखिए।

कबीरदासमें अद्भुत प्रतिभा थी। इन्हींके द्वारा कबीरदासने नीति और धर्मका उपदेश दिया है। नीचे लिखे दोहे कितने प्रसिद्ध हैं :—

"आगे दिन पीछे गए, हरि सों किया न हेत।
अब पछताए होत क्या चिड़ियाँ चुँग गईं खेत ॥"
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई न भय मुआ कुशल कहाँ ते होय ॥
झूठे सुख को सुख कहे मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥"

नारीके संबंधमें कबीरका मत है :—

"नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौनगति नित नारी को संग ॥"
"साँप बीछि को मंत्र है, माहुर झारे जात।
विकट नारि पाले परी, काटि करेजो खात ॥"
"कनक कामिनी देखि कै तू मत भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेकरा, केंचुकि तजै भुजंग ॥"

कबीरदास अपनी भावाभिव्यंजनाके लिए रूपकोंका सहारा लेते हैं र भावोंको स्पष्ट करनेमें वे उन्हींके द्वारा सफल होते हैं।

"काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी ॥टेक॥
जल मैं उत्पत्ति जल मैं बास। जल में नलिनी तोर निवास ॥
न तल तपति न ऊपरि आगि। तोर हेत कहु कासनि लागि ॥
कहैं कबीर जे उदिक समान। ते नहिं मुए हमारे जान ॥"

अर्थात् हे जीवात्मा! तू दुःखी क्यों है? तेरे समीप ब्रह्मरूपी जल । हुआ है। तेरी उत्पत्ति उसी जलसे है, और उसीमें तू रहता भी है। व तेरे चारों और दुःखका क्या काम? तुमने कहीं मायासे तो ा नहीं कर ली है? हे जीवात्मा! यदि तू ब्रह्मरूपी जलसे प्रीति कर ो अमरपद प्राप्त कर लेगा। इसी प्रकार एक पद और उदाहरण

स्वरूप दे देना उचित है :—

"सुनु हंसा प्यारे सरवर तज कहाँ जाय।
जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते बहुविधि केलि कराय॥
सूखे ताल पुरइन जल छोड़े कवल गइल कुँभलाय।
कहहिं कबीर अबहिं के बिछुड़े, बहुरि मिलहु कब आय॥"

अर्थात् हे प्यारे हंस (जीव)! इस शरीर (सखा) को त्यागकर तू कहाँ जा रहा है! तुम्हारे जाते ही यह शरीर (ताल) सूख जायगा। नेत्रों (पुरइन) से आँसू गिरने लग जायगा और मुख (कमल) मुरझा जायगा। इस बार बिछोह होनेसे क्या फिर कभी मिल सकोगे!

जीवात्माका शरीर छोड़नेका कितना सुन्दर भावपूर्ण वर्णन है। इसमें ज्ञान और भावुकताका कितना सुन्दर समन्वय है!

इनके अतिरिक्त प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध जान पड़नेवाली उल्ट-बासियाँ कबीरदासकी रचनाओंमें मिलती हैं, किन्तु साधारण अर्थ इन पदोंका लगानेसे तो सार-रहित ये पद जान पड़ते हैं; किन्तु इनके अन्तर्गत हमें तात्विक-सिद्धान्त मिलेंगे। दो-एक पद नीचे दिए जाते हैं :—

"अवधू जगत नींद न कीजै।
काल न खाय कलप नहि व्यापै, देही जुरा न छीजै॥ टेक॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखैं ससिहर सूर गरासै॥
नवग्रह मारी रोगिया बैठे, जल में ब्यंब प्रकासै॥
डाल गह्यां तैं मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा॥

*　　　　*

अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जानैं सब कोई॥
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई॥"!

६—भाषा और उसपर अधिकार—महात्मा कबीरकी वाणीका संग्रह 'बीजक' नामसे प्रसिद्ध है। 'रमैनी' 'सबद, और 'साखी' नामसे इसके तीन भाग हैं। जिसमें हिन्दू, मुसलमानोंको फटकार दी गयी है,

वेदान्ततत्त्व, संसारकी अनित्यता, हृदयकी पवित्रता, प्रेम-साधनाकी कठिनता; तीर्थाटन, मूर्तिपूजाकी निस्सारता; मायाकी प्रबलता; हज, नमाज, मत और आराधनाकी गौणता आदि विषयोंका निरूपण हुआ है। साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्तके उपदेश प्रधानतः 'साखी' के अन्तर्गत वर्णित हैं, जो दोहेमें है। इसकी भाषा खड़ी बोली (राजस्थानी, पंजाबी मिली हुई) है। इसके अतिरिक्त 'रमैनी' और 'सबद' में गानेके पद हैं, जो भाषाकी दृष्टिसे काव्यकी ब्रजभाषा तथा पूरबी बोलीका कहीं-कहीं व्यवहार माना जायगा।

कबीरकी भाषा पर विचार करते समय सबसे बड़ी समस्या यह खड़ी होती है कि उनकी रचनाका मूल रूप अप्राप्य है। इनकी रचनामें पूर्वी, पश्चिमी, पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, मैथिली, बंगाली, अरबी और फारसी आदि सभी भाषाओंके शब्द पाये जाते हैं। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें इनकी भाषाको सधुक्कड़ी भाषा ही कहना ठीक होगा। इनके पढ़े-लिखे न होनेके कारण इनके काव्यमें व्याकरणके नियमोंका पालन (लिंग, वचन, और कारक आदिका शुद्ध रूप) नहीं दिखायी पड़ता। इनके काव्यमें भाषाकी स्थिरता और एकरूपता नहीं है। शब्द-ज्ञानके अभावसे इनकी भाषा साहित्यकी सुन्दरतासे रहित और भावाभिव्यंजनामें असमर्थ हो जाती है।

महात्मा कबीरको स्वामीरामानन्दजीके शिष्यत्वके कारण वैष्णवत्व-की शब्दावलियोंसे और शेख तकी तथा अन्य सूफी फकीरोंके सम्बन्धसे [illegible] तथा अरबीकी शब्दावलियोंसे परिचित हो जाना कोई आश्चर्यकी न थी। कबीरका सत्संग बहुत विस्तृत था। यही कारण था कि इनकी [illegible] अनेक भाषाओंके शब्द आ गए हैं। जब किसी भी भाषाका [illegible] बोध इन्हें नहीं था, तो धारा-प्रवाह रूपसे सभी भाषाओंके शब्दोंका [illegible]कर अपनी भाषाको कबीर कैसे सँवार सकते थे! भाषा पर अधिकार [illegible] हम सूर, तुलसी और जायसीका देखते हैं। वैसा कबीरकी

रचनामें नहीं मिलता। इतना सब कुछ होते हुए भी कबीरने जब अपनी रचना साहित्यके दृष्टिकोणसे नहीं की, तब उसको साहित्यकी शास्त्रीय कसौटी पर कसना ठीक भी नहीं।

७—साहित्यमें स्थान—यद्यपि महात्मा कबीरने पिंगल और अलंकारके आधार पर काव्य-रचना नहीं की, तो भी उनकी उक्तियोंमें कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार दिखायी पड़ते हैं। वास्तवमें काव्यकी मर्यादा मानव-जीवनकी भावात्मक और कल्पनात्मक विवेचनामें होती है। विचार किया जाय तो कबीर भावनाकी अनुभूतियोंसे संयुक्त हैं, वे जीवनके अत्यन्त निकट हैं, इसलिए वे महाकवियोंमें भी गिने जा सकते हैं। यद्यपि इनकी कवितामें छन्द और अलकार गौण हैं, किन्तु इन्होंने अपनी रचनाओंमें एक महान् सन्देश दिया है। इस सन्देशकी अभिव्यक्ति-प्रणाली अलंकारों और शास्त्रीय-पद्धतियोंसे रहित होने पर भी काव्यमय है। इसमें तो सन्देह नहीं, कि महात्मा कबीरकी रचनामें कलाका अभाव है, पद-विन्यासका कौशल नहीं है, "उल्टवासियों" में क्लिष्ट कल्पना है, भाषाका परिमार्जित रूप नहीं है; किन्तु भावुक और स्पष्टवादी व्यक्ति होनेके नाते उन्होंने अपनी प्रतिभाके सहारे अपने सन्देशोंको भावनात्मक रूप देकर अपनी रचनाओंको हृदयग्राही बना ही दिया।

धर्मकी जिज्ञासा उठानेके लिए महात्मा कबीर उल्टवासियोंकी रचना करते थे। अनेक प्रकारके रूपकों एवं अन्योक्तियों द्वारा इन्होंने ज्ञानका उपदेश दिया है, जो नवीन न होने पर भी वाग्वैचित्र्यके कारण साधारण अशिक्षित जनताको चकित करता रहा।

इतना होते हुए भी भारतीय शिक्षित-समाज पर प्रत्यक्ष रूपसे कबीरका प्रभाव कोई विशेष नहीं पड़ सका; किन्तु समाजमें इस भावनाकी लहर व्याप्त तो होही गई कि सबका ईश्वर एक है और सब ईश्वरके बन्दे हैं, जो हरिकी बन्दना करता है, वह हरिका दास है—'हरि को भजै सो हरि का होई। जाति-पाँति पूछै नहिं कोई॥" कुछ भी हो महात्मा क

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए सफल प्रयत्न किया—इसमें सन्देह नहीं। अतः हिन्दी-साहित्यमें महात्मा कबीर जो कुछ कहना चाहते थे और जैसे भी कह पाए हैं, उसे देखते हुए इन्हें ऊँचा स्थान तो मिल ही सकता है; क्योंकि इन्होंने जिस नवीन प्रणालीसे उपदेश दिया है, उसमें मानव-जीवनकी भावात्मक और कल्पनात्मक विवेचनाके साक्षात्कार होते हैं।

८—विशेषता—महात्मा कबीरकी जैसी सूक्ष्म-निरीक्षण और पैनी-दृष्टि-विस्तारकी क्षमता सन्त-साहित्यके अन्तर्गत गिने जानेवाले और किसी भी कविमें नहीं पायी जाती। महात्मा कबीरकी नवोन्मेषशालिनी एवं अलौकिक प्रतिभा पर थोड़ा विचार कर लेना विषयान्तर न होगा। महात्मा कबीरकी इस अद्भुत क्षमताका साक्षात्कार करनेके लिए आवश्यक है कि उनके समयमें फैली और उलझी हुई राजनीतिक परिस्थितियोंके कारण अशान्त वातावरणमें सांस्कृतिक—धार्मिक समस्याओं और परि-स्थितियोंकी विषमताका विहंगावलोकन कर लिया जाय।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बहुत प्राचीन कालसे ब्रह्म (परमतत्व) की प्राप्तिके लिए, विभिन्न मनीषियों द्वारा निश्चित किए गए—कर्म, ज्ञान और भक्ति-भावनाके तीनों प्रमुख-मार्ग चले आरहे थे। कालांतरमें जब ये साधना-पद्धतियाँ दोष-ग्रस्त अवस्थामें हो गयीं—(अर्थात् कर्मको प्रधानता देनेवाले वैदिक यज्ञ संबंधी क्रियाओंकी समाप्ति घोर हिंसात्मक बलिदानोंमें हुई, उपनिषदोंका ज्ञानमूलक तत्ववाद आत्मतत्वकी सर्व-व्यापकता एवं ब्रह्मकी उससे अभिन्नता प्रमाणित करके भी उसके बोधका उपाय न प्रस्तुत कर सका—सामान्य जनतामें 'मैं ही ब्रह्म हूँ' को एक अहं-भावनाका उदय होगया—और हृदयकी समस्त अनुरागात्मक वृत्तियोंको ईश्वरार्पित करते हुए कालांतरमें अनुरागके आधार नारीको भी देवार्पित रना प्रारम्भ हुआ और इसी प्रकार चित्तवृत्ति निरोधार्थ निश्चितकी गयी क क्रियाएँ ही समय पाकर साध्य हो गयीं; फलतः काया-साधना पर ही दिया जाने लगा)–तब एक नया मार्ग खोलकर बौद्ध-धर्म खड़ा हुआ।

हिन्दू और मुस्लिम चिन्ताधारा अपना मार्ग ढूँढ़ने लगी। महात्मा कबीरके प्रादुर्भावकालमें साधना-क्षेत्रमें हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी सभी साधना-धाराएँ भारतवर्षमें फैली थीं। साधनाकी इन विभिन्न-धाराओंमेंसे किसी एक धाराका अनुवर्त्तन न कर महात्मा कबीरने इन सभी धार्मिक-स्रोतोंसे कुछ न कुछ अंश ग्रहण कर एक स्वच्छन्द धारा प्रवाहित कर अपनी अद्भुत क्षमताका परिचय दिया। मुसलमानोंके भारतमें आ जानेसे जो राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और संस्कृतिक वातावरण क्षुब्ध हो उठा और उसमें मुसलमान शासकोंकी नृशंसतासे कटुता आने लगी थी; उसे दूर करनेका सफल प्रयत्न कबीरने किया, इसमें सन्देह नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ महात्मा कबीर सन्त साहित्य नी एक विशिष्ट महत्ता रखते हैं।

रखना आवश्यक है कि मुसलिम संस्कृति और
ी ओर नहीं आकृष्ट किया था, बल्कि उससे अशि-
बनता ही प्रभावित हुई थी।

निर्गुणधारा

२. मलिक मुहम्मद जायसी—(प्रेम-काव्य)

जिसे जनता इस्लामका अन्तिम सच्चा नायक मानती थी और दूसरा उनके विरोधी मुआवियाका दल।*

अली-पुत्र हुसैन अपनेको खलीफा-पदका अधिकारी घोषित कर कूफासे सहायता प्राप्त करके लिये लड़े, किन्तु कूफा-निवासियोंने उनकी पूरी सहायता न की। उस समय मुआविया-पुत्र यजीदके साथ उनका घोर युद्ध हुआ, जो इस्लामी इतिहासमें अन्तिम कर्बला-युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। हुसैन अपने सभी साथियोंके साथ मार डाले गये और यजीदने मक्का-मदीना पर भी आक्रमण कर वहाँ भी अत्याचार और अशान्तिकी लहर उठा दी। इसी समय मुख्तार नामक एक व्यक्तिने विरोधीदल संगठित कर कूफा पर अपना अधिकार जमा लिया और यजीदके साथियोंको जो संख्यामें लगभग तीन सौ थे, मार डाला। परिणामस्वरूप सीरियाकी रहनेवाली अरबी जनता उत्तरी और दक्षिणी अरबमें विभक्त हो गयी।

इस प्रकार इस्लाम धर्मकी जन्मदात्री पुण्य भूमि अरबका (सातवीं शताब्दीका) ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया। उपर्युक्त ऐतिहासिक सिंहावलोकनसे स्पष्ट है कि उस समय जनताको अशान्त वातावरण का सामना करना पड़ा। इस विषम परिस्थितिमें धर्मके नाम पर फैली हुई मार-काट और नृशंसताओंकी ओर दृष्टिपातकर कुछ सुहृद विचारकोंने मुहम्मद साहब द्वारा प्रवर्तित कुरान, इस्लाम धर्मके सिद्धान्तों और उपदेशोंका परिष्कृत ढंगसे दर्शन किया। इस वर्गके विचारकोंको मुहम्मद साहबका जीवन और कुरानके उपदेश उदारता तथा सद्भावनाओंसे परिप्लावित जान पड़े। सूफी धर्मका मूल यहीं पर इस्लामको एक गहरा धर्म माननेमें है।†

---

* डा० कमलकुलश्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० द्वारा प्रणीत "हिन्दी [illegible]" पृ० ६३ देखिए। † डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० द्वारा प्रणीत 'हि० प्रे० का०' पृ० ६७ देखिए।

अरबवालोंका साम्राज्य फारसमें था और इस्लाम-धर्मको फारसकी जनताने स्वीकार तो कर लिया था, किन्तु उनके साथ समानताके व्यवहारकी कमी थी। फलतः फारसकी जनताने एक भारी क्रान्तिकी; जिससे आठवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें राजवंशका परिवर्त्तन हुआ। अब राजदरबारमें फारसी प्रभाव बढ़ने लगा। अलीके वंशजोंने जो अपनेको मुहम्मद साहबके सच्चे-उत्तराधिकारी मानते थे, विद्रोह पर विद्रोह किया। आगे चलकर अरब और फारसकी जनतामें जातीय-भावनाका अंकुर निकलने लगा, जिसमें राष्ट्रीय एवं जातीय संघर्ष प्रस्फुटित हुआ।

परिस्थितिजन्य एक महान् आन्दोलन अब्दुल्ला बिनमैमून अलकद्दाह (जिनकी मृत्यु ८७४ ई० में हुई) के नेतृत्वमें हुआ। यह नेता फारससे अरब साम्राज्यको समूल विनष्ट कर डालना चाहता था। अलीके पक्षका समर्थन करते हुए इन्होंने इस आन्दोलनमें शियादलसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त कर ली। जब फारसकी जनताको विदित हुआ कि वह फारससे विदेशी साम्राज्यका निष्कासन कर देना चाहता है, तब इस आन्दोलनमें फारसी जनताने उनका सब प्रकारसे साथ दिया। इसी समय सलमान फारसीने मुहम्मद साहबके धार्मिक सिद्धान्तोंकी उदारदृष्टिकोणसे नवीन व्याख्या करते हुए धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिससे इस्लामी धर्मके मार्गमें जो अन्धकार छाया था, एक नवीन आलोकके प्रस्फुटित होते ही दूर हो गया। अब्दुल्लाहके राजनीतिक आन्दोलनोंसे सलमानका धार्मिक आन्दोलन सजीव हो गया। सलमान ईश्वरके निर्गुण रूप पर अधिक जोर देते थे। उनका कहना था कि मनुष्यके जीवन तथा निर्गुण ईश्वरके बीच प्रेमका सम्बन्ध है। ईश्वरके निर्गुण होनेसे यह प्रेम भी लौकिक प्रेमसे सर्वथा भिन्न आध्यात्मिक प्रेम है, जो आगे चलकर सूफी धर्ममें रहस्यवादी प्रेमके नामसे विख्यात हुआ। इसीसे सूफी धर्म अनुप्राणित हुआ। इस प्रकार राजनीतिक आन्दोलनका अपने अनुकूल प्रबल वेग पाकर

राजनीतिक उथल-पुथलके फलस्वरूप मुहम्मद साहब द्वारा प्रचारित इस्लामधर्म—शिया, खारिजा, मुर्जिया और कादरी सम्प्रदायमें विभक्त हो गया। कादरी सम्प्रदायमें अनेक उपसम्प्रदाय हुए, जिनमें एक मुतजला नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस सम्प्रदायके अनुयायी अपने प्रारम्भिक तथा वास्तविक स्वरूपमें तपसी ही थे। वे दुनियामें अलग पार्थिव संघर्षोंकी प्रतिध्वनियोंसे तटस्थ हो ऐकान्तिक जीवन बिताते थे। आत्म-निग्रह ही उनका लक्ष्य था। इसीको वे जीवनका वास्तविक लक्ष्य प्राप्त करनेका सच्चा पंथ मानते थे।

शिया सम्प्रदायमें एक वर्ग ऐसा भी था जो वह भी तापसी जीवन व्यतीत करता था और कुरानका अन्योक्तिमूलक अर्थ बताता था। मुतजली सम्प्रदायकी बहुतसी बातें इस सम्प्रदायकी अनेक बातोंसे मिलती थी। वास्तवमें ये एकेश्वरवादी थे तथा नकारात्मक प्रणालीसे अपने आराध्यका वर्णन करते थे। मअमारबिनअब्बादने और भी इदनसे एक विशेषता और भी स्थापित कर दी। उन्होंने कहा—'ईश्वर एक ऐसी भावात्मक *सत्ता है जिसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि* वह अवर्णनीय है।'

जुअलनूनके सिद्धान्तोंमें अद्वैतवादके भी आन्तरिक चिन्ह मिलते हैं; परन्तु बायजीदके विचार सर्वथा अद्वैतवादसे मिलते हैं। वह "विविध रूपोंमें मैं ही परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई अन्य परमेश्वर नहीं; इसलिए मेरी उपासना करो।" की घोषणा करता है।
"मैं ही मदिरा तथा मदिरा पीनेवाला हूँ और पिलानेवाला साकी भी हूँ।"

बायजीदने ही सूफी धर्मने सर्व प्रथम फनाका सिद्धान्त निकाला, जिसके अनुसार मानव-जीवनका उद्देश्य उसी परमतत्त्वमें अन्तर्हित हो जाना था।

उपर्युक्त विवरणके अनुसार संक्षिप्तरूपसे कहा जा सकता है कि

फारसीने आठवीं शताब्दीके प्रारम्भ होते-होते निरंतर विद्रोहों और विप्लवोंमें पिसी जाती हुई शान्तिप्रिय जनताके मध्य सूफी धर्मकी एक नवीन धारा प्रवाहित किया; जिसकी धीरे-धीरे गति बढ़ती गयी और नवीं शताब्दी तक तो उसमें दृढ़तासे स्थिरता भी आ गई।

सूफी धर्मका विकास—डा० श्रीकमलकुल श्रेठने सूफी धर्मके समस्त विकासकालके इतिहासको चार भागोंमें विभक्त किया है।*

१—तापसी जीवन—(सातवीं से नौवीं शताब्दी ई० तक)

२—सैद्धान्तिक विकास—(दशवीं से तेरहवीं शताब्दी ई० तक)

३—सुसंगठित सम्प्रदाय--(चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दी ई० तक)

४—पतन—(उन्नीसवीं शताब्दी ई० से आधुनिक समय तक)

१—तापसी जीवन—(७वीं से ६ वीं शताब्दी ई०) यद्यपि तापसी जीवन कुरान द्वारा स्वीकृत नहीं है, क्योंकि इस्लाम एक सामाजिक धर्म है; किन्तु इसमें प्रचलित कुछ नियम—जैसे रमजान के व्रत, मदिराका . . एवं तीर्थयात्रा आदि—तापसी जीवनसे सम्बन्ध रखते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजनीतिक परिस्थितियोंके महान् . . . समय जब सलमान फारसीने इस्लामके नाम पर प्रचलित मार- . अशान्ति और घोर नैतिक पतनके अमानुषिक बर्बरताके मध्य पिसी . सशंकित जनताको कुरानकी पवित्र आयतोंका और समुन्नत लक्ष्यकी ले जानेवाले प्रशस्त पंथको आलोकित करनेवाले मुहम्मद साहबके .का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर उसकी महनीयता पर प्रकाश और आकृष्ट किया, तब वहाँके पतनोन्मुख समाजसे अलग चाहनेवाला वर्ग एकान्तमें ही व्यष्टिका तापसी जीवन व्यतीत जो सूफी धर्मकी उत्पत्तिका कारण हुआ।

* . . . . काव्य' (पृ० १०१)—डा० कमलकुल श्रेठ फिन०—देखिये।

[illegible] सिद्धान्तोंमें अद्वैतवादके भी आन्तरिक चिह्न मिलते हैं; परन्तु ब्राह्मणवादके विचार सर्वथा अद्वैतवादमें मिलते हैं। यह "विविध रूपोंमें मैं ही परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई अन्य परमेश्वर नहीं; इसलिए मेरी उपासना करो।" की घोषणा करता है।
"मैं ही मदिरा तथा मदिरा पीनेवाला हूँ और पिलानेवाला साकी भी हूँ।"

ब्राह्मणवादने ही सूफी धर्मसे सर्वप्रथम फनाका सिद्धान्त सिखाया, जिसके अनुसार मानव-जीवनका उद्देश्य उसी परमसत्तामें समाहित हो जाना था।

उपर्युक्त विवरणके अनुसार संक्षिप्तरूपसे कहा जा सकता है कि

नवीं शताब्दी तक सूफी धर्मके अनुयायी तापसी जीवन व्यतीत करते तथा वहीं एकान्तमें ईश्वर संबन्धी चिन्तन-मनन किया करते थे। अद्वैतवादी सूफियोंके सिद्धान्तानुसार मानव जीवनका लक्ष्य उसी परमसत्तामें सदैवके लिए विलीन हो जाना था, संसार स्वयं ही संघर्षोंकी रंगभूमि है। अतः सत्यकी प्राप्तिके हेतु इसका परित्याग अत्यावश्यक है। तपस्या अथवा ऐकान्तिक चिन्तन तथा उस परमसत्तासे प्रेम करना इस लक्ष्यको प्राप्त करनेका साधन-पथ है।

इस समय तक सूफी सिद्धान्त कुरान और मुहम्मद साहबके जीवनसे निकला हुआ माना जाता है। मुहम्मद साहब सर्वथा सादा जीवन व्यतीत करते थे। वे विलासितासे बहुत दूर रहते थे। रात्रिमें ईश्वरका चिंतन करते और दिनमें उपदेश देते। कभी-कभी वे महीनों तक व्रत रखते और रातमें प्रायः बहुत कम सोया करते। उनकी कही हुई ईश्वर-की प्रार्थनाकी परिभाषामें सूफी सन्तोंने अपने प्रेम-विह्वलतावाले तत्व खोज निकाले हैं। कुरानमें ज़िक्र (स्मरण) और ज़िहाद मिलता है, इन वाक्योंका साधारणतया अर्थ है—ईश्वरीय मार्गमें प्रयत्न करना, किन्तु सूफी मार्गावलम्बी सन्तोंने "अपनी पतनोन्मुख प्रवृत्तियोंसे लड़ना ज़िहाद है" अर्थ लगाया। कुरानका वाक्य है—"जो तुम स्वयं करते हो एकमात्र उन्हीं अच्छे कर्मोंका उपदेश दो।" सूफी सन्तोंने इसी भाव-को थोड़ा परिवर्तनके साथ दोहराया—"आत्मनिरूपण कर पहले आत्म-सुधार करलो, तब तुम्हें दूसरोंको उपदेश देनेका अधिकार होगा।" इन्हीं आधार पर सूफी अपना सिद्धान्त शास्त्रीय एवं परम्परागत मानने लगे। इसके परिणामस्वरूप सूफी धर्म अत्यन्त व्यावहारिक एवं अत्यन्त प्रभावशाली हो उठा। इसी प्रकार सूफी धर्मका क्रमिक विकास होने लगा।

सैद्धान्तिक विकास—(१० वीं से १२ वीं शताब्दी ई०) इस युगमें सूफी सन्तोंने तर्क एवं अनुभूतिका आश्रय ग्रहण कर अपने धर्म-सम्बन्धी करते हुए विचारोंका स्पष्टीकरण किया। सूफी धार्मिक

साहित्यमें अब अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन भी होने लगा था। इन ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन पुस्तक अबूतालिब अलमक्कीकी "कुतूअलकुलूब" अरबी-की है। इसमें पूर्व खलीफा मामूकी आज्ञानुसार अरस्तूके ग्रन्थ अरबीमें किन्दीके* द्वारा अनुवादित हो चुके थे†। इस समय तक भारतीय विद्वान् अरबमें पहुँच चुके थे। और खलीफाके द्वारा उन्हें काफी सम्मान भी प्राप्त था। फलतः सूफी धर्मके सिद्धान्तोंके निर्माणमें ग्रीस और भारत दोनोंने सहयोग दिया।

अब तकके समस्त सूफी सिद्धान्त-निर्माताओंमें गजालीका स्थान सर्वोपरि है। अबूअलफजल शहरस्तानीका भी नाम उल्लेखनीय है। इन प्रमुख सन्तोंने उल्माओंकी तीन श्रेणियाँ बनाईं। १—परम्पराको माननेवाले, २—कुरानका अर्थ बतानेवाले और ३—सूफी। इनमें पहली

---

* किन्दी अरब देशका निवासी था। उसे अरब-दार्शनिक कहा जाता है। बसरा और बगदादमें उसने शिक्षा प्राप्तकी थी। वह बहुत बड़ा विद्वान था, वह अनेक विषयोंका ज्ञाता था। अनेक यूनानी कृतियोंका उसने अरबीमें अनुवाद किया, ऐसा कहा जाता है। किन्दीने मनुष्यकी स्वतंत्रता पर बल दिया, ईश्वरकी एकता तथा कल्याणस्वरूपता पर भी वह बल देता था। कार्य-कारणवादमें उसका विश्वास था। जगत् ईश्वरकी कृति है; किन्तु ईश्वर और जगत्के मध्य अनेक मध्य शक्तियाँ भी हैं। ईश्वरसे विश्वचेतना (नफ्स आलम) और उससे क्रमशः फरिश्ते तथा मनुष्य पैदा होते हैं। चित्-शक्तिके चार भेद हैं। १—ईश्वर जो सदैव सत् है और समग्र चेतनाओंका कारण है। २—बुद्धि। ३—बौद्धिक चेतना और ४—क्रियाशक्ति। इस प्रकार किन्दी अरस्तूके सक्रिय बुद्धि तथा निष्क्रिय बुद्धिके विभागसे प्रभावित था। किन्दी का समय ८७० ई० था—
("पूर्वी-पश्चिमी दर्शन" पृ० २७७-८ डा० देवराज द्वारा देखिए)

† देखिए "दर्शन-दिग्दर्शन" पृ० १०५-६—श्रीराहुल सांकृत्यायन

ही आई है, तथा सांसारिक बंधनोंसे छूटने पर उसीमें लीन हो जायगी।* इस स्थल पर 'लीन' शब्दको भारतीय-दर्शनके 'तिरोहित' शब्दका समानार्थक या पर्यायवाची समझना चाहिए। गज़ाली परमात्माको सर्वव्यापी मानता हुआ प्रकृतिके पीछे उसके दर्शन करता है और हमें इसका निर्देश करता है कि प्रकृतिका संचालक वही है।

इन्हीं सिद्धान्तोंके विकासकी एक नवीन व्याख्या इब्नसीनामें मिलती है। उसके अनुसार परमसत्ताका स्वरूप शाश्वत और सौन्दर्य भरा है। आत्माभिव्यक्ति उसकी विशिष्टता तथा प्रकृति है। यह अपना स्वरूप सृष्टिमें प्रतिबिम्बित कर देखती है और आत्माभिव्यक्ति ही उसका प्रेम है, जो समस्त विश्वमें व्याप्त है। प्रेम सौन्दर्यका आस्वादन है तथा सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण प्रेम भी पूर्ण है। प्रेम विश्वकी प्रेरक शक्ति है। यह प्राणियोंको पूर्णताकी ओर उन्मुख करता है जो कि पूर्ण है तथा जिससे वे सृष्टि-रचनामें अलग हो गए हैं। प्रेमके द्वारा ही मानव-आत्मा परमात्माके एकत्वकी अनुभूति करती है।

श्रेणीके लोग मुहम्मद साहबकी जीवन सम्बन्धी घटनाओंका दुनियाँके कोने-कोनेमें भ्रमण कर प्रचार करते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था। कुरानकी व्याख्या करनेवाले तथा कुरानका गम्भीर अध्ययन कर उसका बड़ी बारीकीसे अर्थ करते। कुरानके पठन-पाठनको ही ये लोग जीवनका मुख्य उद्देश्य समझते। यही भावना इनके धर्मकी नींव थी। औरोंकी अपेक्षा जनतामें इनका सम्मान अधिक था। तीसरी श्रेणी जो सूफियोंकी थी वह मुहम्मद साहबकी जीवनी और कुरानकी कुछ आयतों (दोनों) से प्रेरणा प्राप्त कर उसीका अनुकरण एवं अनुभूति करती थी। इस वर्गकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आराध्य और आराधकके मध्य जो प्रेमका मनोहर और कलापूर्ण सम्बन्ध पूर्ववर्ती सूफी सन्तोंने निश्चित किया था, वह इन सूफियोंके प्रधानसे विशुद्ध वैज्ञानिक हो गया। कल्पना की गयी कि आराधक प्रेम-पथ पर चलता है और यात्रामें सफल होने पर आराध्य तक पहुँचता है। आराधकको इस यात्रामें अनेक स्थान मिलते हैं। इसी वर्गीकरणके अनुसार सूफी-प्रेम तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुआ। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। आत्मा-परमात्माका ज्ञान प्राप्तकर जब उससे प्रेम किया जाता है, तब वह उत्तम प्रेम कहलाता है; *किन्तु जब आत्मा, परमात्माको सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी* मानकर उससे प्रेम करती है, तब वह प्रेम मध्यम कोटिमें गिना जाता है। जब आत्माको परमात्मा अपना प्रेम देता है और आत्मा, परमात्माको एक साधारण दयावान् दाता मानती है और इसी भावसे उससे प्रेम करती है, तो उसको निकृष्ट-कोटिका प्रेम माना जाता है।

तर्कजनित ज्ञानकी अपेक्षा गज्जाली अनुभूतिको श्रेष्ठ मानता है। तर्क .. प्राप्त हुआ ज्ञान प्रत्येक दशामें अनुभूतिके आधार पर प्राप्त किए ज्ञानसे प्राय: निम्नकोटिका होता है। उसने घोषणाकी कि परमात्माको और उसकी अनुभूति प्राप्त करना असंभव नहीं है, क्योंकि *प्रकृति मानव प्रकृतिसे भिन्न नहीं है। मानवता स्वयं परमात्मासे*

भेदोंके लोग मुहम्मद साहबकी जीवन सम्बन्धी घटनाओंका सूफियोंके कोने-कोनेमें प्रचार कर प्रसार करते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था कुरानकी व्याख्या करनेवाले अथवा कुरानका गम्भीर अध्ययन कर उसका बड़ी बारीकीसे मर्म पाते। कुरानके पठन-पाठनको ही वे लोग जीवनका मुख्य उद्देश्य मानते। यही भावना इनके धर्मकी नींव थी। औरोंकी अपेक्षा जनतामें इनका सम्मान अधिक था। तीसरी श्रेणी के सूफियोंको भी वह मुहम्मद साहबकी जीवनी और कुरानकी मूल भावनों (दोनों) से प्रेरणा प्राप्त कर उनका अनुसरण एवं अनुभूति करते थे। इन वर्गोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आराध्य और आराधकके मध्य जो प्रेमका मनोहर और कलापूर्ण सम्बन्ध पूर्ववर्ती सूफी सन्तोंने निश्चित किया था, वह इन सूफियोंके प्रयासने विशुद्ध वैज्ञानिक हो गया। कल्पना की गयी कि आराधक प्रेम-पथ पर चलता है और यात्रामें सफल होने पर आराध्य तक पहुँचता है। आराधकको इस यात्रामें अनेक स्थान मिलते हैं। इसी वर्गीकरणके अनुसार सूफी-प्रेम तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुआ। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। आत्मा-परमात्माका ज्ञान प्राप्तकर जब उससे प्रेम किया जाता है, तब वह उत्तम प्रेम कहलाता है; किन्तु जब आत्मा, परमात्माको सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी मानकर उससे प्रेम करती है, तब वह प्रेम मध्यम कोटिमें गिना जाता है। जब आत्माको परमात्मा अपना प्रेम देता है और आत्मा, परमात्माको एक साधारण दयावान् दाता मानती है और इसी भावसे उससे प्रेम करती है, तो उसको निकृष्ट-कोटिका प्रेम माना जाता है।

तर्कजनित ज्ञानकी अपेक्षा गज़ाली अनुभूतिको श्रेष्ठ मानता है। तर्क द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान प्रत्येक दशामें अनुभूतिके आधार पर प्राप्त किए गए ज्ञानसे प्रायः निम्नकोटिका होता है। उसने घोषणाकी कि परमात्माको जानना और उसकी अनुभूति प्राप्त करना असंभव नहीं है, क्योंकि ईश्वरकी प्रकृति मानव प्रकृतिसे भिन्न नहीं है। मानवता स्वयं परमात्मासे

हो जाई है, तथा सांसारिक बंधनोंसे छूटने पर उसीमें लीन हो जायगी।* इस स्थल पर 'लीन' शब्दको भारतीय-दर्शनके 'तिरोहित' शब्दका समानार्थक या पर्यायवाची समझना चाहिए। [illegible] परमात्माको सर्वव्यापी मानता हुआ प्रकृतिके पीछे उसके दर्शन करता है और हमें इसका निर्देश करता है कि प्रकृतिका संचालक वही है।

इन्हीं सिद्धान्तोंके विकासकी एक नवीन व्यवस्था [illegible] मिलती है। उसके अनुसार परमसत्ताका स्वरूप शाश्वत और सौन्दर्य भरा है। आत्माभिव्यक्ति उसकी विशिष्टता तथा प्रकृति है। यह अपना स्वरूप सृष्टिमें प्रतिबिम्बित कर देखती है और आत्माभिव्यक्ति ही उसका प्रेम है, जो समस्त विश्वमें व्याप्त है। प्रेम सौन्दर्यका आस्वादन है तथा सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण प्रेम भी पूर्ण है। प्रेम विश्वकी जोड़नेवाली शक्ति है। यह प्राणियोंको मूलस्रोतकी ओर उन्मुख करता है जो कि पूर्ण है तथा जिससे वे सृष्टि-रचनामें अलग हो गए हैं। प्रेमके द्वारा ही मानव-आत्मा परमात्माके स्वरूपकी अनुभूति करती है।

इन कवियोंके विचारोंसे प्रकृति और मनुष्य दोनों ही उस परमतत्त्व के [illegible]

[illegible]

* [illegible]

आगे चलकर खानसिरीसिक्ती सर्लीके शिष्य हुए, जिन्होंने सिक्ती सम्प्रदाय चलाया। जुनैदने उन्हें अपना मुर्शिद बनाया, जिससे जुनैदी सम्प्रदाय चला। उनके भी दो मुरीद हुए—हज़रत ममसदोब एवं शेख अबूबकर। हज़रत ममसदोबके दो मुरीद हुए—शेखअबूअली और खानअहमद। शेखअबूअलीके शिष्य शेख अबूइयाक़ गज़रूनी हुए, उनसे गज़रूनी सम्प्रदाय चला।

खानअहमद हज़रत ममसदोबके शिष्य थे, जिनके मुरीद हुए—शेखअमोइया। शेखअमोइयाके मुरीद थे—शेखबजीउद्दीन।

इन सम्प्रदायोंके अतिरिक्त 'नक्शबन्दी' नामक एक और सम्प्रदाय है, जो अलीसे अपना सम्बन्ध न जोड़कर मुहम्मद साहबके दूसरे शिष्य अबूबकरसे जोड़ता है। इस सम्प्रदायके गुरु परम्पराकी तालिका निम्न प्रकार है :—

मुहम्मद साहब—अबूबकर—सलमानफारसी—इमाम कासिम—इमाम जाफर—बजीद बुस्तमी—शेखअबुलहसन—शेखअबुलकासिम—खान-अबुलअली—खानयुसुफ़—खानअब्दुलखालिक—खानखरीफ — खान-महमूद—खानअली—खानमुहम्मदबाबा— अमीरकलाल — खानबहा-उद्दीन नक्शबन्द।

उपर्युक्त विवरणमें यद्यपि विभिन्न सम्प्रदायोंका नाम लिया गया है, किन्तु सिद्धान्ततः इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। इनमें गुरु परम्परा-ओंके नाम पर ही नाममात्रका अन्तर है। ये सन्त अपनी गुरु-परंपराको कंठस्थ रखते थे। इस्लामधर्मानुयायी प्रदेशोंमें ये सम्प्रदाय व्यष्टि रूपसे सूफ़ी धर्मका प्रचार करते थे। ये लोग अपने धर्मका प्रचार करते हुए उत्तर-पश्चिममें स्पेन तक पहुँचे और पूर्वमें भारत तक आए। इन्हीं सूफियों द्वारा भारतमें इस्लाम का प्रचार हुआ। इधर हिन्दू-धर्म अपने दृढ़ दार्श-निक आधारों पर पुष्ट था। तलवारके द्वारा विश्वास नहीं जमता, धार्मिक कट्टरताकी तो बात ही दूसरी है। अपने धर्मके प्रचारार्थ इन सूफ़ी सन्तोंने

प्राणायाम आदि योग सम्बन्धी कितनी ही बातोंकी विशेष जानकारी प्राप्त की।

४—पतन—(१८ वीं शताब्दी ई० से वर्त्तमान् काल तक)—सूफी धर्मके पतन पर भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक होगा। अपने

प्राणायाम आदि योग सम्बन्धी कितनी ही बातोंकी विशेष जानकारी प्राप्त की।

४—पतन—(१८ वीं शताब्दी ई० से वर्त्तमान् काल तक)—सूफी धर्मके पतन पर भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक होगा। अपने अति उन्नतकालमें इस धर्ममें एक करामाती प्रवृत्ति भी पायी जाती है; जिससे बादका प्रत्येक सन्त करामाती होने लगा। उसके शिष्य जनतामें अपने गुरुकी धाक जमानेके लिए उसकी करामातोंका अति अतिरंजनाके साथ प्रचार करते थे। जनतामें सरल विश्वाससे भरे कितने लोग इन करामातोंको सत्य मानकर प्रभावित हो जाते थे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-जनतामें भी सूफी पीरोंके प्रति श्रद्धा और उन्हें पूजनेकी प्रवृत्ति फैलने लगी। यही पीरत्व आगे चलकर सूफी धर्मके पतनका कारण हुआ।

भारतमें प्रचार—भारतमें सूफी धर्मकी स्वतन्त्र उत्पत्ति नहीं हुई; बल्कि सूफी दरवेश ही इस्लामी प्रान्तोंसे यहाँ ले आए। यों तो मुसलमानोंका आगमन सबसे पहले भारतमें अरबोंके आक्रमणसे होता है, जो सन् ३५ हिजरी (सन् ६३६ ई०) में बहरैनके शासककी आज्ञासे थाना नामक बन्दर स्थानसे हुआ था। कुछ दिनों बाद भड़ौच, देवल और ठट्टा भी मुसलमान आक्रमणके लक्ष्य बने थे, किन्तु उनका सम्यक्रूपसे सम्पर्क ईसाकी बारहवीं शताब्दीसे होता है। कौन सूफी प्रथम भारत आया, यह निश्चत रूपसे नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। आठ सूफी दरवेशोंका बारहवीं शताब्दी तक आनेका विवरण मिलता है; जिनके नाम हैं—शेखइस्माइल, २—सैयदनथरशाह, ३—शाहसुलतान रूमी, ४—अब्दुल्लाह, ५—दातागंज-बख्श, ६—नोरुद्दीन, ७—बाबा आदिमशाही, और ८ वें थे—मुहम्मदअली।

इन दरवेशोंके भारत आनेके पूर्व भी नवीं शताब्दीके आसपास तनूखी (नवीं शताब्दी ई०) और बैरूनी (दशवीं शताब्दी ई०) के यात्रा-

कार्यों पर विहंगम दृष्टि डाल ली जाय तो अप्रासंगिक न होगा।

१—शेख इस्माइल—ये भारतमें १००५ ई० के आस-पास आए और लाहौरमें बस गए। ये बड़े प्रभावशाली दरवेश थे, जिसके कारण ये अपने निकट आनेवालोंको अपने मजहबके अन्दर अवश्य ले लेते थे।

२—सैयद नथरशाह—ये त्रिचनापलीमें आकर बसे। इनका जीवनकाल ९३६ से १०३६ ई० तक माना जाता है खुत्तनोंकी इस्लामी जातिका कथन है कि इनके साथियोंके और इनके द्वारा ही वह मुसल-मान बनी।

३—शाह सुलतान रूमी—इन्होंने एक कोचराजाको, जो बंगालका रहनेवाला था, मुसलमान बनाया।

४—अब्दुल्लाह—ये १०६५ ई० के आसपास गुजरातमें आए और इन्होंने कम्मके निकट इस्लाम धर्मका प्रचार किया। इनके द्वारा बने मुसल-मान बोहरा कहलाते हैं।

५—दातागंजबख्श—इनकी गणना बहुत बड़े दरवेशोंमें की जाती है। ये भी लाहौरमें आकर बसे थे। इन्होंने "कश्फअल महजूब" नामक एक महान् ग्रन्थकी रचना की थी। इनकी मृत्यु १०७२ ई०में हुई थी।

६—नूरुद्दीन—ये बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें गुजरात आए और कोबी, खर्वा तथा कोरी जातिके हिन्दुओंको इन्होंने मुसलमान बनाया। ये बड़े ही दक्ष प्रचारक थे।

७—बाबा आदिमशाहिद—ये बंगालमें बल्लालसेनके राज्य-काल में आए।

८—मुहम्मदअली—ग्यारहवीं शताब्दी ई०के समाप्त होते-होते ये गुजरात आए और इन्होंने अधिक संख्यामें हिन्दुओंको मुसलमान बनाया।

इस प्रकार यहाँ पर सूफी दरवेशोंके भारत आगमनका संक्षिप्त विव-रण दिया गया। ये सूफी दरवेश किसी न किसी सम्प्रदायसे अवश्य सम्बद्ध होते थे। इन सम्प्रदायोंका भी संक्षिप्त विवरण दे देना आवश्यक

कार्यों पर विहंगम दृष्टि डाल ली जाय तो अप्रासंगिक न होगा।

१—शेख इस्माइल—ये भारतमें १००५ ई० के आस-पास आ और लाहौरमें बस गए। ये बड़े प्रभावशाली दरवेश थे, जिसके का ये अपने निकट आनेवालोंको अपने मजहबके अन्दर अवश्य ले लेते।

२—सैयद नथरशाह—ये त्रिचनापलीमें आकर बसे। इन जीवनकाल ९३६ से १०३९ ई० तक माना जाता है खुत्तनोंकी इस्ल जातिका कथन है कि इनके साथियोंके और इनके द्वारा ही वह मुस मान बनी।

३—शाह सुलतान रूमी—इन्होंने एक कोचराजाको, जो बंगाल रहनेवाला था, मुसलमान बनाया।

४—अब्दुल्लाह—ये १०६५ ई० के आसपास गुजरातमें आए औ इन्होंने कम्भके निकट इस्लाम धर्मका प्रचार किया। इनके द्वारा बने मुस मान बोहरा कहलाते हैं।

५—दातागंजबक्श—इनकी गणना बहुत बड़े दरवेशोंमें की जा है। ये भी लाहौरमें आकर बसे थे। इन्होंने "कश्फअल महबूब" नाम एक महान् ग्रन्थकी रचना की थी। इनकी मृत्यु १०७२ ई०में हुई थी।

६—नूरुद्दीक—ये बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें गुजरात आए औ कौबी, खर्वा तथा कोरी जातिके हिन्दुओंको इन्होंने मुसलमान बनाया ये बड़े ही दक्ष प्रचारक थे।

७—बाबा आदिमशाहिद—ये बंगालमें वल्लालसेनके राज्य-का में आए।

८—मुहम्मदअली—ग्यारहवीं [illegible] ई०के समाप्त होते-होते गुजरात आए और इन्होंने अ[illegible] बनाया

इस प्रकार यहाँ पर [illegible]
रख दिया गया। [illegible]
सम्बद्ध होते [illegible]

इनके संप्रदायकी सबसे बड़ी विशेषता उत्कट प्रेमावेश तथा भावुकता थी; जिस कारण इस्लामी धर्मके प्रचारमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। सूफी-सन्तोंमें अब्दुलकादिर जीलानी अपने भावोन्मेषके लिए प्रसिद्ध हैं। इस संप्रदायका हमारे यहाँ प्रवेश सन् १४८२ ई० में अब्दुलकादिर जीलानीके वंशज सैयदबंदगीमुहम्मद गौस द्वारा सिन्धसे आरंभ हुआ। गौसने सिन्ध-में ही अपना निवास-स्थान बनाया। वहीं सन् १५१७ ई० में गौसका देहान्त हो गया।* इस संप्रदायके सन्तोंका भारत भरमें स्वागत हुआ। क्योंकि उनकी भावुकता देशकी भक्तिपरंपराके अधिक समीप पहुँचकर जन-रुचिको अपनी ओर विशेष आकृष्ट करने लगी। काश्मीर इनसे प्रभावित रहा। प्रसिद्ध सूफी कवि गज्जाली इसी संप्रदायमें हुए थे।

४—नक्शबन्दी संप्रदाय—इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्त्तक तुर्किस्तानके ख्वाजा बहाअलदीन नक्शबन्द थे, जिनकी मृत्यु सन् १३८९ ई० में हुई। हमारे यहाँ भारतमें इस सम्प्रदायका प्रचार ख्वाजामुहम्मदबाकी-बिल्लाह बैरंग द्वारा हुआ। इनकी मृत्यु सन् १६०३ ई० में हुई। कुछ लोगोंका कथन है कि इस सम्प्रदायका भारतमें प्रचार शेखअहमदफारूकी सरहिन्दीके द्वारा हुआ। सरहिन्दीकी मृत्यु १६२५ ई० में हुई। इस सम्प्रदायको भारतमें कोई विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी; क्योंकि इस सम्प्रदायकी बुद्धिवादी क्लिष्टता तथा सम्प्रदायवादी दृष्टिकोणकी जटिलता प्रचारमें बाधक हुई। वह अपने क्लिष्ट तर्कजालमें केवल वर्ग विशेषमें ही पनपा। साधारण जनतासे यह सम्प्रदाय अग्राह्य ही रह गया। इस प्रकार भारतमें आनेवाले सम्प्रदायोंमें सबसे दुर्बल और प्रभाव-हीन यही संप्रदाय था।

---

* अन्य मतसे यह संप्रदाय १२८८ ई० में अब्दुलकरीमबिनइब्राहीम अलजीलीके द्वारा भारत आया। इसके पश्चात् शेखसैयदनियामतुल्ला नामक दरवेश भारत आया। देखिए—"हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य"—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल०।

२—सुहरावर्दी संप्रदाय—इस सम्प्रदायकी सबमें बड़ी विशेषता है, कि इसने सूफी सिद्धान्तोंके प्रचार करनेके निमित्त प्रतिभा-सम्पन्न अनेक सूफी सन्तोंको संस्कारित किया। सन् ११९९ से १२९१ ई० की मध्यवर्ती अवधिमें इस सम्प्रदायका प्रचार सैय्यद जलालुद्दीन सुर्खपोशने किया। इनका जन्म स्थान बुखारा था और स्थायी रूपसे ये सिन्धमें रहे। यद्यपि इन्होंने भारतके अनेक स्थानोंमें अपने धर्मका प्रचार किया, किन्तु गुजरात, सिन्ध और पंजाबमें इनके केन्द्र विशेष रूपसे स्थापित हुए। इनकी परम्परामें अनेक प्रभावशाली सन्त हुए। इनके पौत्र जलालइब्नअहमद-कबीर मखदूम जहानियाँके नामसे प्रख्यात हुए। कहा जाता है, इन्होंने मक्काकी ३६ बार यात्राकी थी। मखदूमजहानियाँके पौत्र अबूमुहम्मद-अब्दुल्लाने सारे गुजरातमें अपने धर्मका प्रचार किया। इनके पुत्र सैयद मुहम्मदशाहआलम, जिनकी मृत्यु सन् १४७५ ई० मानी जाती है, इनसे भी अधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी समाधि अहमदाबादके निकट रसूलाबादमें है।

पूर्वमें बिहार तथा बंगालके प्रान्तोंमें भी इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका प्रचार हुआ। इस सम्प्रदायके सन्तोंकी विशेषताएँ पूर्ववर्ती स्थानोंके साहित्य क्षेत्रोंमें बड़ी श्रद्धा भावनासे वर्णित हैं। इसकी बड़ी विशेषता यह थी कि इस सम्प्रदायने अपने धर्ममें बड़े-बड़े राजाओं तकको दीक्षित किया। बंगालके राजा कंसके पुत्र जदमल, जो बादमें 'जा[illegible]' के नामसे प्रसिद्ध हुए, धर्मपरिवर्तनके लिए प्रसिद्ध हैं। [illegible] राजवंश भी इसी संप्रदायकी परम्परामें है। [illegible] कि इस संप्रदायका महत्त्व जन-साधारणसे लेकर [illegible] रहा। इस संप्रदायके सन्त राजकुलके सम्मानसे [illegible]

३—कादिर संप्रदाय—इस संप्रदायके [illegible] अब्दुलकादिर जीलानी थे। इनका [illegible] में माना जाता है। इनके उपदेशोंके [illegible] [illegible] इनके संप्रदायके [illegible]

दिया था, किन्तु विदेशी शासनसे वह शंकितचित्त तो रहती ही थी। उसका विश्वास न जमता था। यही काम सूफियों द्वारा हुआ; क्योंकि ये सूफी सन्त अपने धार्मिक जीवनमें अत्यन्त सरल और सहिष्णु थे। मुसलमान बादशाहों द्वारा धर्म-प्रचार उतना सम्भव न था जितना सूफी सन्तोंके लिए संभव था। उस समयका राजनीतिक वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सुलतानकी मृत्यु होते ही उपद्रव मच जाता था, जिस कारण प्रत्येक शासकको कुछ समय तक तो शान्ति-स्थापन तथा अपने पद और प्राणकी रक्षामें ही चिन्तित रहना पड़ता था। अधिक क्या कहा जाय, आरम्भिक अफगान बादशाहोंको तो शान्ति-पूर्वक राज्य करनेका अवसर ही न मिला। यद्यपि साधारण ढंगसे उन्होंने धर्म-प्रचारकी भी व्यवस्था कर रखी थी, किन्तु उस व्यवस्थामें बल न था। धर्म-प्रचार-कार्यमें तो सूफी दरवेशोंने ही विशेष सफलता पायी; क्योंकि एक तो इन दरवेशोंमें धर्म-प्रचारकी बड़ी लगन थी और दूसरे इन दरवेशोंमें बड़े-बड़े लोग भी थे, जिनका प्रभाव पड़े बिना न रहता। सैय्यदअशरफ जहाँगीर दरवेश तो इस्फहानका बादशाह था, उसने सूफी धर्मके लिए सिंहासन तक त्याग दिया था। ये दरवेश बड़े विद्वान् थे, जिससे इनके कार्य जादूकी भाँति आश्चर्यपूर्ण होते थे। इनका अध्ययन तगड़ा तो होता ही था, ये अनेक गुरुओंके निकट जा-जाकर ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ा समय भी देते थे। कहना न होगा कि इस मार्ग पर वही आता भी था जो सच्चा विद्यानुरागी होता था। सूफी दरवेशोंके साथ उनकी लगी हुई करामाती आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे जनता बहुत प्रभावित हुआ करती थी। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि सूफी दरवेशोंने अपने शान्त और अहिंसापूर्ण प्रभावसे इस्लामी संस्कृति और धर्मको जितना व्यापक बनाया—जितनी दूर तक प्रचारित किया—उतना व्यापक मुसलमान बादशाहोंकी तलवारें उसे न बना सकीं। दूसरे धर्मानुयायी जनवर्गको अपने व्यक्तिगत धार्मिक प्रभावमें लाकर इन सूफी दरवेशोंने इस्लामके अनुयायियोंकी संख्यामें अपरिमित

५—जुनैदी संप्रदाय—अभी तक इस संप्रदायका क्रमबद्ध विवरण नहीं प्राप्त हो सका है। भारतमें सर्वप्रथम आनेवाला जुनैदी दरवेश दातागंजबख्श था, चौदहवीं शताब्दीमें बाबाइशाक मगरबीका नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने खट्टूमें अपना केन्द्र बनाया था। इनका उत्तराधिकारी शेखनसीरुद्दीन अहमद था, जिसने गुजरातको अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। इसके पश्चात् बहाउद्दीनने दक्षिणमें इसका प्रचार किया।

६—शत्तारी संप्रदाय—चौदहवीं शताब्दीके अन्तिम समयमें अब्दुल्लाह शत्तारी नामक सूफ़ी दरवेशने शत्तारी संप्रदायकी संस्थापना की। इनके शिष्योंका नाम तो प्रकाशमें नहीं आया, किन्तु शत्तारोंने इस संप्रदायमें कुछ नवीन प्रथाएँ चलाईं। भारतीय जनताने उनका विश्वास न किया। इस संप्रदायमें मुहम्मद गौस नामके एक दरवेश और थे, जिनके संबंधमें कहा जाता है कि सम्राट् हुमायूँ तकको इन्होंने दीक्षा दी। इस संप्रदायमें कुछ दरवेश और भी थे जिनके नाम हैं—बहाउद्दीन जौनपुरी, मीरसैय्यदअली कौशाम और शाहपीर।

उपर्युक्त सम्प्रदायोंके अतिरिक्त "मदारी" नामक एक सम्प्रदाय और भी है, जिसे भारतमें शाहमदार बदीउद्दीन नामक सन्तको प्रचारित करनेका श्रेय है। इस सम्प्रदायका दूसरा नाम "उवैसी" भी था। इसका विशेष प्रचार उत्तरी भारत तथा उत्तर प्रदेशमें हुआ। अब्दुलकुद्दूस गंगुई तथा शाहमदारी इसमें दीक्षा लिए थे।

दार्शनिक दृष्टिकोण—उपर्युक्त सभी सम्प्रदाय प्रायः तुर्किस्तान, इराक, इरान और अफ़गानिस्तानसे विविध सन्तोंके द्वारा भारतमें फैले। इन सम्प्रदायोंका पन्द्रहवीं शताब्दी तक स्वतंत्र विकास तो होता रहा, किन्तु आगे चलकर ये उपसम्प्रदायोंमें बँट गए। इनमें तात्त्विक दृष्टिसे तो कोई अन्तर नहीं था, यदि अन्तर था भी तो केवल गुरु-परम्पराका ही। तात्त्विक-दृष्टिसे ये समस्त सूफ़ी सन्त इस्लामका ही प्रचार कर रहे थे। मुसलमानोंके शासनकालमें हिन्दू जनताने तलवारके आगे मस्तक तो झुका

दिया था, किन्तु विदेशी शासनसे वह शंकितचित्त तो रहती ही थी। उसका विश्वास न जमता था। यही काम सूफियों द्वारा हुआ; क्योंकि ये सूफी सन्त अपने धार्मिक जीवनमें अत्यन्त सरल और सहिष्णु थे। मुसलमान बादशाहों द्वारा धर्म-प्रचार उतना सम्भव न था जितना सूफी सन्तोंके लिए संभव था। उस समयका राजनीतिक वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। सुलतानकी मृत्यु होते ही उपद्रव मच जाता था, जिस कारण प्रत्येक शासकको कुछ समय तक तो शान्ति-स्थापन तथा अपने पद और प्राणकी रक्षामें ही चिन्तित रहना पड़ता था। अधिक क्या कहा जाय, आरम्भिक अफगान बादशाहोंको तो शान्ति-पूर्वक राज्य करनेका अवसर ही न मिला। यद्यपि साधारण ढंगसे उन्होंने धर्म-प्रचारकी भी व्यवस्था कर रखी थी, किन्तु उस व्यवस्थामें बल न था। धर्म-प्रचार-कार्यमें तो सूफी दरवेशोंने ही विशेष सफलता पायी; क्योंकि एक तो इन दरवेशोंमें धर्म-प्रचारकी बड़ी लगन थी और दूसरे इन दरवेशोंमें बड़े-बड़े लोग भी थे, जिनका प्रभाव पड़े बिना न रहता। सैय्यदअशरफ जहाँगीर दरवेश तो इस्फहानका बादशाह था, उसने सूफी धर्मके लिए सिंहासन तक त्याग दिया था। ये दरवेश बड़े विद्वान् थे, जिससे इनके कार्य जादूकी भाँति आश्चर्यपूर्ण होते थे। इनका अध्ययन तगड़ा तो होता ही था, ये अनेक गुरुओंके निकट जा-जाकर ज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ा समय भी देते थे। कहना न होगा कि इस मार्ग पर वही आता भी था जो सच्चा विद्यानुरागी होता था। सूफी दरवेशोंके साथ उनकी लगी हुई करामाती आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे जनता बहुत प्रभावित हुआ करती थी। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि सूफी दरवेशोंने अपने शान्त और अहिंसापूर्ण प्रभावसे इस्लामी संस्कृति और धर्मको जितना व्यापक बनाया—जितनी दूर तक प्रचारित किया—उतना व्यापक मुसलमान बादशाहोंकी तलवारें उसे न बना सकीं। दूसरे धर्मानुयायी जनवर्गको अपने व्यक्तिगत सात्विक प्रभावमें लाकर इन सूफी दरवेशोंने इस्लामके अनुयायियोंकी संख्यामें अपरिमित

५—जुनैदी संप्रदाय—अभी तक इस संप्रदायका नष्टप्राय हो गया है। भारतमें सर्वप्रथम आनेवाला [illegible] था, चौदहवीं शताब्दीमें बाबाहाजी उल्लेखनीय है। इन्होंने बीदरको अपना केन्द्र बनाया था सिकन्दरी शेखनजीमुद्दीन अहमद था, जिसने गुजरातको बनाया। इसके पश्चात् बहाउद्दीनने सरहिन्दमें इसका प्रच

६—शत्तारी संप्रदाय—चौदहवीं शताब्दीके अब्दुल्लाह शत्तारी नामक सूफी दरवेशने शत्तारी संप्र की। इनके शिष्योंका नाम तो प्रकाशमें नहीं आया, कि संप्रदायमें कुछ नवीन प्रथाएँ चलाईं। भारतीय जनता न किया। इस संप्रदायमें मुहम्मद गौस नामके एक जिनके संबंधमें कहा जाता है कि सम्राट् हुमायूँ तकको इस संप्रदायमें कुछ दरवेश और भी थे जिनके नाम जौनपुरी, मीरसैय्यदअली कोवान और शाहपीर।

उपर्युक्त सम्प्रदायोंके अतिरिक्त "मदारी" नामक ए भी है, जिसे भारतमें शाहमदार बदीउद्दीन नामक सन्तको श्रेय है। इस सम्प्रदायका दूसरा नाम "उवैसी" भी था प्रचार उत्तरी भारत तथा उत्तर प्रदेशमें हुआ। अब्दुल शाहमदारी इसमें दीक्षा लिए थे।

दार्शनिक दृष्टिकोण—उपर्युक्त सभी सम्प्रदाय इराक, ईरान और अफगानिस्तानसे विविध सन्तोंके द्वा

स्थिति मानी गयी है। जिस प्रकार मायाके प्रभावमें मनुष्य मूढ हो जाता है, उसी प्रकार शैतान बन्देको भ्रमम डालकर उसे कुमार्ग पर ले जाता है। खुदासे मिलनेके लिए बन्देको अपना रूहका परिष्कार करना पड़ता है। इसके लिए 'शरीयत', 'तरीकत', 'हकीकत' और 'मारिफत' आदि चार दशाएँ मानी गयी हैं। 'मारिफत' में रूह (आत्मा) 'बका' (जीवन) प्राप्त करनेके लिए 'फना' हो जाती है। 'फना' होनेमें इश्क (प्रेम) का विशेष हाथ है। बिना इश्कके 'बका'की कल्पना ही नहीं हो सकती 'बका' में रूह (आत्मा) अपनेको 'अनलहक'की अधिकारिणी बना सकती है।*

'अनलहक'की स्थितिमें आत्मा आलमे 'लाहूत'की निवासिनी बनती है। 'लाहूत' के पहले अन्य तीन जगतोंमें रूह अपने परिष्करणका प्रयत्न करती है। उन तीनों जगतके नाम हैं आलमे नासूत (सत् भौतिक संसार), आलमे मलकूत (चित्-संसार) और आलमे जबरूत (आनन्द संसार)। 'लाहूत' में हक (ईश्वर) से सामीप्य होता है। जो सदैव एक है। इसे और भी स्पष्ट किया जा सकता है :—सूफीमतमें ईश्वर एक है, जिसका नाम 'हक' है। आत्मा और उसमें कोई भेद नहीं। आत्मा 'बन्दे' के रूपमें अपनेको प्रस्तुत करती है और 'बन्दा' इश्क अर्थात् प्रेमके आधार पर ईश्वर तक पहुँचनेका प्रयत्न करता है। शरीयत, तरीकत, हकीकतको पार करती हुई आत्मा जब मारिफत अवस्थाको पहुँचता है, तब वह ईश्वर-को प्राप्त करती है। वहाँ रूह स्वयं 'फना' होकर 'बका' के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मामें परमात्माका अनुभव होने लगता है और 'अनलहक' सार्थक हो जाता है। सूफीमतमें प्रेमका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस मतमें प्रेम ही धर्म है और कर्म भी। यों कहा जा सकता है कि सूफीमत ही प्रेममय है। इस प्रेमके साथ इसका नशा भी

* कबीर ग्रन्थावली पृ० १७७—"हम चुनूदिन नूर खालिक गरक हम तुम पेस।"

प्रधान है, क्योंकि इसी नशेके माध्यमसे ईश्वरानुभूतिका अवसर प्राप्त होता है। इसके कारण संसारकी विस्मृति हो जाती है, शरीरका कुछ ध्यान नहीं रह जाता। मात्र परमात्माकी ही 'लौ' लग जाती है। एक बात और भी स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि अनुरागके आधार नारीका ही रूप ईश्वरको इस मतने माना है। भक्त, पुरुष बनकर उस स्त्रीकी प्रसन्नता के लिए नाना प्रकारकी चेष्टा करता है। उससे प्रेमकी भीख माँगता है।

रचनाएँ और काव्य-पद्धति—प्रेम-काव्यकी आदिम रचना "चन्दावन" या "चन्दावत" है।* इसके बाद 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', 'खण्डरावती', 'मधुमालती' और 'प्रेमावती' आदि रचनाएँ मिलती हैं। उपर्युक्त ग्रन्थोंकी ओर प्रसिद्ध सूफी कवि मलिकमुहम्मद जायसीने अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में इसका संकेत कर दिया है :—

"विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।
साधे कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुधवर बाँधा॥†

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त दामो नामक कविकी "लक्ष्मणसेन-पद्मावती" तथा जायसी कृत 'पद्मावत' ग्रन्थ और हैं। इन प्रेम-कथाओंके अतिरिक्त अनेक प्रेम-कथाएँ ऐसी भी मिलती हैं, जो संपूर्णतः आख्यानक थीं; जिनमें प्रेमके मनोविज्ञानके अतिरिक्त और कोई व्यंजना नहीं है। यह ध्यान देनेकी बात है कि ये रचनाएँ पद्य और गद्य दोनोंमें लिखी गयी हैं, जिनमेंसे प्रमुख हैं "माधवानल काम कन्दला", "कुतुब सतक", "रस-

* हिंदी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास—(पृ० २०६)—डा० . र वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०। †—जायसी-ग्रन्थावली (पृ० १०८) (ना० प्र० स०) सं० आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

रतन", ज्ञानद्वीप", "पंचसहेली कवि छीहलरी कही", "सदैवच्छसावलिंगारा दूहा", "कनक मंजरी", "मैनासत", "मदन सतक", "ढोला मारु रा दूहा", "बिनोदरस" "पुहुपावती", "नल-दमन", "जलाल गहाणी री बात", "हंस-जवाहर", "चन्दनमलयागिरि री बात", "मधुमालती", "त्रिया बिनोद" "इन्द्रावती", "कामरूपकी कथा", "चन्द्रकुँवर री बात", "प्रेमरतन" और "पनावीरमदेरी बात" ये रचनाएँ पद्यमें हैं। इनके अतिरिक्त "बात संग्रह", "बीजल बिजोगण री कथा", "मोमल री, बात", "रावल लखणसेन री बात", "राणे खेतैरी बात", "देवरे नायकदेरी बात", "बींझरै अहीर री बात", ऊमादे भटियाणी री बात", सोहणी री बात" और पँमे धोरान्धार री बात" आदि रचनाएँ गद्यमें हैं।

उपर्युक्त रचनाओंके लेखक हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। इन रचनाओंकी कथा-वस्तु हिंदू-पात्रोंके जीवनसे ली गयी है। इन रचनाओंमें जिनके लेखक हिंदू हैं, वे आख्यायिका और मनोरंजनकी भावनासे पूर्ण हैं। किसी-किसी रचनामें सिद्धांत-निरूपण भी पाया जाता है; ऐसी रचनाओंके लेखक मुसलमान हैं, जिनकी रचनाओंमें कथा और सूफी सिद्धांतोंकी गतिके साथ-साथ चलती है। इन समस्त रचनाओंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट रचना "पद्मावत" है, जिसके लेखक मलिकमुहम्मद जायसी हैं।* 'पद्मावत' की रचनाके पूर्व प्रेम-काव्य पर कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, यह तो 'पद्मावत' में कविने स्वीकृत ही किया है। मलिक-मुहम्मद जायसीके बहुत पहलेही महात्मा कबीरने हिन्दू और मुसलमान एकताका ऐसा वातावरण पैदा किया था, जिससे कि साधारण जनता राम और रहीमके भेदको मिटानेके प्रयत्नमें थी। हिन्दू साधुओं और मुसलमान

*जायसीका जन्म सं० ६०० हिजरी माना जाता है, ये जायसके रहनेवाले थे। कहा जाता है वे एक आँखके काने थे, जिससे बड़े कुरूप थे।

कबीरने पहले ही भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ताकी एकताका आभास दिया था, किन्तु हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्योंके रचयिताओंने प्रत्यक्ष जीवनकी एकताका दृश्य सामने रखनेकी चेष्टा की।

इन प्रेमाख्यानक-काव्योंकी विशेषता यह है कि इनकी रचना भारतीय चरित काव्योंकी सर्ग-बद्ध शैली पर न होकर फारसीकी मसनवियोंके ढर्रे पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों या अध्यायोंमें विस्तारके हिसाबसे नहीं बँटती, वह बराबर चलती है। शीर्षकके रूपमें विशेष घटनाओं या प्रसंगोंका निर्देश रहता है। मसनवीका साहित्यिक नियम यही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्दमें हो और परम्परा निर्वाहके अनुसार उसमें कथारम्भके पूर्व ईश्वर-स्तुति, पैगंबर-वन्दना तथा उस समयके राजाकी प्रशंसा भी हो। मसनवीकी यह प्रणाली प्रायः सभी हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्योंमें पायी जाती है। ये प्रेमाख्यानक-काव्य अवधी भाषामें एक नियमक्रमके साथ, मात्र दोहे और चौपाई छन्दमें लिखे गए हैं *।

इन सभी प्रेमाख्यानक-काव्योंमें प्रतिनिधिरचना 'पद्मावत' है और प्रतिनिधि कवि मलिकमुहम्मद जायसी हैं। अतः अब 'पद्मावत' पर ही अध्ययन उपस्थित कर प्रेमाख्यानक-काव्यका प्रसंग समाप्त किया जाता है।

जायसीका पद्मावत—"पद्मावत" की कलात्मकताका परिचय करानेके पूर्व यह आवश्यक है कि इस ग्रन्थकी कथाका संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। 'पद्मावत' की कथा इस प्रकार है—"सिंहल द्वीपमें राजा गन्धर्वसेन राज्य करता था, उसकी पुत्रीका नाम पद्मावती था। राजभवनमें हीरामन नामक एक विलक्षण तोता था; जिससे पद्मावती बहुत प्रेम करती थी और वह तोता सदा उसके समीप रह कर अनेक प्रकारकी बातें कहा करता था। जब पद्मावती कुछ बड़ी हुई तो उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा

---

* जायसीने सात-सात चौपाइयों (अर्धालियों) के बाद एक-एक दोहेका क्रम रखा है।

सारे भूमण्डलमें होने लगी। किन्तु विवाहका समय आ जाने पर भी जब उसका विवाह न हुआ, तब वह रात-दिन हीरामन तोतेसे इसकी चर्चा किया करती थी। एक दिन उसके साथ समवेदना प्रकट करते हुए तोतेने कहा यदि कहो तो तुम्हारे लिए देश-देशान्तरमें भ्रमण कर योग्य वर ढूँढ़ दूँ। इसका समाचार पाते ही राजा क्रुद्ध हो गया और उसने तोतेके वधकी आज्ञा दे दी। किन्तु राजपुत्री पद्मावतीने किसी प्रकार उसे बचा लिया। तोतेने पद्मावतीसे विदा माँगी, किन्तु पद्मावतीने उसे रोक लिया। हीरामन उस समय रुक तो गया, किन्तु उसे भय तो हो ही गया था।

"एक बार पद्मावती सखियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए मानसरोवरमें स्नान करने गयी, उसी समय हीरामन तोता चल पड़ा, जब वह एक बनमें गया तो पक्षियों द्वारा उसका बड़ा सम्मान हुआ। दस दिनोंके पश्चात् एक बहेलिया हरी पत्तियोंकी टट्टी लिए उस बनकी ओर चला आ रहा था और पक्षी तो उसे देखकर उड़ गए, किन्तु हीरामन चारेके लोभसे वहीं रहा। बहेलिएने अन्तमें उसे पकड़ लिया और बाजारमें उसे बेचने लाया। चित्तौरके एक व्यापारीके साथ एक दीन-हीन ब्राह्मण भी कहींसे कुछ रुपए लेकर लाभकी आशासे सिंहलकी हाटमें आ पहुँचा। उसने उस विलक्षण तोतेको खरीद लिया और वह चित्तौर वापस लौट आया। उस समय चित्तौरका राजा चित्रसेन मर चुका था। उसका पुत्र रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। हीरामनकी प्रशंसा सुन उसने उसे एक लाख रुपएमें खरीद लिया।

"एक दिन रत्नसेन शिकार खेलने चला गया। उसकी रानी नागमती तोतेके पास आयी और बोली "मेरे समान सुन्दरी और भी कोई संसारमें है?" इस पर हीरामनको हँसी आ गयी और उसने कहा कि सिंहलकी पद्मिनी स्त्रियोंकी समानतामें तुम्हारी वैसी ही सुन्दरता फीकी है जैसे दिनके प्रकाशकी समानतामें अँधेरी रात फीकी रहती है। रानीने

अपमाल देनेकी प्रतिज्ञा की और कहा कि बसन्त-पंचमीके दिन पूजा करने उसे देखने जाऊँगी। यह सब समाचार राजाको तोतेने लौटकर मंडपमें सुना दिया। बसंत पंचमीके दिन अपनी सभी सखियोंके साथ पद्मावती मंडपमें गयी और ऊपर भी पहुँची, जिधर रत्नसेन अपने साथियोंके साथ था। ज्योंही रत्नसेनकी आँखें उस अनिन्द्य सुन्दरी पद्मावती पर पड़ीं, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पद्मावतीने भी रत्नसेनको वैसा ही पाया जैसा हीरामनने कहा था। पद्मावती मूर्च्छित योगीके पास गयी और होशमें लानेके लिए उस पर चन्दन छिड़का। जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब चंदनसे उसके हृदय पर "जोगी तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य-योग नहीं सीखा, जब फल प्राप्तिका समय आया तब तू सो गया।" लिखकर चली गयी। जब राजाको होश हुआ तब वह बहुत पश्चात्ताप करने लगा। अन्तमें वह जल मरने पर आरूढ़ हुआ। सभी देवता भयभीत हो गए कि कहीं यह जलमरा तो इस भयकर विरहाग्निसे समस्त लोक भस्म हो जायँगे। उन्होंने जाकर महादेव-पार्वतीके यहाँ पुकार की। महादेव कोढ़ीके वेशमें बैल पर चढ़े राजाके पास आए और जलनेका कारण पूछने लगे। इधर पार्वतीकी, जो महादेवके साथ थीं, यह इच्छा हुई कि राजाके प्रेमकी परीक्षा लें। वे अत्यन्त सुन्दरी अप्सराका रूप धर राजाके समीप जाकर बोलीं—"मुझे इन्द्रने भेजा है। पद्मावतीको जाने दो, तुझे अप्सरा प्राप्त हुई।" रत्नसेन बोला—"मुझे पद्मावतीको छोड़ और किसीसे कोई प्रयोजन नहीं।" पार्वतीने महादेवसे कहा—'राजाका प्रेम सच्चा है।' राजाने देखा इस कोढ़ीकी छाया नहीं पड़ती, इसके शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, इसकी पलकें भी नहीं गिरतीं, अतः यह निश्चय ही कोई सिद्ध पुरुष है। फिर महादेवको पहचानकर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। महादेवने उसे सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढ़में घुसनेका मार्ग दिखाया। सिद्धि-गुटिका पाकर रत्नसेन सब योगियोंके साथ सिंहलगढ़ पर चढ़ने लगा।

"जब यह समाचार राजा गन्धर्वसेनको मिला, तब उसने दूत भेजा। दूतोंसे योगी रत्नसेनने पद्मिनीके पानेका अभिप्राय कहा। दूत कुपित होकर लौट पड़े। इसी बीच हीरामन रत्नसेनका प्रेम-सन्देश लेकर पद्मावतीके पास पहुँचा और पद्मावतीका प्रेम-भरा सन्देश राजा रत्नसेनसे कहा। इससे रत्नसेनको और भी प्रेरणा मिली। गढ़के भीतर जो अगाध कुण्ड था, उसमें वह रातको धँसा और भीतरीद्वारको, जिसमें वज्रके किवाड़ लगे थे, उसने जा खोला; परन्तु इसी बीच सबेरा हो गया और वह अपने साथी योगियोंके सहित घेर लिया गया। राजा गन्धर्वसेनके यहाँ यह विचार हुआ कि योगियोंको पकड़कर सूली दे दी जाय। दल-बलके सहित सब सरदारोंने योगियों पर चढ़ाई की। रत्नसेनके साथी युद्धके लिये उत्सुक हुए, रत्नसेनने उन्हें उपदेश देकर शान्त कर दिया और कहा प्रेम-मार्गमें क्रोध करना उचित नहीं। अन्तमें सब योगियों सहित रत्नसेन पकड़ा गया। ऐसा समाचार पाने पर पद्मावतीकी दशा अत्यन्त खराब हो गयी। हीरामन तोतेने आकर उसे धैर्य बँधाया कि रत्नसेन पूर्ण सिद्ध हो गया है, वह मर नहीं सकता। जब रत्नसेन बाँधकर सूलीके लिए लाया गया, तब जिसने-जिसने उसे देखा, सबने कहा—"यह कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इधर सूलीकी तैयारी हो रही थी, उधर रत्नसेन पद्मावतीका नाम रट रहा था, महादेवने जब योगी पर ऐसा संकट देखा तब वे और पार्वती भाँट-भाँटिनका रूप धर कर वहाँ पहुँचे। इसी बीच हीरामन तोता भी रत्नसेनके पास पद्मावतीका सन्देश लेकर आया कि "मैं भी हथेली पर प्राण लिए बैठी हूँ; मेरा जीना मरना तुम्हारे साथ है।" भाँट (जो कि वास्तवमें महादेव थे,) ने राजा गन्धर्वसेनको बहुत समझाया कि यह योगी नहीं, राजा है। यह तुम्हारी कन्याके योग्यवर है, किन्तु राजा इस पर भी और अधिक क्रुद्ध हो गया। उधर योगियोंका दल चारों ओरसे लड़ाईके लिए बढ़ा। महादेवके साथ हनुमान आदि देवता योगियोंकी सहायताके लिए आ खड़े हुए। गन्धर्वसेनकी सेनाके

राजाको पद्मावतीके पास ले गयीं। पद्मावती और रत्नसेन अनेक दिनों तक समुद्र और लक्ष्मीके मेहमान होकर वहाँ रहे। पद्मावतीकी प्रार्थना पर लक्ष्मीने उन सब साथियोंको भी ला खड़ा किया, जो इधर-उधर बह गए थे। जो मर गए थे, वे भी अमृत पिलानेसे जी गए। तब बड़े आनन्दके साथ वे सब वहाँसे विदा हुए। विदा होते समय समुद्रने बहुतसे अमूल्य रत्न भेंट किए। उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तुएँ थीं—अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारसपत्थर। इन सभी अनमोलपदार्थोंको लिए हुए रत्नसेन पद्मावतीके साथ चित्तौर जा पहुँचा। नागमती और पद्मावती दोनों रानियोंके साथ राजा सुखपूर्वक रहने लगा। नागमतीसे नागसेन और पद्मावतीसे कमलसेन, ये दो पुत्र राजाको हुए।

"चित्तौरकी राज-सभामें राघवचेतन नामक एक पंडित था, जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजाने पंडितोंसे पूछा—"दूज कब है?" राघवके मुँहसे निकला—"आज।" अन्य पंडितोंने कहा—"आज नहीं हो सकती, कल होगी।" राघवने कहा यदि आज दूज न हो तो मैं पंडित नहीं। "पंडितोंने कहा कि "राघव वाममार्गी है, यक्षिणीकी पूजा करता है, जो चाहे सो कर दिखावे, किन्तु आज दूज नहीं हो सकती।" राघवने यक्षिणीके प्रभावसे उसी दिन संध्याको द्वितीयाका चन्द्रमा दिखा दिया, किंतु दूसरे दिन फिर द्वितीयाका ही चन्द्रमा दिखाई पड़ा। इस पर पंडितोंने राजा रत्नसेनसे कहा—"देखिए यदि कल द्वितीया रही होती, तो आज चन्द्रमाकी कला कुछ अधिक होती। झूठ और सचकी परख कर लीजिए।" राघवका भेद खुल गया और वह वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाला प्रमाणित हुआ। राजा रत्नसेनने उसे देश निकालेका दण्ड दिया।

"पद्मावतीने जब यह वृत्तान्त सुना, तब उसने ऐसे गुणी पंडितका असंतुष्ट होकर जाना राज्यके लिए अच्छा नहीं समझा। उसने भारी दान देकर राघवको प्रसन्न करना चाहा। सूर्यग्रहणका दान देनेके लिए उसने

वीरोंने राजाको छुड़ानेकी प्रतिज्ञाकी और रानीको बड़ा धैर्य बँधाया। दोनोंने सोचा जिस प्रकार मुसलमानोंने धोखा दिया, उसी प्रकार उनके साथ भी चाल चलनी चाहिए। उन्होंने सोलह सौ ढकी पालकियोंके भीतर दो सहस्र राजपूत सरदारोंको बैठाया और सबसे उत्तम बहुमूल्य पालकीमें औजारके साथ एक लोहारको बैठाया और इसका प्रचार कर दिया कि सोलह सौ दासियोंके साथ पद्मिनी दिल्ली जा रही है। गोराके पुत्र बादलकी अवस्था छोटी थी, जिस दिन दिल्ली जाना था, उसी दिन उसका गवना आया था। उसकी नवागता वधूने उसे युद्धमें जानेसे बहुत रोका, किन्तु उस वीर कुमारने एक भी न सुनी। अन्तमें सभी सवारियाँ दिल्लीके किलेमें पहुँची। वहाँ पर कर्मचारियोंको घूस देकर अपने पक्षमें किया गया जिससे किसी पालकी की तलाशी न ली गयी। बादशाहके यहाँ खबर दी गयी कि पद्मिनी आई है और वह कहती है कि मैं राजासे मिल लूँ और चित्तौरके खजानेकी कुँजी उनके सिपुर्द कर दूँ तब महलमें जाऊँ। बादशाहने आज्ञा दे दी। वह सजी हुई पालकी वहाँ पहुँचाई गयी, जहाँ राजा रत्नसेन कैद था। लोहारने वहाँ पहुँच कर चट राजाकी बेड़ी काट दी और वह शस्त्र लेकर घोड़े पर सवार हो गया, जो पहलेसे तैयार था। देखते-देखते हथियारबन्द सरदार भी पालकियोंसे निकल पड़े। इस प्रकार गोरा और बादल राजाको छुड़ा कर चित्तौर चले। जब बादशाहको समाचार मिला, तब उसने अपनी सेना सहित पीछा किया। गोरा-बादलने जब शाहीफौजको पीछे आते हुए देखा, तब एक हजार सैनिकोंके साथ गोरा तो शाहीफौजको रोकनेके लिए डट गया और बादल राजाको लेकर चित्तौरकी ओर बढ़ा। गोरा वीरतासे लड़कर हजारोंको मार अन्तमें सरजाके हाथों मारा गया। इसी बीच रत्नसेन, चित्तौर पहुँच गया और चित्तौर पहुँचते ही राजाने पद्मिनीके मुँहसे देवपालकी दुष्टताका समाचार पाते ही उसे बाँध लानेकी प्रतिज्ञा की। सबेरा होते ही राजाने कुंभलनेर पर चढ़ाई कर दी। देवपाल और

विस्तारमें मनोरंजनकी यथेष्ट सामग्री दे दी है। कविको सबसे बड़ी सफलता पात्रोंके मनोवैज्ञानिक चित्रणमें मिली है। नागमतीका विरहवर्णन, उसकी उन्मादावस्था, पशुपक्षियोंका उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना, पक्षी द्वारा संदेश भेजना आदि स्वाभाविक ढंगसे विदग्धतापूर्ण भाषामें वर्णित हैं, जो कविकी रचनामें विशेष मार्मिक स्थल हैं।* इसी प्रकार बारहमासामें वेदनाका स्वरूप और हिन्दू दाम्पत्य-जीवनका अत्यन्त हृदयहारी दृश्य कविने उपस्थित किया है। रत्नसेन और पद्मावती-मिलनमें संयोग तथा नागमतीके विरह-वर्णनमें वियोगशृङ्गारकी मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना कविने बड़े कौशलसे किया है। गोराबादलके उत्साहमें तो वीररस जैसे मूर्तिमान हो गया है। इसी प्रकार रत्नसेनके योगी होनेकी और उसकी मृत्युकी कथामें करुणरसकी सृष्टि अत्यन्त मार्मिक है। जायसी ऐकान्तिक प्रेमकी गम्भीरता और गूढ़ताके मध्य जीवनके दूसरे अंगोंके साथ भी प्रेमका स्पर्श करते चले हैं, यही कारण है कि उनकी प्रेम-गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवनसे विच्छिन्न नहीं होने पायी है। वास्तवमें उसमें व्यवहारात्मक तथा भावात्मक दोनों शैलियोंका संघटन है। इतना होते हुए भी 'पद्मावत' जीवन-गाथा नहीं कही जा सकती, बल्कि इस रचनाको प्रेम-गाथा ही कहना उपयुक्त होगा। ग्रन्थका पूर्वार्द्ध भाग तो प्रेम-गाथाके विवरणोंसे पूर्ण है; किंतु उत्तरार्द्धमें जीवनके दूसरे मार्गोंका भी सन्निवेश पाया जाता है। दाम्पत्य-प्रेमके अतिरिक्त मानवकी दूसरी वृत्तियाँ, जिनका कुछ विस्तारके साथ समावेश है, वे पूर्णरूपसे परिस्फुट नहीं हो पायी हैं। जैसे यात्रा, युद्ध, मातृस्नेह, सपत्नीकलह, स्वामिभक्ति, वीरता, कृतघ्नता सतीत्व और प्रवंचना। दाम्पत्य-प्रेमके अतिरिक्त मानव-जीवनकी इन वृत्तियोंके बावजूद भी 'पद्मावत' शृङ्गाररस-प्रधान काव्य कहा जा सकता है।

---

* 'हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १६६-७—डा० कमलकुल श्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल० देखिए।

'पद्मावत' का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थल नागमतीके विरह-वर्णनका है, जहाँ कविको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। अतः यहाँ थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। हिंदी-साहित्यके अन्य कवियोंने भी विरह-वर्णन किया है; किंतु जायसीका विरह-वर्णन अपनी अलग विशेषता रखता है। नागमती उपवनमें वृक्षोंके नीचे सारी रात व्यथित हो, रोती रहती है। उसकी इस दशासे पशु-पक्षी वृक्ष, पल्लव सभी सहानुभूति रखते हैं। यद्यपि कवियों द्वारा ऐसा वर्णन और दूसरी रचनाओंमें भी पाया जाता है, किंतु जायसीने पशु-पक्षियों, पेड़-पल्लवोंको सहानुभूति दिखाकर कवि परम्पराके इस तत्वको ग्रहण करनेमें भी नवीनता ला दी। दूसरे कवियोंने इस वर्णनमें पशु-पक्षियोंको संबोधित भर किया है, किंतु जायसी इससे एक कदम आगे हैं।

"फिरि फिरि रोव कोइ नहिं डोला। आधी राति बिहंगम बोला॥
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी॥"

नागमतीकी इस दीनदशा पर विहंगमको दया आ जाती है और जब उससे रहा नहीं जाता, तब वह उसके दुःखका कारण पूछता है। ऐसा करके कविने हृदय-तत्वकी सृष्टि-व्यापिनी भावना-द्वारा मानव एवं पशु-पक्षी सबको एक ही जीवन-सूत्रमें आबद्ध करनेकी, सफल चेष्टा की है। क्योंकि अन्य कवियोंके खग-मृग मौन रहते हैं। वे कुछ भी उत्तर नहीं देते, जिससे किसीकी (पशु-पक्षियोंकी) सहानुभूति प्रकट नहीं होती।

नागमती अपना हृदय खोलकर पक्षीसे कहती है :—

"चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक।
कहौं बिरह-दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक॥"

समवेदना प्रकट करते हुए वह विहंग सँदेशवाहक होनेको तत्पर हो जाता है। नागमतीने पद्मावतीके पास जो सदेशा भेजा है वह अत्यन्त मार्मिक है; क्योंकि वह मान, गर्व आदिसे रहित है, उसमें सुख और

भोगकी कामना नहीं है, उसमें है विनम्रता, शीतलता और विशुद्ध प्रेमकी अभिव्यंजना।

पद्मावति सौं कहेहु बिहंगम। कन्त लोभाइ रही करि संगम॥
तोहि चैन सुख मिले सरीरा। मो कहँ दिए दुंद दुख पूरा॥
हमहुँ बियाही सँग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ, जानु पर-जीऊ॥
मोहिं भोग सौं काजन बारी। सौंह दिष्टि कै चाहन हारी॥"

उपर्युक्त वर्णनमें जायसीने विलासितासे रहित पवित्र प्रेमकी सृष्टि की है, जिसमें नागमतीके व्यक्तित्वका संरक्षण करते हुए कविने पाठकके हृदयमें संवेदनाका स्रोत बहा देनेका सफल प्रयत्न किया है।

इसी प्रकार—

"दहि कोइला भई कंत-सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन जरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
+ + +
हाड़ भए सब किंकरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥"

विरह-वर्णनका यह दृश्य जो कविने दिखाया है वह कितना मार्मिक है! विरह-वर्णनके अन्तर्गत कविने जिस बारहमासेकी सृष्टि की है, वह वेदनाकी कितनी सुन्दर अभिव्यंजना है, उसके भीतर जो हिंदू दाम्पत्य-जीवनका हृदयहारी चित्रण है, जिसमें चारों ओरकी प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारोंके साथ पवित्र भारतीय हृदयकी साहचर्य-भावना और विषय-के अनुसार भाषाका स्वाभाविक प्रयोग संघटित है, वह भुलाया नहीं जा सकता। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

"चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह, दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन आए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुन्द-बान बरसहिं घन घोरा॥
+ +

"दाट अगुम अथाह गँभीरो। जिउ बाउर भा फिरै भँभोरो॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
जेठ जरै जग चलै लुवारा। उठहिं बवंडर परहिं अँगारा॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैनन सूझ, मरौं दुख बाँधी॥"

वास्तवमें जायसी-कृत नागमतीका विरह-वर्णन व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक विरह-रूपमें वर्णित हुआ है। क्योंकि उसके दुःखसे छोटे-बड़े सभी स्तरोंके व्यक्ति समवेदना प्रकट कर सकेंगे। उसके विरह-वर्णनमें राजमहलके ऐश्वर्यौंका नाम लिया गया होता तो नागमतीका विरह शायद इतना व्यापक न होकर एकांगी हो जाता। विरह-वर्णनमें चौमासे-वाले प्रसंगमें स्वामीके घर न रहने पर घरकी जो स्थिति होती है, वह सर्वसाधारणकी स्थितिका चित्र है—

"पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा॥"

इसी प्रकार घरीरका रूपक देकर वर्षाके आगमन पर जिस चिन्ताकी झलक कविने दिखायी है वह साधारण गृहस्थोंके स्तरको स्पर्श करती है।

"तपै लागि अब जेठ असाढ़ी। मोहिं पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव, कहौं का रोई॥
साँठि नाहिं, जग बात को पूछा। बिनु जिउ फिरै, मूँज-तनु छूँछा॥
भई दुहेली टेक-बिहूनी। थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी॥
बरसै मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा॥
कोरौं कहाँ, ठाट नव साजा। तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा॥"

इसी प्रकार—

"कोरे दिना बनावै भाऊ। ढोरे बार होइ कँध राऊ॥
रकत-रकत तन सब झौरै। हरहि,हरहि करिके हिय कोरै॥"

• • •

"भवरिहु रतन भई रे छूटे। अंबर रहहिं रखैय छूटे॥

उठै आगि औ आवै आँधी । नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी ॥

संक्षेपमें यहां कहा जा सकता है कि जायसीके विरहोद्गार अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं; क्योंकि विरह-वेदनाकी जो कोमलता, गम्भीरता और सरलता इनकी रचनामें है, वह बहुत कम कवियोंकी रचनाओंमें मिलता है। नागमती सहानुभूतिकी जो भावना सभी जीव-जन्तुओंमें करती है वह विलक्षण है। रानी सोचती है कि उसकी विरहाग्निके धुएँसे भौंरे और कौवे काले हो गए हैं—

"पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुँआ हम्ह लाग॥"

इतना होते हुए भी कहीं-कहीं विरह-वर्णनमें वीभत्सता आ गयी है—

"विरह दगध कीन्ह तन भाठी। हाड़ जराइ कीन्ह जस काठी॥
नैन-नीर सों पोता किया। तस मदचुवा बरा जस दिया॥
बिरह सराग़हि भूँजै माँसू। गिरि-गिरि परे रकत कै आँसू॥"

इस विरह-वर्णनसे घृणा उत्पन्न होती है, सहानुभूति नहीं। रचना कहीं-कहीं अस्वाभाविकताके दोषसे दूषित भी हो गयी है—

"बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहितें अधिक लंक वह खीनी॥
परिहँस पियर भए तेहि बसा। लिए डंक लोगन कहँ डसा॥
मानहुँ नाल खंड दुइ भए। दुहुँ बिच लंक तार रहि गए॥"

जान पड़ता है कि कटि-प्रदेशकी सूक्ष्मताके वर्णनमें कविने आध्यात्मिक-तत्त्व रख देनेकी चेष्टा की है। क्योंकि बर्रेकी कमर अत्यंत पतली होती है, किंतु पद्मावतीकी कमर उससे भी पतली है, जिससे बर्रे लजाकर पीली हो गयी और ईर्ष्याके कारण डंक लेकर लोगोंको काटती फिरती है। उसकी कमर अत्यन्त क्षीण है जैसे मृणालके दो टुकड़े हो जाने पर अत्यंत पतले तारे लगे रहते हैं। इसी प्रकारका दूसरा वर्णन भी नीचे दिया जाता है—

"बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥

जुरी राम रावन के सेना। बीच समुद्र भए दुइ नैना ॥
वारहिं पार बनावरि साधा। जासहुँ हेरे लाग बिष बाधा ॥
उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा ॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओही के हने ॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥
रोंव-रोंव मानुस तन ठाढ़े। सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े ॥
बरुनि बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढांख।
सौजहिं तन सब रोवाँ पंखिहिं तन सब पांख ॥"

पद्मिनीका रूप-वर्णन सुनकर राजा रत्नसेनका मूर्छित हो जाना, पद्मिनीके सतीत्वका महत्व दिखानेके लिए कुम्भलनेरगढ़के राजा देवपाल (जो कि रूप गुण, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य आदि किसीमें भी रत्नसेनसे बढ़कर नहीं है।) का दूती भेजकर पद्मिनीको बहकानेका विफल प्रयत्न करनेका वर्णन, (जिनसे कि पद्मावतीके सतीत्व पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता) विशेष महत्व नहीं रखते।

इसी प्रकार सयानके भी प्रसंगमें ऐसे ही दोष आ गए हैं—

"मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसा पीठि कढ़ावौं सालू ॥
कुच-तुँबी अब पीठि गड़ोवौं। गहे जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं ॥"

जब बादलने अपना नवागता-वधूकी ओरसे पीठ फेर ली है, तब उसकी वधू सोचती है, "क्या मेरे कटाक्ष तो पतिके हृदयको बेधकर पीठकी ओर बाहर तो नहीं निकल आए। यदि ऐसा ही है तो तुँबा लगाकर उसे मैं खींच लूँ और जब वह पीड़ासे चौंककर मुझे पकड़े तो पहले रसमें उसे धो दूँ।" इसमें ऐसे वर्णन कविके अन्दर महाकवित्व का नहीं होनेपूर्ण समझे जाते हैं*।

इस्लाम धर्म पर जायसीकी पूर्ण आस्था थी। इन्होंने मक-

---

* देखिए आचार्य शुक्ल कृत त्रिवेणी पृ० ४१।

नवियोंकी प्रेम-पद्धतिको अपनाया है, किन्तु रचनाको सर्वग्राही बनानेके उद्देश्यसे इन्हें हिन्दू लोक-व्यवहारके भाव भी ग्रहण करने पड़े हैं। इस प्रसंग पर यदि कविके सम्प्रदायगत विचारों पर थोड़ा विचार कर लिया जाय तो ठीक होगा—

जायसीके जीवन-वृत्त पर विद्वानोंने कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है। किन्तु इनका जायसका रहना तो प्रसिद्ध ही है।* ये सैयद मुहीउद्दीन-के शिष्य थे, जैसा कि इनके इस पदसे जान पड़ता है कि "गुरु मेंहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥" (पद्मावती पृ० ८) गणनासे चिश्तिया निजामियाकी शिष्य-परम्परामें ये ग्यारहवें शिष्य ठहरते हैं। जायसी सूफी-सिद्धान्तोंसे भलीभाँति परिचित थे, क्योंकि ये अपने समयके सूफी संतोंमें विशेष आदरके पात्र थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दू-धर्मके लोक-प्रसिद्ध वृत्तान्तोंकी भी अच्छी जानकारी प्राप्त की थी। यही कारण था, कि जनताकी धार्मिक मनोवृत्तिको सन्तुष्ट करनेमें ये विशेष सफल हुए। बादशाह शेरशाहका इन्होंने आश्रय ग्रहण किया था। "शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारों खण्ड तपै जस भानू।" इसीका परिचायक है। 'पद्मावती'के आधार पर कि 'एक आँख कवि मुहम्मद गुनी, कहा जाता है कि इन्हें एकही आँख थी। कुछ समय तक ये गाजी-पुर और भोजपुर भी रहे और अन्तमें अमेठी राज्यमें जाकर रहने लगे। इनकी कब्र अमेठी राज्यमें ही है।

इनके समयमें हिन्दू जनताके अन्तर्गत राम और कृष्णकी उपासना अधिक लोकप्रिय थी। इन्होंने उसे अपने काव्यकी सामग्री न बनाकर प्रचलित सूफी सिद्धान्तोंको ही अत्यन्त मनोरंजक और सरल बनाकर जनताकी रुचि अपनी ओर आकृष्ट की। वास्तवमें हिन्दू वृत्तान्तोंके

*'जायस नगर धरम स्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥''— 'पद्मावत' पृ० १०।

उठाई। तुलसीदासने लिखा—"गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग" और मानसके ज्ञान-दीपक प्रसंगमें योगपर भक्तिकी विजय दिखायी। इसी प्रकार सूरने भी भ्रमरगीतीय रचनाके द्वारा योगको भक्तिसे महत्वहीन घोषित किया। ऊपर लिखा जा चुका है कि सन्त कबीरने योगको आश्रय दिया। शरीरके अन्तर्गत इड़ा नाड़ीको यमुना, पिंगलाको गंगा तथा सुषुम्नाको सरस्वती आदि कहा—"एहि पार गंगा ओहि पार जमुना, बिचवामें मड़ैया हमारी छवाए जैहो।" इनका कहना था कि इसी शरीरमें त्रिवेणी है। सिरमें आकाशकी स्थिति। इन सन्तोंकी अटपटी बातोंमें जनता बड़े कौतूहलसे फँस जाती थी। वास्तवमें इस समय हिन्दू धार्मिक-भावनाके अन्तर्गत सहिष्णुता एवं सम्मिश्रणकी भावना बड़ी प्रबल थी। तुलसीदास आदि सन्त स्वयं शैव-वैष्णव-संबंधी समस्याओंमें सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे और आगे चलकर किया भी। राम और कृष्ण एक ही हैं, इसका भी प्रचार हो रहा था। महात्मा कबीर अपने मतमें भक्ति और योग दोनोंको ग्रहण कर रहे थे। इधर हिन्दू-धर्ममें रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति भी विद्यमान थी। ग्यारह आसक्तियोंमें कान्तासक्ति भी एक थी, इसी भावसे गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करती थीं।

वास्तवमें इस्लाम धर्ममें अद्वैतवाद नहीं ग्रहण किया गया था। किन्तु सूफी सन्तोंने एकेश्वरवादका समर्थन किया था। योग—प्राणायाम आदि भारतीय सूफी-सन्तोंमें प्रचलित थे। शेख बुरहानका एक प्रसिद्ध योगी होना और दाराशिकोहका 'रिसाला हकनामा' आदि इसके प्रमाण हैं। इस समयके सूफियोंमें धार्मिक सहिष्णुता तथा सामंजस्यकी भावना प्रबल दिखाई पड़ती है—क्योंकि एक मूर्तिपूजकको देखकर (जब वह मूर्तिपूजा कर रहा था) निजामुद्दीन औलिया (जो एक सुप्रसिद्ध सूफी धर्मका प्रचारक था) का कहना—"हर कौम रास्ते राहे, दीने व किबला गाहे" अर्थात् "प्रत्येक जातिका अपना मार्ग, अपना धर्म, और अपना

पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। क्योंकि जायसी आदि सूफी सन्त इस वातावरण और भावनासे बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं। आगे हम इसी पर विचार करेंगे।

हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्यकी धाराके विषयमें अभी तक तीन प्रकारके विचार मिलते हैं—

१—"ये मुसलमान-कवि हिन्दू-मुसलिम ऐक्य चाहते थे।" यह मत आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लजीका है।"*

२—"ये कवि सूफी-धर्मका प्रचार चाहते थे और इन्होंने लौकिक आख्यानोंके माध्यमसे अलौकिक सत्ता तथा रहस्यवादी प्रेमकी व्यंजना इन आख्यानोंमें की है।" "इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओंकी कहानियाँ हिन्दुओंकी ही बोलीमें पूरी सहृदयतासे कहकर उनके जीवनकी मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओंके साथ अपनी उदारताका पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। जायसीके लिए जैसा तीर्थ-व्रत था, वैसा ही नमाज और रोजा। वे प्रत्येक धर्मके लिए सहिष्णु थे। इन कवियोंने कभी किसी मतके खण्डनकी चेष्टा नहीं की।"‡

और तीसरा मत डा० कमलकुलश्रेष्ठका है, वे लिखते हैं—"प्रस्तुत लेखकके दृष्टिकोणसे परिस्थिति अपना एक दूसरा इन प्रेमाख्यानोंके द्वारा इस्लाम प्रचारकी पृष्ठभूमि तैयार करनेका पहलू भी रखती है।† हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्यमें हिन्दू-मुसलिम ऐक्य ढूँढ़नेवाले विद्वानोंके तर्क निम्नलिखित हो सकते हैं:—

१—इन्होंने हिन्दू कहानी बड़ी सहानुभूतिके साथ कही है। २—

---

*जायसी ग्रन्थावली (१९३५) भूमिका पृ० ३।

‡ हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी० (१९३८) पृ० ३०४-५ तथा पृ० ३१३।

† "हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य" पृ० १५७-८।

इन्होंने हिन्दू-धर्मकी आलोचना नहीं की है। ३—जिन जिन घरोंमें इनकी पोथी मिली है, वे परिवार हिन्दू-मुस्लिम द्वेषसे परे पाए गए।

इन तर्कोंके निराकरणमें डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठने निम्नांकित विचार प्रकट किए हैं :—

१—"कहानीको सहानुभूतिपूर्वक कहने मात्रसे यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हें हिन्दू-धर्मसे सहानुभूति थी। सम्भव है यह सहानुभूति किसी अन्य लक्ष्यको लेकर दिखलायी गयी हो।......

२—"इन्होंने मूर्तिपूजा आदिका खण्डन तीव्र शब्दोंमें किया है।

"वास्तवमें ये कवि उन सूफियोंके शिष्य होते थे जो इस्लामके प्रचारक थे.........इन कवियोंकी दृढ़ आस्था इस्लाम पर थी। जायसीने (जिन्होंने बड़ी सहानुभूतिके साथ कहानी कही है) लिखा है—

'विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते ॥
तेहिमहँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनो जग छाज बड़ाई ॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है सुन्दर कबिलास बसेरा ॥
लिखि पुरान बिधि पठवा साँचा। भा परवान दुहूँ जग बाँचा ॥"

"अर्थात्—कुरान दोनों जगतमें प्रामाणिक ग्रन्थ है। जायसी और भी कहते हैं—"वह मारग जो पावै सो पहुँचै भव पार। जो भूला होइ अनतहि तेहि लूटा बटमार ॥"

"अर्थात् जो व्यक्ति इस्लामका अवलम्ब ग्रहण करता है, वह तो संसारके पार उतर जाता है और जो लोग दूसरे धर्मको मानते हैं, वे भूलते हैं और माया द्वारा लुट जाते हैं।" अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि जायसी सामंजस्यवादी थे।

"जायसी नमाजके सम्बन्धमें कहते हैं—

"ना-नमाज है दीनक थूनी। पढ़ै नमाज सोई बड़ गूनी ॥

"इसी प्रकार इन सूफी कवियोंने कुरान और मुहम्मद पर बड़ी आस्था दिखाई है।"

डाक्टर साहब और भी लिखते हैं—

'इन्द्रावती' में नूरमुहम्मद अपनी नायिका इन्द्रावतीसे कहलाते हैं—

"निसिदिन सुमिरु मुहम्मद नाऊँ। जासों मिलै सरग महँ ठाऊँ॥

* * *

"साहब देत परान हमारा। अहे रसूल निबाहन हारा॥"

—"इन्द्रावती"

मूर्ति-पूजाके विरोधमें नूरमुहम्मद लिखते हैं—

"का पाहन के पूजे लहई। पूजो ताहि जो करता अहई॥
पाहन सुने न तेरो बातें। सुमिरत जग करता दिन रातें॥"

—'इन्द्रावती'

इसी प्रकार जायसीका दृष्टिकोण—

"दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग मारग चीन्हा॥
जौ न होत अस पुरुष उजियारा। सूझि न परत पंथ उजियारा॥

बिना मुहम्मद साहबके नाम-स्मरणके विधि-जाप भी व्यर्थ है—

"जो भर जनम करै विधि जापा। बिनु वोहि नाम होहिं सब लापा॥"

कुरानकी महानता तो अधिक है ही—

"जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ।
औ जो भूले आवत सोई लागे पथ॥"

जायसी मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हैं—

"पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़े मझधारा॥
पाहन सेवा कहाँ पसीजा। जनम न ओद होइ जो भीजा॥"
बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा॥"

"इन कवियोंने मुहम्मद साहब और कुरान आदि पर तो बड़ी श्रद्धा दिखाई है; किन्तु जब राम और कृष्णकी याद आती है तो उन्हें ये लैला-मजनूकी कोटिमें रखते हैं। हिन्दू-धर्मसे सहानुभूति रखनेवाला व्यक्ति हिन्दुओंकी अगाध श्रद्धाके पात्र राम और कृष्णको इस स्तर पर नहीं ले

जा सकता। ये कवि कुरानको पुरान कहते हैं, जिसका अर्थ हो सकता है कि—यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ होनेसे आदरका पात्र है और दूसरा यह कि हिन्दुओंके हृदयमें कुरानके लिए भी वैसी ही श्रद्धा हो, जैसी श्रद्धा पुराणोंके प्रति है। अपने काव्यमें ये कवि इस्लाम-धर्मकी बातें बड़ी सावधानीसे कह डालते हैं—

"मुहम्मद सोइ निहचित पथ, जेहि संग मुरशिद पीर।
जेहि के नाव और खेवक बेगि लाग सो तीर॥"—(जायसी)

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि वास्तवमें इन्हीं कहानियोंके माध्यमसे इन कवियोंने इस्लामका तथा और भी कुछ इधर-उधरका उपदेश दिया है। इन कहानियोंमें हिन्दुओंके प्रति जो कुछ भी श्रद्धा दिखलाई पड़ती है, वह मात्र इसलिए कि उनका यही भेद न खुल जाय। अपने धर्मकी लपेटमें लेनेके लिए इन कवियोंने हिन्दू जनतासे धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनामें सामञ्जस्य रख उनकी सहानुभूति प्राप्त कर लेनेका प्रयत्न किया है। इन कवियोंने सूफी धर्मके प्रचारमें तात्त्विक-दृष्टिसे सोचा—कोरे वाद-विवादके बलपर इस्लाम हिन्दू-धर्मके सामने नहीं टिक सकता। यही कारण था कि इन्हें सामञ्जस्य एवं सहिष्णुताका आश्रय ग्रहण करना पड़ा। अपना-अपना रचनाओंके प्रारम्भमें इन कवियोंने इस्लामका प्रचार करनेवालोंके प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाई है। इनके विचारोंसे स्पष्ट है कि हिन्दू-धर्म न तो इस्लामके सन्मुख है और न वह निस्सार धर्म ही है। वास्तवमें इन 'प्रेम' रचनाओंमें नैतिक एवं उच्च धार्मिक उपदेश मिलते हैं, जिसके आधार पर इन्हें सूफी-सिद्धान्तों का प्रचारक निर्गुण-सम्प्रदाय की शाखाओंमें विभक्त करना और इनको एक दूसरी शाखासे पृथक् करना महापराध है।

डाक्टर रामकुमार वर्माके विचारसे एक स्थान अवश्य इन सूफी कवियोंके काव्यमें प्राप्त होता है; जिसके कारण हम यह उद्वेग करते

नहीं किया जा सकता कि ये सूफी कवि हिन्दुओंके धर्मसे सहानुभूति रखते थे।

उपर्युक्त विवेचनसे जायसी आदि प्रेमाख्यानक-काव्य-रचयिता कवियोंकी दार्शनिक भावनाओं पर विचार किया गया। किन्तु अपनी रचनाओंमें इन्होंने हिन्दू-धर्मको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा हो या न देखा हो, चाहे जिस किसी भी मत पर बल दिया हो, उसके प्रकाशनमें कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सके, अब यह देखना है; क्योंकि साहित्यिक-दृष्टिकोण किसी धर्म विशेष पर नहीं आधारित है, वह एक स्वतंत्र विचार-पद्धति है।

पद्मावतका आध्यात्मिक पक्ष—कवि जायसीकी ईश्वर-संबंधी मान्यता इस्लामी एकेश्वरवादके आधारपर है, जिसमें वेदान्ती अद्वैतवादका भी प्रभाव है। इसके अनुसार वे कहते हैं :—

'सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥'

अर्थात्—ईश्वर एक है, जो सृष्टिकर्त्ता और जीवनदाता है। वह ईश्वर अलख है, अरूप है और अवर्णनीय है—'अलख अरूप अबरन सो कर्ता। वह सबसो सब ओहि सो बर्ता॥" ईश्वर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे सर्वत्र व्याप्त है उसे धर्मात्मा पहचान लेते हैं, पापी नहीं—"परगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह न चीन्हे पापी॥"

ईश्वर कालकी सब सीमाओंसे परे है, समग्र विश्वका सारा खेल उसीका रचा हुआ है, संसार जिसकी सत्तासे मुखरित है, उसकी लीलाएँ अपार हैं, वे कही नहीं जा सकतीं। सृष्टिके पूर्व न नामका कोई अस्तित्व था, न स्थान का, न शब्दका; उस समय न पाप था न पुण्य, उस समय एकमात्र आत्मलीन मुहम्मद साहबकी ही सत्ता थी। वह अलख-शक्ति एकाकी थी उसके न तो कोई गुण थे और न उपाधि। सूर्य-चन्द्र, दिन-रात आदि कुछ भी नहीं थे। वह परमसत्ता स्वर, व्यंजन, शब्द और रूप आदिसे अतीत है। ऐसी दशामें इनकी सहायताके बिना कोई भी इस अवर्णनीय कथाको वाणीका रूप कैसे दे सकता है।

पैदा किया जो गर्वका कारण है, उसने तृष्णाकी सृष्टि की, जो क
शान्त नहीं होना जानती। उसने जीवन बनाया, जिसकी इच्छा
रखते हैं। उसने मृत्युकी सृष्टि की, जिसे कोई भी न रोक सका।
सुख-वैभव तथा करोड़ों आनन्दोंकी रचना की, उसने दुःख, चिन्ता
सन्देहको भी उत्पन्न किया। उसके साधन अपरम्पार हैं वह समग्र सृ
एकमात्र स्वामी है, वह सदैव सबको देता है, किन्तु उसका भंडार
भी रिक्त नहीं होता। वह छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सभी प्राणियों
पोषण करता है, वह शत्रु या मित्रकी भावनासे रहित है।:—

"धनपति उहै जेहिक संसारू। सबै देत नित घट न भँडारू॥
जा वह जगत हस्ति औ चाँटा। सब कहँ भुगुति राति-दिन बाँटा॥"

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि जायसीकी ईश्वर-संबंधी मान्यता भार-
तीय अद्वैतवादके अधिक निकट है।

पद्मावतमें वर्णित पद्मावतीको कविने इसी ईश्वरका प्रतीक माना है।
पद्मावतीके जन्म-संबंधमें कवि कहता है कि दस माह पूर्ण होनेपर वह
शुभ घड़ी आई, जब पद्मावती कन्याने अवतार लिया। उसका रूप इतना
सुन्दर था कि जान पड़ता था सूर्य-किरणोंके तत्वसे उसकी रचना हुई है।
ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी, सूर्य-किरणोंकी आभा मन्द होने लगी।
रात्रिमें भी दिन-सरीखा प्रकाश फैल गया; कैलाशके समान सारा विश्व
उसकी ज्योतिसे जगमगा उठा। उसे देखकर समस्त देवता और मनुष्य
श्रद्धासे भूमिपर अपना शीश झुकाते हैं। उसकी आशामें योगी, यती
और संन्यासी सभी तप करते हैं।

पद्मावतीकी काली भौंहें उस धनुषकी भाँति तनी हैं, जिसे कभी
कृष्णने धारण किया था और कभी रामचन्द्रने रावण-वधके लिए उठाया
था। पवन-झकोरे आते हैं, लहरें उठती हैं, स्वर्गसे टकराती हैं और धरती
पर लौट आती हैं; उसके नयन-सागर चंचल होतेही समस्त सृष्टिको
प्रकम्पित कर देते हैं; जान पड़ता है, क्षणमात्रमें सब सृष्टि उलट जायगी।

उसकी बरौनियोंके बाण सारे संसारको बेधनेमें समर्थ हैं। सूर्य, चन्द्र, तारा-गण हीरे और रत्न-मणि-माणिक मोती आदि सभीने तो उसकी दन्त-पंक्तिसे आभा प्राप्त की है। सारे वेदोंमें वर्णित सम्पूर्ण ज्ञान उसकी जिह्वा-पर मौजूद है। देवतागण उसके चरणोंको हाथों-हाथ लिए रहते हैं, उसके चरणोंमें अपना मस्तक नवाते रहते हैं। पद्मावतीकी अलौकिक मूर्तिसे सब देवता भी प्रभावित हैं। गुरु का प्रतीक हीरामन तोता भी रत्नसेनसे पद्मावतीका जो संदेश कहता है उसमें पद्मावतीने अपने धामका संकेत किया है, जो सात स्वर्गोंके ऊपर है।

रत्नसेनसे कवि कहलाता है—प्राप्य हो या अप्राप्य प्रत्येक वस्तु-पर पद्मावतीका नाम अंकित है, जिधर भी मैं देखता हूँ, वही दिखाई पड़ता है तथा ऐसा कौन है, जिसके पास मैं जाऊँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसीने ईश्वरके आदर्श-सौन्दर्यपर अपनी समग्र वृत्तियोंको केन्द्रित किया है। पद्मावती इसी आदर्श-सौन्दर्यका प्रतीक और प्रतिमा है।

हीरामन तोता गुरुका प्रतीक है जिसके बिना वरन ब्रह्मानन्द तक नहीं पहुँचा जा सकता। जायसीका कथन है कि सद्गुरु-कृपासे ही प्रियको ईश्वरका दर्शन होता है। नाम-जपसे भक्तके हृदयमें ईश्वरकी भावना स्पष्ट और स्थिर हो जाती है। पद्मावतीसे मिलन होनेपर रत्नसेनने उसे बताया—मुझे सुआ मिला तथा उसने तुम्हारी अपनी कथा कही। उसपर मुझे पूर्ण विश्वास था। तुम्हारे अलौकिक रूप-लावण्यकी बात मैंने सुनी। तुम्हारा नाम ले-लेकर मैंने तुम्हारे चित्रकी एक कल्पना की। नैन-मार्गसे तुम्हारी वह अलौकिक रूप-लावण्यता मेरे हृदय-पटलपर अंकित एवं अंकित हो गयी। तुम्हारी चर्चा सुनकर मैं अस्वस्थ हो गया तब तुमने रूप-सौन्दर्यकी मूर्ति बनकर मेरी कल्पनामें निवास किया। मैं अनु-भूतिमग्न हो गया तथा मेरा मन बद्ध हो गया। मैं जो कुछ भी कहता हूँ वह सब तुम्हारी ही प्रेरणासे है।

'पद्मावत' में वर्णित भिन्न-भिन्न विघ्न-विपत्तियोंका प्रसं
ये सब साधकके पथकी कठिनाइयोंके प्रतीक हैं इन कठिन
करनेके लिए वैराग्य, तपस्या तथा योगका ही सहारा लेना पड़े
पतीके कथनका कि अगर रत्नसेन मृग-चर्मपर बैठकर योग
कर लें तो उसे आनन्दकी प्राप्ति होगी और मैं भी उसे ही
पहनाऊँगी। आगे चलकर देवाधिदेव शिवजी योगके रहस्योंका
कराते हैं—'तुम्हारे शरीरकी भाँति यह सिंहलगढ़ भी बाँका
वास्तवमें उसकी छाया है। इसे आत्मज्ञानसे ही पहचाना जा
इस गढ़में नौ द्वार हैं—(शरीरके नौ बाहरी मार्ग) और
कोतवाल पहरा देते हैं, यहाँ कोतवालसे तात्पर्य पाँच ज्ञानेन्द्रि
गढ़में एक दसवाँ गुप्त द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) भी है। इसकी चढ़ाई
टेढ़ी-मेढ़ी है, जो इसका रहस्य जानते हैं, वही इसपर चढ़ स
जो दृष्टि (कुण्डलिनी) को ऊपर करता है, वही इसे देख स
जो वहाँ जाना चाहता है, उसे श्वास तथा मन संयत (प्राणाया
ध्यान) करना होगा। रत्नसेनने इसी विधिका सहारा लिया। आगे
कर कवि प्रेम-तत्वका महत्व दिखाते हुए जब रत्नसेनकी परीक्षा
पार्वती द्वारा करा लेता है और उसके निष्कपट एवं अनन्य प्रेम
सचाईका पता लग जाता है, तब उसे पद्मावती प्राप्त होती है।

अतः स्पष्ट है कि मात्र कथा कह देनेका ही विचार जायसीका
था, बल्कि पद्मावतमें उनकी एक आध्यात्मिक अभिव्यंजनाकी भी
इङ्गित होती है। हाँ, यह बात कही जा सकती है कि जिस रूपकके
आध्यात्मिक व्यंजना उन्होंने की है उसका सर्वत्र निर्वाह नहीं हुआ
पद्मावतकी सारी कथाका घटनापक्ष अध्यात्मवादसे पूरा-पूरा नहीं मि
पाता। ऐसा होते हुए भी ग्रन्थमें जो विरह-वर्णनकी
अलौकिकताका दर्शन होता है, चाहे वह ...
...सर्वमें इस विरहका बड़ा महत्व है

लिए आवश्यक तत्व है। इस विरहमें एक व्यथा होते हुए भी मनकी शुद्धिकी भावना भी है क्योंकि यदि विरहकी यह व्यथा, प्रेमकी यह पीर, विरहकी यह जलन न होती, जिसे पद्मावतमें कविने दिखाया है, तो आत्मा कभी भी इतनी शुद्ध न हो पाती जो परमात्मा से मिलनके लिए आवश्यक है।

प्रेम-तत्वका जो वर्णन जायसीने इसमें किया है, रत्नसेनका पद्मावतीके लिए और नागमतीका रत्नसेनके लिए, वह एक बार पद्मावतीको ईश्वरका प्रतीक मानता है और दूसरी बार रत्नसेनको भी ईश्वरका प्रतीक माना है क्योंकि ये दोनों स्थलोंके प्रेम और विरह वर्णन साधारण प्रेम और विरह-वर्णनसे भिन्न है। हाँ, यह बात पुस्तकमें दिए गए रूपकके अनुकूल नहीं बैठ पाती।

साहित्यमें कवि और काव्यका स्थान—जायसीने 'पद्मावत' की रचनामें हिन्दू-संस्कृतिके अन्तर्गत अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक विवरण उपस्थित करनेका प्रयास किया है, किन्तु ये विवरण अनेक प्रकारसे अपूर्ण हैं। रचनामें शृङ्गार-वर्णनके अन्तर्गत संयोग तथा वियोग-वर्णन अनूठा है। अलंकारोंके वर्णनमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदिका प्रयोग यथास्थान उचित ढंगसे किया गया है। रानीका चरित्र-चित्रण हिन्दू-जीवनके आदर्शोंसे भरा है। इसकी रचना सब मिलाकर काव्य-कलाका एक अनूठा नमूना उपस्थित करती है, भाव और भाषाका जहाँ तक प्रश्न है, उसमें कविको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कविके काव्य-कौशलका विवरण ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है, उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि यह रचना हिन्दी-साहित्यकी एक अनमोल वस्तु है और इसका स्थान हिन्दीके क्षेत्रमें अद्वितीय ही है।

भाषा और इसपर अधिकार—आप ठेठ-अवधीके अच्छे जानकार हुए हैं। विद्वानोंका मत है कि अरबी फारसीके अच्छे पंडित थे। इन्होंने अवधीके ठाठ रखते हुए अरबी फारसीके शब्दोंका

भक्तोंमें हुआ; शेष, "रामरसायन" आदि जो दो-एक प्रबन्ध-काव्य लिखे गए, वे जनताको कुछ भी आकर्षित नहीं कर सके। "केशव"की 'रामचन्द्रिका'का काव्य-प्रेमियोंमें आदर रहा, पर उसमें प्रबन्ध-काव्यके वे गुण नहीं हैं, जो होने चाहिए। चरित-काव्यमें अवधी-भाषाको ही सफलता प्राप्त हुई और अवधी भाषाके सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं—'रामचरित मानस' और 'पद्मावत'। इस दृष्टिसे हिन्दी-साहित्यमें हम जायसीके उच्च स्थानका अनुमान कर सकते हैं।"

सरवर बहु हरि कथा-प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक विहंगा॥"

इस प्रकार परम्परागत राम-कथा मौखिक ही अनंत-अनादिकालसे चली आती इस दृष्टिकोणसे मानी जाती है।

(ब)—ऐतिहासिक-साहित्यिक दृष्टिकोण—इस वर्गके लोग वाल्मीकिके पितामह च्यवन ऋषिको परम्परागत मौखिक आती हुई, राम-कथाको सर्व-प्रथम जब लिपिका आविष्कार हुआ था, तब लिपिबद्ध करनेवाला मानते हैं।* इसके पहले उपलब्ध समग्र विश्व-साहित्यमें प्राचीनतम ऋग्वेदमें राम-कथाके पात्रोंका नामोल्लेख मिलता है। राम-कथाकी वैदिकता प्रमाणित करते हुए मानस-तत्त्वान्वेषी सुप्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराजने दो सौ ग्यारह पृष्ठोंका एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम है—'वेदोंमें राम-कथा'।

२—राम-कथाका पल्लवन—लिपिबद्ध-साहित्यमें महत्वपूर्ण ढंगसे राम-कथा का वर्णन करनेवाली प्रतिनिधि रचना वाल्मीकि रामायण ही है। समग्र विश्व साहित्यमें राम-कथाको कवियों और जनताने जितना सम्मान प्राप्त हुआ, उतना और किसी भी आख्यानको नहीं मिल सका। कालान्तरमें राम-कथाका वर्णन हमें 'महारामायण', 'संवृत रामायण', 'अगस्त्यरामायण', 'लोमश रामायण', 'मञ्जुल रामायण', 'सौपद्यरामायण', 'रामायण महामाला', 'सौहार्द रामायण', 'रामायण मणिरत्न', 'सौर्य रामायण', 'चान्द्ररामायण', 'मैन्दरामायण', 'स्वायम्भुव रामायण', 'सुब्रह्म रामायण', 'सुवर्चस रामायण', 'देवरामायण', 'श्रवण रामायण', 'दुरन्त रामायण', 'रामायण चम्पू', 'महाभारत', 'हरिवंशपुराण', 'विष्णुपुराण', 'वायुपुराण', 'भागवतपुराण', 'कूर्मपुराण', 'अग्निपुराण', 'नारदपुराण', 'ब्रह्मपुराण', 'गरुड़पुराण', 'स्कन्दपुराण', 'पद्मपुराण',

* इस सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन देखनेके लिए हमारी पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा' देखिए।—लेखक

+ देखिए हमारी पुस्तक—'गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा'—लेखक

सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधनाके साथ-ही-साथ लोक-धर्मका अत्यन्त उज्वल रूप उसमें वर्तमान है।'*

तुलसीदासजीके अतिरिक्त राम-चरितपर हिन्दी-साहित्यमें रचना करनेवाले कवियोंके नाम इस प्रकार हैं।† केशवदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, सेनापति, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान, बालदास, लालदास, बालभक्ति, रामप्रियाशरण, जानकीरसिकशरण, प्रियादास कलानिधि, महाराज विश्वनाथ सिंह, प्रेमसखी, कुशल मिश्र, रामचरणदास, मधुसूदनदास, कृपानिवास, गंगाप्रसाद, व्यास उदैनियाँ, सर्वसुखशरण, भगवानदास खत्री, गंगाराम, रामगोपाल, परमेश्वरीदास, पहलवानदास, गणेश, ललकदास, रामगुलाम द्विवेदी, जानकीचरण, शिवानन्द, दुर्गेश, जीवाराम, बनादास, मोहन, रत्नहरि, रामनाथ, जनकलाड़िलीशरण, जनकराजकिशोरीशरण, गंगाप्रसाददास, हरबख्श सिंह, लक्ष्मण, रघुवरशरण, गिरधारीदास तथा इनके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दीमें रामचरित उपाध्याय, बलदेवप्रसाद मिश्र, 'ज्योतिसी', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त आदि हैं। इन सभी कवियोंकी रचनाओंमें निम्नलिखित ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं :—

१—'रामचरित-मानस', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', एवं 'विनय-पत्रिका', जिनके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास हैं।

२—'रामचन्द्रिका' जिसके रचयिता केशवदास हैं।‡

---

* आचार्य शुक्ल प्रणीत—'हि० सा० का इतिहास' छठाँ संस्करण पृ० १३८ देखिये। † देखिये डा० श्रीरामकुमार वर्माका 'हिन्दी-साहित्य-का आलोचनात्मक इतिहास', द्वितीय संस्करण।

‡ आचार्य केशवदासने यद्यपि रामचरितपर भी रचना की है और वे भक्तिकालके कवि भी हैं, किन्तु ये साहित्यमें रीति-ग्रन्थोंके प्रणेता होनेसे रीतिकालके अधिक निकट हैं; अतः इनकी समीक्षा इस ग्रन्थमें नहीं की जा रही है।

३—'साकेत' जिसके रचयिता मैथिलीशरण गुप्त हैं। †

अतः तुलसीदासकी रचनाओं—'रामचरित-मानस', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' पर ही हम अपना अध्ययन उपस्थित करना चाहते हैं।

विद्वानोंकी सम्मतियों और खोजोंके आधारपर महात्मा तुलसीदासके द्वारा रचे गये १२ ग्रन्थ प्रामाणिक हैं जिनमें 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', 'रामचरित-मानस' और 'विनय-पत्रिका' ये पाँच बड़े ग्रन्थ हैं तथा 'रामलला नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य-संदीपनी', 'कृष्णगीतावली' और 'रामाज्ञा प्रश्नावली' ये सात छोटे ग्रन्थ हैं।

४—तुलसीकी राम-कथाका संगठन—राम-कथा जो व्यापकरूपमें पायी जाती है, वह अत्यन्त साधारण-सी लगती है, और संक्षेपमें इस प्रकार है:—

अयोध्यापति महाराज दशरथके तीन रानियाँ थीं, किन्तु किसीभी रानीसे कोई भी सन्तान न थी। वृद्धावस्थामें कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आदि रानियोंसे राम, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम सबसे बड़े थे, रामका विवाह महात्मा जनककी पुत्री सीतासे होता है। कुछ समयके पश्चात् महाराज दशरथ अयोध्याके राज्य-पर रामका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, किन्तु कैकेयी द्वारा विघ्न पड़ जाता है, राम वन चले जाते हैं, उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वनको प्रस्थान करते हैं, रामके स्थानपर कैकेयी भरतका अभिषेक कराना चाहती है; किन्तु भरत इसे स्वीकार नहीं करते। अन्तमें रामके समझाने-पर वे मान जाते हैं। राक्षसोंका राजा रावण सीताको हर लेता है। सीताकी खोज करते हुए राम वानरोंके राजा सुग्रीवके मित्र बन जाते हैं

† —ये आधुनिकयुगके कवि हैं। अतः इनकी कृतियोंकी भी समीक्षा ...गी।

और सुग्रीवकी सहायतासे लंकापर चढ़ाई कर देते हैं। राक्षसोंका संहा कर राम सीताको पुनः प्राप्त कर भाई लक्ष्मणके साथ अयोध्या लौट आ हैं। अयोध्याके राज्यपर उनका अभिषेक होता है और वे राज्य कर लगते हैं।

किन्तु इस कथाको लेकर विशेष-विशेष दृष्टिकोणोंसे विशेष-विशे भाव ग्रहण किये गये। हिन्दू राम-कथामें राम विष्णुके महत्त्वपूर्ण अव तार हैं, अतः उसमें भक्ति-भावनाकी छाप है। बौद्ध-साहित्यमें राम-कथाके अन्तर्गत राम बोधिसत्वके रूपमें देखे जाते हैं, अतः उनके चरित्रमें सत्य शीलकी प्रतिष्ठा कर उन्हें बुद्धकी कोटिमें पहुँचानेकी चेष्टा है। जैन-राम-कथाके अन्तर्गत रामका व्यक्तित्व एक ऐसे महनीय पुरुषके रूपमें वर्णित है, जो इस सम्प्रदायके अन्तिम लक्ष्य—(जैनधर्ममें दीक्षित हो) मुक्ति-का अधिकारी होता है। हिन्दू-राम-कथा यत्र-तत्र कर्मकाण्ड और वर्णा-श्रम-धर्मके कारण आचार-व्यवहारकी विशेष प्रणाली द्वारा रामके जीवन-की विभिन्न घटनाओंसे दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक एवं मर्यादित तत्त्वोंकी अभिव्यक्ति करती हुई रामके स्वरूपके विकासको प्रतिबिम्बित कर रही है।

बौद्ध और जैन राम-कथाओंमें श्रमण-परम्पराका प्रभाव लक्षित होता है। इसके सिवाय धार्मिक मत-भेदके कारण राम-कथासे भिन्न गौण पात्रों और प्रासंगिक घटनाओंके संयोजनमें हिन्दू-राम-कथासे बौद्ध-जैन-राम-कथाओंमें अन्तर आ गया है। हिन्दू-राम-कथामें कल्पित अंशोंमें जहाँ ऋषि, मुनि, बन्दर, ऋक्ष तथा राक्षस आदिके कार्य अपने निजी ढंगके दिखलाये गये हैं, वहाँ बौद्ध-जैन राम-कथाओंमें इस प्रकारके कोई भेद-भाव नहीं हैं। यहाँ तो सभी (राम-कथा के) पात्रोंको साधारण मानव-कोटिमें ही प्रदर्शित किया गया है। इन तीनों परम्पराओंके कारण राम-कथाकी साधारण विवरण-संबन्धी बातोंमें भी कुछ-न-कुछ अन्तर है। हिन्दू-राम-कथामें राम अयोध्यापति महाराज दशरथके पुत्र हैं और वे वनवासके समय दक्षिण दिशामें दण्डक वनकी ओर जाते हैं, किन्तु

शिव द्वारा रची गयी राम-कथा (जिसे रचनेके पश्चात् शिवने मानसमें रख छोड़ा और समय पाकर पुनः शिवा अर्थात् पार्वती और परंपरागत वही कथा कालान्तरमें याज्ञवल्क्यने भरद्वाज सुनाई) अपने गुरु द्वारा सुनकर तुलसीदास अपनी स्मृति और ग्रन्थोंसे सहायता लेकर भाषा-रचनामें उसे प्रस्तुत करनेकी घोषणा करते प्रारंभमें उमाके मनमें होनेवाले सन्देहोंका वर्णन है। उमाको र संबंधमें यह सन्देह हुआ कि वे परब्रह्म हैं, अथवा नहीं। वे इस बा परीक्षा करती हैं, जिससे उन्हें विश्वास तो कुछ-कुछ हुआ, किन्तु सीत -रूप धारण करनेके कारण उन्हें शिव त्याग देते हैं और वे अपने पित घर जाकर मृत्युको प्राप्त हो गयीं। दूसरे जन्ममें राजा हिमालयकी पुत्री पार्वतीके रूपमें जन्म लेती हैं और पुनः शिवको पतिरूपमें वरण करने लिए घोर तप करती हैं। ठीक इसी समय त्रैलोक्य-विजयी राक्षस तार देवताओंको सन्तप्त करता दिखाया गया है। देवगण ब्रह्मासे सहायत चाहते हैं। उन्हें बताया जाता है कि तारक शिवसे उत्पन्न पुत्र द्वारा पराजित किया जा सकता है और किसीसे वह नहीं हार सकता। देवगण समाधिस्थ, पवित्र अन्तःकरण शिवके पास उन्हें कामसे क्षुभित करनेके लिए कामदेवको भेजते हैं। वह शिवको क्षुभित करनेकी चेष्टा करता है, जब शिवका ध्यान भंग हुआ, तब वे क्रुद्ध होकर अपनी दृष्टिसे उसे भस्म र देते हैं तथा कामदेवकी पत्नी रतिको वरदान देकर शिव उसे सन्तुष्ट रते हैं।

इधर पितामह ब्रह्मा सब देवताओंकी ओरसे पार्वतीका पाणिग्रहण रनेके लिए शिवसे प्रार्थना करते हैं। इसे शिव मान लेते हैं और पर्वत-ज हिमालयके यहाँ बड़ी धूमधामके साथ पार्वतीका विवाह होता है। छ समय व्यतीत होनेपर शिव-पार्वतीका राम कथा-सम्बन्धी वार्तालाप ता है, जिसमें शिव-राम-कथा कहनेके ही प्रसंगमें उनके यथार्थ स्वरूप- भी वर्णन करते हैं। राम परब्रह्म परमेश्वर हैं, वे भक्तोंको भजाने

लिए समय-समयपर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतारके अनेक कारणोंमें एक कारण नारदका शाप है, दूसरा कारण मनु और शतरूपा-को पुत्ररूपमें पैदा होनेका दिया गया वरदान है, तीसरा कारण राजा भानुप्रतापके पतनपर परिवार सहित राक्षस हो जाने और स्वयं भानुप्रताप-का त्रैलोक्य-विजयी राक्षसराज रावणके रूपमें पैदा होने और घोर तप द्वारा वानर और मनुष्यको छोड़ अन्यसे अवध्यताका वरदान ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होनेका है, जिसे राम मारते हैं।

राक्षसराज रावण मन्दोदरीसे विवाह कर लंकामें बस जाता है, वहाँ वह अत्यन्त दुर्गम दुर्ग बना देवताओंको अपने झण्डेके नीचे कर लेनेका निश्चय करता है, जिनसे यज्ञादि कर्म बन्द करा देता है। देवता दुरात्मा रावणके भयसे भाग पहाड़ोंकी गुफा में छिप अपना प्राण बचाते हैं। सारे संसारके मनुष्य रावणकी दुष्टतासे त्यन्त त्रस्त हो उठते हैं, क्योंकि जहाँ तहाँ, गाँव-गाँवको वह फूँककर ब्राह्मणों और गायोंको अग्निमें झोंक देता है। दिन-प्रतिदिन रावणके बढ़ते हुए अत्याचारोंसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी हो जाती है और अत्यन्त दीनताके साथ वह देवताओंके पास जाती है। देवताओंके साथ शिव और ब्रह्मा विष्णुसे बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं। विष्णु भगवान् राजा दशरथके यहाँ रावण-वध करनेकी प्रतिज्ञा कर अवतार लेनेका वचन देते हैं। उधर अयोध्याधिपति महाराज दशरथ पुत्रेष्टि-यज्ञ करते हैं और समय पाकर बड़ी रानी कौशल्यासे रामका अव-तार उनके यहाँ होता है, उनके अंशके तीनों भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी कैकेयी और सुमित्राके गर्भसे पैदा होते हैं। रामकी बाललीला-का वर्णन और विश्वामित्रका अयोध्यागमन, रामका विवाह, उनके राज्या-भिषेकका प्रसंग, राजा दशरथके वचनसे ही राज्याभिषेकमें विघ्न पड़ना, नगर-निवासियोंका विरह-विषाद, रामका वन-गमन, केवटका प्रेम, गङ्गा पार कर प्रयागमें निवास, वाल्मीकि आश्रमपर सीता लक्ष्मण सहित रामका स्वागत, चित्रकूटमें निवास, फिर सुमन्तका राम-लक्ष्मण-सीताको

शिव द्वारा रची गयी राम-कथा (जिसे रचनेके पश्चात् शिवने अपने मानसमें रख छोड़ा और समय पाकर पुनः शिवा अर्थात् पार्वतीसे कही और परंपरागत वही कथा कालान्तरमें याज्ञवल्क्यने भरद्वाज ऋषिको सुनाई) अपने गुरु द्वारा सुनकर तुलसीदास अपनी स्मृति और अनेक ग्रन्थोंसे सहायता लेकर भाषा-रचनामें उसे प्रस्तुत करनेकी घोषणा करते हैं। प्रारंभमें उमाके मनमें होनेवाले सन्देहोंका वर्णन है। उमाको रामके संबंधमें यह सन्देह हुआ कि वे परब्रह्म हैं, अथवा नहीं। वे इस बातकी परीक्षा करती हैं, जिससे उन्हें विश्वास तो कुछ-कुछ हुआ, किन्तु सीताका रूप धारण करनेके कारण उन्हें शिव त्याग देते हैं और वे अपने पिताके घर जाकर मृत्युको प्राप्त हो गयीं। दूसरे जन्ममें राजा हिमालयकी पुत्री— पार्वतीके रूपमें जन्म लेती हैं और पुनः शिवको पतिरूपमें वरण करनेके लिए घोर तप करती हैं। ठीक इसी समय त्रैलोक्य-विजयी राक्षस तारक देवताओंको सन्तप्त करता दिखाया गया है। देवगण ब्रह्मासे सहायता चाहते हैं। उन्हें बताया जाता है कि तारक शिवसे उत्पन्न पुत्र द्वारा ही पराजित किया जा सकता है और किसीसे वह नहीं हार सकता। देवगण समाधिस्थ, पवित्र अन्तःकरण शिवके पास उन्हें कामसे क्षुभित करनेके लिए कामदेवको भेजते हैं। वह शिवको क्षुभित करनेकी चेष्टा करता है, जब शिवका ध्यान भंग हुआ, तब वे क्रुद्ध होकर अपनी दृष्टिसे उसे भस्म कर देते हैं तथा कामदेवकी पत्नी रतिको वरदान देकर शिव उसे सन्तुष्ट करते हैं।

इधर पितामह ब्रह्मा सब देवताओंकी ओरसे पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके लिए शिवसे प्रार्थना करते हैं। इसे शिव मान लेते हैं और पर्वत-राज हिमालयके यहाँ बड़ी धूमधामके साथ पार्वतीका विवाह होता है। कुछ समय व्यतीत होनेपर शिव-पार्वतीका राम-कथा-सम्बन्धी वार्तालाप होता है, जिसमें शिव-राम-कथा कहनेके ही प्रसंगमें उनके यथार्थ स्वरूप-का भी वर्णन करते हैं। राम परब्रह्म परमेश्वर हैं, वे भक्तोंकी भलाईके

लिए समय-समयपर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतारके अनेक कारणोंमें एक कारण नारदका शाप है, दूसरा कारण मनु और शतरूपा-को पुत्ररूपमें पैदा होनेका दिया गया वरदान है, तीसरा कारण राजा भानुप्रतापके पतनपर परिवार सहित राक्षस हो जाने और स्वयं भानुप्रताप-का त्रैलोक्य-विजयी राक्षसराज रावणके रूपमें पैदा होने और घोर तप द्वारा वानर और मनुष्यको छोड़ अन्यसे अवध्यताका वरदान ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होनेका है, जिसे राम मारते हैं।

राक्षसराज रावण मन्दोदरीसे विवाह कर लंकामें बस जाता है, वहाँ वह अत्यन्त दुर्गम दुर्ग बना देवताओंको अपने झण्डेके नीचे कर लेनेका निश्चय करता है, जिनसे यज्ञादि कर्म बन्द करा देता है। देवता दुरात्मा रावणके भयसे भाग पहाड़ोंकी गुफाओंमें छिप अपना प्राण बचाते हैं। सारे संसारके मनुष्य रावणकी दुष्टतासे अत्यन्त त्रस्त हो उठते हैं, क्योंकि वहाँ तहाँ, गाँव-गाँवको वह फूँककर ब्राह्मणों और गायोंको अग्निमें झोंक देता है। दिन-प्रतिदिन रावणके बढ़ते हुए अत्याचारोंसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी हो जाती है और अत्यन्त दीनताके साथ वह देवताओंके पास जाती है। देवताओंके साथ शिव और ब्रह्मा विष्णुसे बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं। विष्णु भगवान् राजा दशरथके यहाँ रावण-वध करनेकी प्रतिज्ञा कर अवतार लेनेका वचन देते हैं। उधर अयोध्याधिपति महाराज दशरथ पुत्रेष्टि-यज्ञ करते हैं और समय पाकर बड़ी रानी कौशल्यासे रामका अव-तार उनके यहाँ होता है, उनके अंशके तीनों भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी कैकेयी और सुमित्राके गर्भसे पैदा होते हैं। रामकी बाललीला-का वर्णन और विश्वामित्रका अयोध्यागमन, रामका विवाह, उनके राज्या-भिषेकका प्रसंग, राजा दशरथके वचनसे ही राज्याभिषेकमें विघ्न पड़ना, नगर-निवासियोंका विरह-विषाद, रामका वन-गमन, केवटका प्रेम, गङ्गा पार कर प्रयागमें निवास, वाल्मीकि आश्रमपर सीता लक्ष्मण सहित रामका स्वागत, चित्रकूटमें निवास, फिर सुमन्तका राम-लक्ष्मण-सीताको

पहुँचाकर लौटना, राजा दशरथका मरण, भरतका ननिहालसे अयोध्यामें आना, राजा दशरथकी अन्त्येष्टि क्रिया करके नगर-निवासियोंको साथ लेकर भरतका रामको लौटानेके लिए चित्रकूट जाना, रामके समझानेपर उनकी पादुका लेकर राज्य सँभालनेके लिए नगर-वासियोंके साथ भरतका अयोध्या लौटना, नन्दिग्राममें बसकर भरतका शासन-भार सँभालना, इन्द्र-पुत्र जयन्तकी कथा और राम-अत्रिऋषिके मिलापका वर्णन, विराधका वध, शरभंग ऋषिके शरीर-त्यागकी कथा, सुतीक्ष्णके प्रेमका वर्णन करते हुए अगस्त्य ऋषिके साथ रामके सत्संगका वर्णन, दण्डकारण्य जाकर रामने उसे जिस प्रकार शाप-मुक्त किया और गृद्धराज जटायुकी रामसे मित्रताका वर्णन, रामके पंचवटीके निवासका वर्णन, वहाँ ऋषियोंको निर्भय करते हुए लक्ष्मणको ज्ञान-वैराग्यका अनुपम उपदेश दिया जाना और शूर्पणखाके चेहरेकी विकृतिकी कथा और खर एवं दूषण राक्षसोंके साथ चौदह सहस्र राक्षसोंके वधकी कथाका वर्णन और रावणको इन बातोंके समाचार पानेकी कथाका वर्णन मानसमें तुलसीदास करते हैं। इसके आगे रावण और मारीचकी बात-चीत, माया-सीताका हरण, रामके विरहका वर्णन, रामके द्वारा जटायुकी अंत्येष्टि क्रिया करनेका वर्णन, कबन्धका वधकर शबरीकी परगतिका वर्णन, रामका वियोग-वर्णन और उनके पंपासरतीरपर जानेकी कथाका वर्णन, नारद-राम-संवाद, मारुतनन्दन हनुमानके मिलनेका प्रसंग, सुग्रीवकी मित्रता, बालि-वधका प्रसंग, सुग्रीवके राज्याभिषेकका वर्णन, राम-लक्ष्मणके प्रवर्षण पर्वतपर निवास करनेकी कथा, वर्षा, शरद ऋतुका वर्णन, रामका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीवके भयभीत होनेकी कथा, जानकीकी खोजमें सुग्रीव द्वारा बानरोंके दिशा-विदिशामें भेजे जानेका वर्णन, स्वयंप्रभाके विवरमें बानरोंका प्रवेश, संपाती गृद्धका बानरोंसे मिलन आदिकी कथाका वर्णन, संपातीके मुखसे सीताका पता पाकर भयानक जीव-जन्तुओंसे संकुलित अपार सागरका हनुमान द्वारा शीघ्रतासे पारकर लंकामें प्रवेश, जानकीको ढूढ़ने और उन्हें धैर्य

पर्डु-चाकर लौटना, राजा दशरथका मरण, भरतका ननिहालसे अयोध्यामें आना, राजा दशरथकी अन्त्येष्टि क्रिया करके नगर-निवासियोंको साथ लेकर भरतका रामको लौटानेके लिए चित्रकूट जाना, रामके समझानेपर उनकी पादुका लेकर राज्य सँभालनेके लिए नगर-वासियोंके साथ भरतका अयोध्या लौटना, नन्दिग्राममें रहकर भरतका शासन-भार सँभालना, इन्द्र-पुत्र जयन्तकी कथा और राम-अत्रिऋषिके मिलापका वर्णन, विराधका वध, शरभंग ऋषिके शरीर-त्यागकी कथा, सुतीक्ष्णके प्रेमका वर्णन करते हुए अगस्त्य ऋषिके साथ रामके सत्संगका वर्णन, दण्डकारण्य आकर रामने उसे जिस प्रकार शाप-मुक्त किया और गृद्धराज जटायुकी रामसे मित्रताका वर्णन, रामके पंचवटीके निवासका वर्णन, वहाँ ऋषियोंको निर्भय करते हुए लक्ष्मणको ज्ञान-वैराग्यका अनुपम उपदेश दिया, बाना और शूर्पणखाके चेहरेकी विकृतिकी कथा और खर एवं दूषण राक्षसोंके साथ चौदह सहस्र राक्षसोंके वधकी कथाका वर्णन और रावणको इन बातोंके समाचार पानेकी कथाका वर्णन मानसमें तुलसीदास करते हैं। इसके आगे रावण और मारीचकी बात-चीत, माया-सीताका हरण, रामके विरहका वर्णन, रामके द्वारा जटायुकी अंत्येष्टि क्रिया करनेका वर्णन, कबन्धका वधकर शबरीकी परगतिका वर्णन, रामका वियोग-वर्णन और उनके पंपासरतीरपर जानेकी कथाका वर्णन, नारद-राम-संवाद, मारुतनन्दन हनुमानके मिलनेका प्रसंग, सुग्रीवकी मित्रता, बालि-वधका प्रसंग, सुग्रीवके राज्याभिषेकका वर्णन, राम-लक्ष्मणके प्रवर्षण पर्वतपर निवास करनेकी कथा, वर्षा, शरद ऋतुका वर्णन, रामका सुग्रीवपर रोष और सुग्रीवके भयभीत होनेकी कथा, जानकीकी खोजमें सुग्रीव द्वारा बानरोंके दिशा-विदिशामें भेजे जानेका वर्णन, स्वयंप्रभाके विवरमें बानरोंका प्रवेश, संपाती गृद्धका बानरोंसे मिलन आदिकी कथाका वर्णन, संपातीके मुखसे सीताका पता पाकर भयानक जीव-जन्तुओंसे संकुलित अपार सागरका हनुमान द्वारा शीघ्रतासे पारकर लंकामें प्रवेश, जानकीको ढूढ़ने और उन्हें धैर्य

है। पर्वतके ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी सीढ़ियाँ देखकर मन मुग्ध हो जाता है उस तालाबका जल मधुर, और अत्यन्त स्वच्छ है, उसमें रंग-बिरंगे कमल पाए जाते हैं, उसमें हंसगण रहा करते हैं, उस सुन्दर पर्वतपर काकभुशुण्डि जिसका नाश महा-प्रलय (कल्पके अन्त) में भी नहीं होता। रचित गुण-दोष, काम आदि अविवेक जो समग्र संसारमें व्याप्त निकट नहीं फटकते। वहाँ रहकर काकभुशुण्डि पीपल-वृक्षके नीचे धरता है, पाकरके नीचे जप-यज्ञ, आमके नीचे मानसिक पूजा और नीचे भगवान् रामकी कथा कहा करता है, जिसे सुननेके लिए पक्षी आया करते हैं। उस आनन्द देनेवाले उस स्थानपर मैं मुझे बड़ा ही आनन्द आया और हंस पक्षीका रूप धारण कर कुछ तक मैं वहाँ रामकी कथा सुनता रहा। कुछ समयके पश्चात् मैं लौट आया। इसी प्रसंगमें गरुड़को, जिन्हें रामके ईश्वरत्वमें सन्देह और सर्वत्र अपना सन्देह मिटानेके लिए दौड़ चुके थे, शिवने भुशुण्डिके पास राम-कथा सुननेके लिए भेजा। राम-कथा सुन चुकने पश्चात् गरुड़ पूछते हैं कि प्रभो! आपको कौवेका शरीर कैसे प्राप्त हुआ गया? काकभुशुण्डि इसपर अपने अनेक जन्मोंकी कथा सुनाते हैं अपने ऊपर लोमश ऋषिके क्रोध द्वारा शाप और वरदानकी भी कथा सुनाते हैं। इसके पश्चात् पुनः काकभुशुण्डि-गरुड़-संवादमें आत्मा, ज्ञान और भक्ति-सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयोंकी सुन्दर विवेचना करते हुए कवि राम-कथाका विस्तार अपनी रचनामें समाप्त करता है।

गोस्वामी तुलसीदासकी रचनामें राम-चरितके माध्यमसे दार्शनिक धार्मिक और सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक अभिव्यंजनाकी महान चेष्टा की गयी है।

राम-कथाकी अनेक रूपात्मक सामग्री काव्य-शास्त्रके सम्पूर्ण कलात्मक विशेषताओंसे समन्वित होकर संग्रथित होती है। तुलसीदास द्वारा र

विनाशो एवं कथानकके दृष्टिकोणसे इसका प्रभाव अधिक है। 'मानस'की कथाएँ जो विभिन्न रचनाओंसे ग्रहण की गयी हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:—

'शिवने अपने मानसमें राम-कथाकी रचना कर रख छोड़ा और पाकर पार्वतीको सुनाया, यह कथा 'महारामायण', 'रामायणमहानाः समान है। शीलनिधि राजाके यहाँ स्वयंवरकी कथा, 'रामायण च समान, नारदमोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३ के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार 'भागवतमहापुराण', 'शिवमहापुर और 'आनन्द-रामायण'के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु—अरिम और धर्मरुचिके रावण-कुम्भकर्ण और विभीषण होनेकी कथा 'अद्भ रामायण' और 'मंजुल रामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपा तपस्या, पूर्णब्रह्मसे पुत्र रूपमें अवतरित होनेका वरदान 'संवृत-रामायण' अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओंकी विष्णुसे अवतारकी प्रार्थना, पाय प्राप्तकर रानियोंमें वितरण, देवताओंका वानर आदि योनियोंमें जन्म रामका अपनी माताको विराट रूप दिखाना तथा उनकी बाललीलाओंके कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन, राम-लक्ष्मणकी यज्ञ-रक्षाके लिए याचना-वर्णन, 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार गोस्वामीजीने किया है। अहिल्योद्धार-वर्णन 'नृसिंह-पुराण'' 'स्कन्द पुराण', 'पद्म पुराण','आनन्द रामायण' और 'रघुवंश'के अनुसार; गिरिजा-पूजन, सीता-रामके पारस्परिक आकर्षणका वर्णन, राम-विवाह 'जानकी-हरण' और 'स्वायम्भुव रामायण'के अनुसार; परशुराम-प्रकरण 'महावीर-चरित', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' और 'महानाटक'के अनुसार वर्णित है। राम-राज्याभिषेककी तैयारी, वशिष्ठ-राम-वार्तालाप, राज्याभिषेकमें विघ्न और राम-वन-गमन 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; कैकेयीका दोष सरस्वतीके ऊपर होनेका वर्णन 'आनन्द-रामायण'के अनुसार; राम-वन-गमनके प्रसंगमें केवटसंवाद 'चान्द्र-रामायण', 'आध्यात्म रामायण' और 'आनन्द-रामायण'के —

विचारों एवं कथानकके दृष्टिकोणसे इसका प्रभाव अधिक है। किन्तु 'मानस'की कथाएँ जो विभिन्न रचनाओंसे ग्रहण की गयी हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

'शिवने अपने मानसमें राम-कथाकी रचना कर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वतीको सुनाया, यह कथा 'महारामायण', 'रामायणमहामाला'के समान है। शीलनिधि राजाके यहाँ स्वयंवरकी कथा, 'रामायण चम्पू'के समान, नारदमोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३–४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार 'भागवतमहापुराण', 'शिवमहापुराण' और 'आनन्द-रामायण'के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु—अरिमर्दन और धर्मरुचिके रावण-कुम्भकर्ण और विभीषण होनेकी कथा 'अगस्त्य-रामायण' और 'मंजुल रामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपाकी तपस्या, पूर्णब्रह्मसे पुत्र रूपमें अवतरित होनेका वरदान 'संवृत-रामायण'के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओंकी विष्णुसे अवतारकी प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियोंमें वितरण, देवताओंका वानर आदि योनियोंमें जन्म, रामका अपनी माताको विराट रूप दिखाना तथा उनकी बाललीलाओंका कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन, राम-लक्ष्मणकी यज्ञ-रक्षाके लिए याचना-वर्णन, 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार गोस्वामीजीने किया है। अहिल्योद्धार-वर्णन 'नृसिंह-पुराण'' 'स्कन्द पुराण', 'पद्म पुराण','आनन्द रामायण' और 'रघुवंश'के अनुसार; गिरिजा-पूजन, सीता-रामके पारस्परिक आकर्षणका वर्णन, राम-विवाह 'जानकी-हरण' और 'स्वायम्भुव रामायण'के अनुसार; परशुराम-प्रकरण 'महावीर-चरित', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' और 'महानाटक'के अनुसार वर्णित है। राम-राज्याभिषेककी तैयारी, वशिष्ठ-राम-वार्तालाप, राज्याभिषेकमें विघ्न और राम-वन-गमन 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; कैकेयीका दोष सरस्वतीके ऊपर होनेका वर्णन 'आनन्द-रामायण'के अनुसार; राम-वन-गमनके प्रसंगमें केवटसंवाद 'चान्द्र-रामायण', 'आध्यात्म रामायण' और 'आनन्द-रामायण'के अनु-

सार; रामके चरण-धोनेका वर्णन 'सूर-सागर'के अनुसार; प्रयाग-माहात्म्य, भरद्वाज-पहुनाई 'सुब्रह्म रामायण' और 'आध्यात्म रामायण'के अनुसार; ग्राम-वधूटी-स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन 'सौपद्य-रामायण' के अनुसार; वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन, 'रामायण मणि-रत्न' और 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; सुमंत्रके अयोध्या लौटने, उनका विलाप, दशरथ-मरण 'आध्यात्म-रामायण'के; भरत-शपथ, भरत-विलाप, रामको लौटानेकी तत्परता, निषाद रोष, निषाद-भरत संवाद और लक्ष्मण-रोष आदि कथाएँ 'दुरन्त रामायण'के अनुसार हैं। भरत-चित्र-कूट-यात्रा 'आध्यात्म-रामायणके, जनक-चित्रकूट-आगमन 'श्रवण-रामायणके, पादुका लेकर भरतके नन्दिग्राममें रहनेका वर्णन, आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; जयन्तकी कथा 'देवरामायण'के अनुसार; अत्रि-राम-मिलन, अनुसुइया और सीता-संवाद, नारी-धर्म-निरूपण 'रामायण मणिरत्न'के अनुसार; विराध-वध, शरभंगका शरीर-त्याग, सुतीक्ष्णका प्रेम, राम-अगस्त्य-मिलन आध्यात्म-रामायण'के अनुसार; दण्डकारण्य पवित्र करते हुए पंचवटी-आगमन और निवासकी कथा 'वाल्मीकि-रामायण'के अनुसार और गृद्धराज जटायुकी मित्रता, लक्ष्मणको उपदेश, शूर्पणखाको दण्ड, खर-दूषण-वध, शूर्पणखाका रावणके पास आगमन, रामका मर्म समझने और रावण-मारीचसंवाद, सीता-अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीताकी रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध 'आध्यात्म रामायणके अनुसार है। सीता-विलाप, जटायु-सहायता, उसकी मुक्तिका वर्णन, कबन्ध-वध, शबरीसे रामकी भेंट, नवधा-भक्ति-वर्णन 'मंजुल रामायण'के अनुसार; शबरीकी मुक्ति और पम्पासर गमनकी कथा 'आध्यात्म-रामायण'के अनुसार है। राम-नारद-संवाद 'सौ पद्य रामायण'के अनुसार; राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध सुग्रीव-राज्याभिषेक राम-लक्ष्मणका प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरोंका सीताकी खोजके लिए भेजा जाना, बिवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन 'आध्यात्म-रामायण'के

विचारों एवं कथानकके दृष्टिकोणसे इसका प्रभाव अधिक है। कि 'मानस'की कथाएँ जो विभिन्न रचनाओंसे ग्रहण की गयी हैं, उनका संक्षि विवरण इस प्रकार है:—

'शिवने अपने मानसमें राम-कथाकी रचना कर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वतीको सुनाया, यह कथा 'महारामायण', 'रामायणमहामाला'के समान है। शीलनिधि राजाके यहाँ स्वयंवरकी कथा, 'रामायण चम्पू'के समान, नारदमोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार 'भागवतमहापुराण', 'शिवमहापुराण' और 'आनन्द-रामायण'के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु—अरिमर्दन और धर्मरुचिके रावण-कुम्भकर्ण और विभीषण होनेकी कथा 'अगस्त्य-रामायण' और 'मंजुल रामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपाकी तपस्या, पूर्णब्रह्मसे पुत्र रूपमें अवतरित होनेका वरदान 'संवृत-रामायण'के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओंकी विष्णुसे अवतारकी प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियोंमें वितरण, देवताओंका वानर आदि योनियोंमें जन्म, रामका अपनी माताको विराट रूप दिखाना तथा उनकी बाललीलाओंका कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन, राम लक्ष्मणका यज्ञ-रक्षाके लिए याचना-वर्णन, 'अध्यात्म-रामायण'के अनुसार गोस्वामीजीने किया है। अहिल्योद्धार-वर्णन 'नृसिंह-पुराण' 'स्कन्द पुराण', 'पद्म पुराण', 'आनन्द रामायण' और 'रघुवंश'के अनुसार; गिरिजा-पूजन, सीता-रामके पारस्परिक आकर्षणका वर्णन, राम-विवाह 'जानकी-हरण' और 'स्वायम्भुव रामायण'के अनुसार; परशुराम-प्रकरण 'महावीर-चरित', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' और 'महानाटक'के अनुसार वर्णित है। राम-राज्याभिषेककी तैयारी, वशिष्ठ-राम-वार्तालाप, राज्याभिषेकमें विघ्न और राम-वन-गमन 'अध्यात्म-रामायण'के अनुसार; कैकेयीका दोष सरस्वताके ऊपर होनेका वर्णन 'आनन्द-रामायण'के अनुसार; राम-वन-गमनके प्रसंगमें केवटसंवाद 'चान्द्र-रामायण', 'अध्यात्म रामायण' और 'आनन्द-रामायण'के अनु-

सर्वोपरि है। यह उसके प्रणेताकी दृष्टिविस्तारकी क्षमता, सारग्राहिणी प्रवृत्ति, काव्य सृजनकी कुशलता और युगकी परिस्थितियोंकी अनुभूतियों-की विशेषता है। विद्वानोंके कथनानुसार जन्मसे ही उस निराश्रित व्यक्ति ('मानसकार') को अरक्षा, अभाव, असहिष्णुता, कटुता और पीड़ाका, सामाजिक पतनके विघटन, विशृङ्खलता, स्वार्थपरायणता, मर्यादाहीनता, धर्मान्धता और पाखण्ड आदि तत्वोंका अनुभव हुआ। उस समयकी समग्र सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखण्डों, राजनीतिक अनाचारों और सांस्कृतिक विषमताओंके विरुद्ध जन-जीवनका पथ आलोकित करने, उसके संचालन और नियमनके निमित्त 'मानस' द्वारा आलोक, शक्ति, सहिष्णुता और अभिलाषाका दान करनेवाला, धर्म, न्याय, नीति, मान-वता, मर्यादा, सुशासन, सुव्यवस्था, और स्वाधीनता आदि लोकहितकारी तत्वोंसे ओत-प्रोत व्यक्तित्व, जीवन-दर्शनकी महनीय चेतनाओंका सुन्दर कलात्मक ढंगसे संवहन करता हुआ दिखाई पड़ता है। राम और रावण-का संघर्ष पुण्यका पापके साथ, सत्यका असत्यके साथ, न्यायका अन्यायके साथ था। युगकी पुकार सुननेवाले महात्मा तुलसीदासने समस्त उत्पीड़नों और अव्यवस्थाओंके प्रतीक रावणको समूल नष्ट करनेवाले न्याय और मर्यादाकी स्थापना करनेवाले पूर्ण-मानव श्रीरामचन्द्र जैसा नायक पाकर 'निर्बलके बल राम' की कल्पनाको साकाररूप प्रदान किया। यद्यपि तुलसी-के पहले ही 'राम—नाम'का गुणगान सहस्रों वर्षोंसे ऋषि-मुनि करते आ रहे हैं, किन्तु राम-भक्तिकी जो प्रबल धारा अपने 'मानस'के द्वारा तुलसी-दासने प्रस्फुटित की, उसमें अवगाहनकर भारतीय जनताने जितनी उत्फुल्लता, शक्ति, सहिष्णुता और नवोन्मेषशालिनी भाव-प्रवणतामूलक प्रेरणा पायी, उतनी कभी भी राम-चरित-संबंधी किसी अन्य रचनामें किसीको न मिली थी। कथा पुरानी कहते हुए भी दृष्टिकोण बदलकर, घोर नैतिक पतनके मध्य पिसी जाती जनताको, अपनी ज्ञानोक्तियों, उपदेशों और अनुभवोंके संबंधमें तात्विक वचनोंके सहारे, समुन्नत लक्ष्यकी

ओर ले जानेवाले प्रशस्त पन्थको आलोकित करते हुए जीवन-दर्शनके महनीय चेतानाओंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर तुलसीने राम-कथा ताज़गी ला पतनोन्मुख समाजका उद्धार किया और जनताकी धार्मिक भावनाओंको बल और प्रेरणा दी। तुलसीदास विशाल हृदय थे, उन्होंने 'मानस' में जो छायाचित्र खींचा है, उसमें मानवमात्रके लिए शक्ति है, रोचकता है, आकर्षण और सचाई है।

७—तुलसीदास और उनका युग—प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि तुलसीदासका युग भारतीय सांस्कृतिक और राजनीतिक पराभवका युग था। यद्यपि सम्राट् अकबर जिसके शासन-कालमें 'मानस'कारका आविर्भाव हुआ था, बड़ा आदर्श शासक था, किन्तु सारा देश उसका गुलाम था; जिसके फलस्वरूप जनता हृदयसे उसका लोहा मानती थी, उसके हृदयमें ऐसा संस्कार पैदा किया जाने लगा कि उसका अपनी स्वाधीनता, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्थाकी रक्षाकी ओर ध्यान नहीं जा पा रहा था, जिससे उसके सारे जीवनादर्शोंका लोप होता जा रहा था और अपना आत्मविश्वास खोकर भारतीय जनता परमुखापेक्षी बनती जा रही थी और धीरे-धीरे अपने पतनोन्मुख सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवनको स्वाभाविक माननेमें भूल करने लगी थी, उसका जातीय स्वाभिमान मिट चला था, जनताके हृदयमें न तो अपने देशके गौरवशाली अतीतके प्रति श्रद्धा रह गयी थी, और न वर्तमान् विषमता, परतन्त्रता एवं पतनको मिटाकर नए सुन्दर और गौरवपूर्ण भविष्य-निर्माणकी भावना ही स्वस्थ थी। इसी युगके दौरानमें उत्तरी भारतमें ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी दोनों प्रवृत्तियोंकी धार्मिक भावनाएँ प्रबल रूपसे जनताके बीच चल रही थीं। ज्ञानमार्गी प्रवृत्तिके लोग समाजको कोरे ज्ञानोपदेशसे भगवान्‌की ओर अभिमुख करना चाहते थे; किन्तु भक्तिमार्गी प्रवृत्तिके लोग ज्ञानातीत परात्पर ब्रह्मको मनुष्यकी भाँति सुख-दुःख भोगनेवाले, मानवीय क्रिया-कलापोंमें देखने-दिखानेकी चेष्टा करते थे।

इन भक्तिमार्गी-प्रवृत्तियोंमें दो धाराएँ अर्थात् कृष्ण-काव्य और राम-काव्य हिन्दी-साहित्यमें प्रवाहित हुए, किन्तु कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत् भगवान्‌का जो रूप प्रस्तुत किया गया, वह महाभारतके उन कृष्णका रूप न था, जिसके द्वारा अर्जुनका रथ हाँककर दुष्टोंके संहारमें अर्जुनका उत्साह बढ़ाया गया था। अतः भगवान् कृष्णकी महाभारतके महासमरकी अलौकिक शक्ति-संपन्न छवि न दिखाई पड़ी, जिसे समाजको देखना आवश्यक था, समाजने कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत भगवान्‌के उस बाल-लीला और कैशोर्यके लोक-रंजनकारी चरित्रको हृदयंगम् किया, जिससे उसे आनन्दका अनुभव तो हुआ, किन्तु 'धर्म-स्थापनार्थ' उसे उतनी सजीवता न प्राप्त हुई जो राम-काव्यके द्वारा हुई।

राम-काव्यमें रामकी बाललीलाके साथ ही-साथ रामके वीरोचित, उदात्त, अन्याय-विरोधी 'धर्मसंस्थापनार्थी' रूपको प्रस्तुत किया गया, जिसमें जनताने रामके उस रूपका दर्शन किया, जिसमें अन्यायके विरुद्ध न्यायकी, पाशविकताके विरुद्ध देवत्वकी, अधर्मके विरुद्ध धर्मकी, पराधीनताके विरुद्ध स्वतन्त्रताकी, पतनके विरुद्ध उत्कर्षकी और पराजयके विरुद्ध जयकी क्षमता थी, या यों कह सकते हैं कि राम-भक्तिके अन्तर्गत् गोस्वामी तुलसीदासने अपने समाजका प्रत्येक दृष्टियोंसे अध्ययनकर परम्परासे आती हुई राम-भक्ति-रसायनमें ऐसे तत्वोंका मिश्रण किया, जो समाजके हृदयमें मृतप्राय आत्मगौरव और आत्मविश्वास आदि भावनाओंको जाग्रतकर प्राणवन्त करनेमें सक्षम था। इस प्रकार 'मानस'की रामकथाके मूलमें अत्याचारों अथवा आसुरी प्रवृत्तियोंके उपशमनमें संघर्ष करने और उसपर विजय प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति भी है। इस प्रकार तुलसीदासकी राम-कथामें काव्यकी विशेषता, उसकी अमरता, उसका एक क्रान्तिकारी नवीन रूप देखा जा सकता है। रामके प्राचीनकालसे आते हुए चरितमें 'मानस'में जो विशेषताएँ प्रतिष्ठित की गयीं, उनमें मर्यादाका संरक्षण -सबसे महत्वपूर्ण है, जिसके अन्तर्गत सूत्रात्मक ढंगसे समाजको सुन्दर,

स्वस्थ और पुष्ट करनेवाले सभी तत्व सन्निहित हैं।

मैंने तुलसीदासके विशाल हृदयका ऊपर उल्लेख किया है, जिसके अनुसार उनकी भावधारा व्यक्तिगत अथवा एकान्तमूलक नहीं थी, बल्कि वह समष्टिगत थी, उसमें सारे समाजका रुदन था, सारे समाजकी कामना थी, उनकी वाणीमें सारे समाजकी ध्वनि थी, उनके व्यक्तित्वमें सारे राष्ट्रका व्यक्तित्व था, उनकी विद्रोहात्मक भावनाओंमें सारे समाजकी विद्रोहात्मक भावना थी। इसलिए अपने युगमें सभी पाखण्ड फैलानेवाले सम्प्रदायोंको जो भ्रममें डालनेवाले थे, सामाजिक एकताको भंग करनेवाले थे और सामाजिक नैतिकताको दुर्बल बनानेवाले थे, उन सबोंका कड़ा विरोधकर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनको विघटित होनेसे बचानेका प्रयत्न किया गया। तुलसीदासके समन्वयकारी दृष्टिकोणने जनता को याद दिलाया कि जब बंदर-भालू मिलकर त्रिलोक विजयी रावणके स्वर्ण विनिर्मित राज्यप्रासादको फूँककर राख बना सकते हैं, तो क्या करोड़ोंकी संख्यामें भारतीय जनता राज-समाजके कुशासनको नहीं समाप्त कर सकती? 'राम-चरित-मानसमें रावण वधके पश्चात् राम-राज्यकी जो झाँकी तुलसीदास उपस्थित करते हैं, वह कितना आशाप्रद और कितना प्रेमपूर्ण है:—

"राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका॥
बयर न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खगमृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

\+ +

सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥"

भक्त और विरक्त महात्मा, जिसे सम्राट् अकबरके दरबारमें मनसब-दारी मिल रही थी और जिसने साफ इन्कार कर दिया था :—

"हम चाकर रघुवीर के, पटो लिखो दरबार।
अब तुलसी का होहिंगे, नर के मनसबदार ॥"

उसे परलोक-प्राप्तिके अतिरिक्त अत्यन्त आकर्षक, सुख-सम्पदापूर्ण राम-राज्यसे क्या काम ! इसका मतलब यह था कि वे जनताको समझाकर कहते हैं—दुराचारी राज-समाजके विरुद्ध जनताके संगठित होकर विद्रोह करनेसे नए सुशासनका जो रूप होगा, वह यही है। सुख-सम्पदा और सुव्यवस्थाके पश्चात् ही अध्यात्म और परलोककी बात सूझती है। अतः मानना होगा कि 'मानस'की रचनाकर कविने बहुत बड़ी क्रांति और उसमें परम्परासे आती हुई राम-कथामें नवीन तत्वोंका समावेश किया, जिससे पिछली राम-कथाओंसे 'मानस'में विशेषता आ गयी है।

गोस्वामी तुलसीदासके 'मानस'की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका रचयिता अपने समयका सबसे बड़ा भाषाविज्ञ, सबसे बड़ा सन्त, सबसे बड़ा दार्शनिक, सबसे बड़ा विद्वान्, सबसे बड़ा मानव-प्रेमी तथा सबसे बड़ा समाज-सेवी था। ये समस्त विशेषताएँ और कविकी संवेदन-शीलता सहानुभूतिपूर्ण भावुकता, विशाल हृदय और कवित्व उसकी रचनाके रसोत्पादनके, लोक-प्रियताके और भव्य-विकासके कारण हैं। मानवताकी कहानी कहनेमें 'मानस'के अन्तर्गत कविने ज्ञान-वैराग और भक्ति-संबंधी तत्वोंको इस प्रकार लाकर रख दिया है कि वे कथानकके आवश्यक अंग बन गये हैं। वे कोरे उपदेश न होकर अत्यन्त प्रभाव-

स्वस्थ और पुष्ट करनेवाले सभी तत्त्व सन्निहित हैं।

मैंने तुलसीदासके विशाल हृदयका ऊपर उल्लेख किया है, जिसके अनुसार उनकी भावधारा व्यक्तिगत अथवा एकान्तमूलक नहीं थी, बल्कि वह समष्टिगत थी, उसमें सारे समाजका रुदन था, सारे समाजकी कामना थी, उनकी वाणीमें सारे समाजकी ध्वनि थी, उनके व्यक्तित्वमें सारे राष्ट्रका व्यक्तित्व था, उनकी विद्रोहात्मक भावनाओंमें सारे समाजकी विद्रोहात्मक भावना थी। इसलिए अपने युगमें सभी पाखण्ड फैलानेवाले सम्प्रदायोंको जो भ्रममें डालनेवाले थे, सामाजिक एकताको भंग करनेवाले थे और सामाजिक नैतिकताको दुर्बल बनानेवाले थे, उन सबोंका कड़ा विरोधकर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनको विघटित होनेसे बचानेका प्रयत्न किया गया। तुलसीदासके समन्वयकारी दृष्टिकोणने जनताको याद दिलाया कि जब बंदर-भालू मिलकर त्रिलोक विजयी रावणके स्वर्ण विनिर्मित राज्यप्रासादको फूँककर राख बना सकते हैं, तो क्या करोड़ोंकी संख्यामें भारतीय जनता राज-समाजके कुशासनको नहीं समाप्त कर सकती!

'राम-चरि[illegible] जो झाँकी तुलसी-
दास[illegible] कितना प्रेमपूर्ण है:—

गये सब सोका ॥
खोई ॥
नहि व्यापा ॥
श्रुति रीती ॥
सारदा ॥

लता विटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥"

भक्त और विरक्त महात्मा, जिसे सम्राट् अकबरके दरबारमें मनसब-दारी मिल रही थी और जिसने साफ इन्कार कर दिया था :—

"हम चाकर रघुबीर के, पटौ लिखौ दरबार।
अब तुलसी का होहिंगे, नर के मनसबदार॥"

उसे परलोक-प्राप्तिके अतिरिक्त अत्यन्त आकर्षक, सुख-सम्पदापूर्ण राम-राज्यसे क्या काम ? इसका मतलब यह था कि वे जनताको समझाकर कहते हैं—दुराचारी राज-समाजके विरुद्ध जनताके संगठित होकर विद्रोह करनेसे नए सुशासनका जो रूप होगा, वह यही है। सुख-सम्पदा और सुव्यवस्थाके पश्चात् ही अध्यात्म और परलोककी बात सूझती है। अतः मानना होगा कि 'मानस'की रचनाकर कविने बहुत बड़ी क्रांति और उसमें परम्परासे आती हुई राम-कथामें नवीन तत्वोंका समावेश किया, जिससे पिछली राम-कथाओंसे 'मानस'में विशेषता आ गयी है।

गोस्वामी तुलसीदासके 'मानस'की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका रचयिता अपने समयका सबसे बड़ा भाषाविज्ञ, सबसे बड़ा सन्त, सबसे बड़ा [illegible]निक, सबसे बड़ा विद्वान्, सबसे बड़ा मानव-प्रेमी तथा [illegible]। ये समस्त विशेषताएँ और कविको संवेदन-[illegible] हृदय और कवित्व उसकी [illegible] भव्य-विकासके कारण हैं। [illegible] कविने [illegible] और [illegible]नके

स्वाथ और पुष्ट करनेवाले सभी तत्व सन्निहित हैं।

मैंने तुलसीदासके विशाल हृदयका ऊपर उल्लेख किया है, जिसके अनुसार उनकी भावधारा व्यक्तिगत अथवा एकान्तमूलक नहीं थी, बल्कि वह समष्टिगत थी, उसमें सारे समाजका रुदन था, सारे समाजकी कामना थी, उनकी वाणीमें सारे समाजकी ध्वनि थी, उनके व्यक्तित्वमें सारे राष्ट्रका व्यक्तित्व था, उनकी विद्रोहात्मक भावनाओंमें सारे समाजकी विद्रोहात्मक भावना थी। इसलिए अपने युगमें सभी पाषण्ड फैलानेवाले सम्प्रदायोंको जो भ्रममें डालनेवाले थे, सामाजिक एकताको भंग करनेवाले थे और सामाजिक नैतिकताको दुर्बल बनानेवाले थे, उन सबोंका कड़ा विरोधकर सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनको विघटित होनेसे बचानेका प्रयत्न किया गया। तुलसीदासके समन्वयकारी दृष्टिकोणने जनता को याद दिलाया कि जब बंदर-भालू मिलकर त्रिलोक विजयी रावणके स्वर्ण विनिर्मित राज्यप्रासादको फूँककर राख बना सकते हैं, तो क्या करोड़ोंकी संख्यामें भारतीय जनता राज-समाजके कुशासनको नहीं समाप्त कर सकती! 'राम-चरित-मानस'में रावण वधके पश्चात् राम-राज्यकी जो झाँकी तुलसीदास उपस्थित करते हैं, वह कितना आशाप्रद और कितना प्रेमपूर्ण है:—

"राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका॥
बयर न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहिं ब्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सा
फूलहि फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचा
खगमृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति

\+ \+

सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै

और छन्द संख्या ६१६७ है।* श्रीरामदास गौड़ने 'रामचरित-मानस'की भूमिकामें 'सत-पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं' के अनुसार 'अंकानां वामतो गतिः' रीतिके आधारपर सतका अर्थ १००, पंचका ५ लेकर ५१०० छन्द माना है।† इससे मिलती-जुलती छन्द-संख्या श्रीचरणदासने भी 'मानस-मयंक' में लिखा है—"एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु। छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजारु।" अर्थात् चौपाइयोंकी संख्या ५१०० है तथा छन्द सोरठा और दोहा सब मिलकर दस कम दस हजार हैं अर्थात् सम्पूर्ण छन्द-संख्या ६६६० है।

मानसके छन्द—जिन छन्दोंमें 'मानस' की रचना हुई है, उनकी संख्या १८ है। प्रधान रूपसे चौपाई और दोहा छन्दमें ही 'मानस' की रचना हुई है। इनके अतिरिक्त वर्णिक वृत्तियोंमें स्रग्धरा, रथोद्धता, अनुष्टुप, मालिनी, वंशस्थ, तोटक, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका, नगस्वरूपिणी, इन्द्रवज्रा और शार्दूलविक्रीडित आदिका प्रयोग हुआ है।

'मानस'का चरित्र-चित्रण—'मानस' की कला अपनी स्वाभाविक गतिसे चलती हुई समाजके आदर्शकी अपेक्षा रखती है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें हम देखते हैं कि 'मानस' का प्रत्येक पात्र अपनी श्रेणीके लोगोंके लिए आदर्श है मानसकार, लोकको शिक्षा देते हुए जिस हृदयग्राही चरित-चित्रणकी अभिव्यंजना करता है, वह अद्वितीय है। 'मानस' के कुछ पात्रोंकी विशेषताओंपर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

१—शिव—इनके चरित्र-चित्रणके अन्तर्गत कविने 'वैष्णवानां शिवः' के सिद्धान्तानुसार भक्तिकी प्रतिष्ठा की है, अर्थात् राम-भक्तोंके प्रतिनिधिके रूपमें शिव हमारे सामने आते हैं :—

---

* देखिए—'तुलसीदास और उनकी कविता'—श्रीरामनरेश त्रिपाठीजीकृत पृ० १२१ (हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग)।

† देखिए '[illegible] मानस' की भूमिका पृ० ६४-६५ (हिन्दी- [illegible] १६८२)।

त्यागी, मार्मिक, गम्भीर एवं सरस होकर हमारे मानसपर अपनी स्थायी छाप छोड़ देते हैं। मानसकी उपदेशात्मक बातें बहुत प्राचीनकालसे कही जाती रही हैं, किन्तु उनका प्रभाव जनतापर उतना न रहा, जितना कि मानव-जीवनके विभिन्न व्यापारोंके मध्य इन तत्त्वोंको मिलाकर कहनेसे 'मानस'के द्वारा मानसपर पड़ा। 'मानस'की व्यापकता राम-कथाकी ही भाँति दिगन्तव्यापी इन्हीं कारणोंसे हुई। तुलसी-साहित्य भारतीय जनता तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि दिनों-दिन विदेशी जनतामें भी लोकप्रिय होता जा रहा है। बड़े-बड़े अंग्रेज विद्वानोंने इसका विशद् अध्ययन किया, समालोचनात्मक पुस्तकें लिखीं, खोज किया और अनुवाद किए। धीरे-धीरे इसका प्रभाव और प्रचार फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि प्रदेशोंमें भी होता जा रहा है। इस प्रकार आशा पाई जा रही है कि सारे संसारको कालान्तरमें मानवताकी इस अमर कहानी राम-कथाके साथ-साथ तुलसीका 'मानस' मानव-जातिका पथ आलोकित करता हुआ उसे एक महान् संदेश और प्रेरणा देगा, क्योंकि इसमें धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता, मानव-प्रेम और मानव-जातिके भविष्य-निर्माणके जो तत्त्व मौजूद हैं, वे देशव्यापी न होकर विश्वव्यापी होकर रहेंगे। कविने हृदय-तत्त्वकी सृष्टिव्यापिनी भावना द्वारा जो उपदेश दिया है, वह समग्र विश्वके छोरको स्पर्श किए बिना नहीं रह सकता।

८—'मानस'की रचनाके वाह्य-उपकरण 'मानस'का रचना-काल सर्वसम्मतिसे सं०, १६३१ माना जाता है। स्वयं कविके शब्दोंमें ही:—

"संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥"

'मानस'की छन्द-संख्या—'मानस' में राम-कथाका सांगोपांग वर्णन है। अन्य रामायणोंकी भाँति यह ग्रन्थ भी सात काण्डोंमें विभक्त है। किसी-किसी प्रतिमें क्षेपक कथाएँ भी मिलती हैं, जिसके कारण छन्द-संख्या निर्धारणमें कठिनता होती है। प्रामाणिक प्रतियोंके आधारपर पंडित श्रीरामनरेश त्रिपाठीजीके अनुसार चौपाइयोंकी संख्या ४६)

और छन्द संख्या ६१६७ है।* श्रीरामदास गौड़ने 'रामचरित-मानस'की भूमिकामें 'सत-पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै' के अनुसार 'अंकानां वामतो गतिः' रीतिके आधारपर सतका अर्थ १००, पचका ५ लेकर ५१०० छन्द माना है।† इससे मिलती-जुलती छन्द-संख्या श्रीचरणदासने भी 'मानसप्रदीप' में लिखा है—"पंचावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ जाइ। छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजार।" अर्थात् चौपाइयोंकी संख्या ५१०० है तथा छन्द सोरठा और दोहा सब मिलकर दस कम दस हजार है अर्थात् सम्पूर्ण छन्द-संख्या ६६६० है।

मानसके छन्द—जिन छन्दोंमें 'मानस' की रचना हुई है, उनकी संख्या १८ है। प्रधान रूपसे चौपाई और दोहा छन्दमें ही 'मानस' की रचना हुई है। इनके अतिरिक्त वर्णिक वृत्तियोंमें स्रग्धरा, रथोद्धता, अनुष्टुप, मालिनी, वंशस्थ, तोटक, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका, नगस्वरूपिणी, इन्द्रवज्रा और शार्दूलविक्रीड़ित आदिका प्रयोग हुआ है।

'मानस'का चरित्र-चित्रण—'मानस' की कला अपनी स्वाभाविक गतिसे चलती हुई समाजके आदर्शकी अपेक्षा रखती है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें हम देखते हैं कि 'मानस' का प्रत्येक पात्र अपनी श्रेणीके लोगोंके लिए आदर्श है मानसकार, लोकको शिक्षा देते हुए जिस हृदयग्राही चरित-चित्रणकी अभिव्यंजना करता है, वह अद्वितीय है। 'मानस' के कुछ पात्रोंकी विशेषताओंपर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

१—शिव—इनके चरित्र-चित्रणके अन्तर्गत कविने 'वैष्णवानां शिवः' के सिद्धान्तानुसार भक्तिकी प्रतिष्ठा की है, अर्थात् राम-भक्तोंके प्रतिनिधिके रूपमें शिव हमारे सामने आते हैं :—

---

* देखिए—'तुलसीदास और उनकी कविता'—श्रीरामनरेश त्रिपाठीजीकृत पृ० १२१ (हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग)।

† [illegible] ' की भूमिका पृ० ६४-६५ (हिन्दी-[illegible])।

"जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिऐ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥"
"अजस होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होहीं॥"
"नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िय बीरा॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ।"
"राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हँरासू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी जग मोहि समाना॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम-रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम-पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥
राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गयउ सुरधाम॥"

इसके अतिरिक्त जिस समय विश्वामित्र अयोध्या जाकर दशरथजीसे अपनी यज्ञ-रक्षाके लिए राम-लक्ष्मणकी याचना करते हैं, उस समयका वर्णन कितना मार्मिक है :—

"मुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख-दुति कुम्हलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेउ बिचारी॥
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
"मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥"

४—जनक—इनके भी चरित्र-चित्रणमें कविने सत्य-प्रतिज्ञाकी स्थापना की है। धनुष-यज्ञमें उपस्थित राजाओंके मध्य जब जनकजीकी

सत्य-प्रतिज्ञाका ध्यान रखती है; वे कहती हैं कि धनुषकी गुरुता कम करो—हे देवताओ ! 'करहु चाप गुरुता अति थोरी।' एक बार वे बड़े प्रेमसे रामकी ओर देखकर पुलकित तो होती हैं, किन्तु पिताके प्रणका ध्यान होते ही क्षुभित हो जाती हैं। उन्हें विश्वास है कि पिताजी कभी भी अपना प्रण नहीं छोड़ सकते :—

"नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥"

जनककी सत्य-प्रतिज्ञा मात्र जानकी ही तक विदित नहीं है, बल्कि उनके सम्पर्कमें रहनेवाले पुरके लोगों तक और भुवन-विख्यात् भी है। पुर-लोग; जो रामको जानकीके योग्य सर्वश्रेष्ठ वर समझते हैं, वे भी विश्वास रखते हैं, कि जनक अपना प्रण नहीं छोड़ सकते; अतः राम जब धनुषके समीप जा रहे हैं, तब :—

'चलत राम सब पुर नर-नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिव-धनु मृनाल की नाईं। तोरहु रामु गनेस गोसाईं॥'

और धनुष टूटनेपर 'जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥'

तथा—"जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥"

महात्मा जनककी सत्यवादिता पर विश्वास रखनेवाले महामुनि विश्वामित्रजीने कहाः—

ओरसे घोषणा की गयी कि :—

"सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज-समाज आजु जोइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहि बिचारि बरइ हठि तेही।

और जब "देश-देशके भूपति नाना" जिसमें मनुष्य शरीरधारी दे
दनुज सभी सम्मिलित थे और प्रण सुनकर आये थे; जिसमेंसे एक भी ऐसा
वीर न निकला कि :—

"कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहु न संकर-चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ावब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई॥
अतः "अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी॥"

तब भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहते हुए जनकजी
कहते हैं :—

"तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुँआरि रहउ का करऊँ॥"

बल्कि अपने बलपर आरूढ़ रहनेके कारण जानकीके अविवाहित
रह जानेके भयसे जनकको पश्चात्ताप भी हो रहा है। यदि वे अपनी सत्य-
प्रतिज्ञापर आरूढ़ रहनेके प्रणपर दृढ़ न रहते तो उन्हें पश्चात्ताप करनेका
कोई कारण ही न था। इसलिए अत्यन्त दुःखित होकर वे पूरे राज-
समाजमें अपना क्षोभ प्रकट कर रहे हैं :—

"जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥"

महाराज जनककी सत्य-प्रतिज्ञा और राजाओंकी शक्तिहीनता देख-
कर सब दुखी हो जाते हैं :—

"जनक बचन सुनि सब नर-नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥"

इसके अतिरिक्त जब रामके सौन्दर्यपर जनकपुरके सब नर-नारी
मनमें विचार करते हैं, कि 'बरु साँवरो जानकी जोगू' तथा जानकी भी
[illegible] तोड़े जानेके पूर्व ही अनुरक्त हैं, वे अपने सम

सत्य-प्रतिज्ञाका ध्यान रखती हैं; वे कहती हैं कि धनुषकी गुरुता कम करो—हे देवताओ! 'करहु चाप गुरुता अति थोरी।' एक बार वे बड़े प्रेमसे रामकी ओर देखकर पुलकित तो होती हैं, किन्तु पिताके प्रणका ध्यान होते ही क्षुभित हो जाती हैं। उन्हें विश्वास है कि पिताजी कभी भी अपना प्रण नहीं छोड़ सकते :—

"नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिर बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहिं निहारी॥"

जनककी सत्य-प्रतिज्ञा मात्र जानकी ही तक विदित नहीं है, बल्कि उनके सम्पर्कमें रहनेवाले पुरके लोगों तक और भुवन-विख्यात् भी है। पुर-लोग; जो रामको जानकीके योग्य सर्वश्रेष्ठ वर समझते हैं, वे भी विश्वास रखते हैं, कि जनक अपना प्रण नहीं छोड़ सकते; अतः राम जब धनुषके समीप जा रहे हैं, तब :—

'चलत राम सब पुर नर-नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिव-धनु मृनाल की नाईं। तोरेहु रामु गनेस गोसाईं॥'

और धनुष टूटनेपर 'जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥'

तथा—"जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥"

महात्मा जनककी सत्यवादिता पर विश्वास रखनेवाले महामुनि विश्वामित्रजीने कहा.—

"कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाहु चाप आधीना।
टूटत ही धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

५—कौशल्या—इनके चरित्र-चित्रणमें आदर्श माता और क पालनकी व्यंजना की गई है। धर्म-संकटमें पड़ी हुई कौशल्याजीकी स्थितिका चित्रण इस प्रकार है :—

"राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
"धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुन्दरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बन्धु-विरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। राम भरत,दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका॥'

राज देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचंड कलेसु॥
जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

दशरथ-मरणके समय किस धैर्य और साहससे कौशल्याजी काम करती हैं :—

"उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरजु धरिय त पाइअ पारू। नाहित बूड़िहि सब परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। राम लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥"

रामके वन चले जाने और दशरथ-मरणके पश्चात् भरतके ननिहालसे लौटने पर जिस भरतके कारण रामको लक्ष्मण और सीताके साथ वन

आना पड़ा, उन्हींको पाकर कौशल्याको रामके लौट आने जैसे सुखका अनुभव हो रहा है —

"सरल सुभाय माय हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥"

कौशल्याजी पुनः एक आदर्श माताकी भाँति धैर्यपूर्वक भरतको सान्त्वना प्रदान करती है :—

"माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥"
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥"

अन्तमें भरतको समझाते हुए उनकी सफाई स्वयं देकर वे कहती हैं:—

"राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥"

६—सुमित्रा—इनके चरित्र-चित्रणसे धर्म-प्रेमकी व्यंजना हुई है :—

"जौं पै सीय रामु बनु जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥"

लक्ष्मणको समझाते हुए वे कहती हैं :—

"भूरिभाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥
"पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥"
"सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥"
'राग रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥'

७—सीता—इनके चरित्र-चित्रणसे कविने पातिव्रत-धर्मकी व्यंजना की है :—

"प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ तें ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू । पति विहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मोकहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिय नाथ पुरुष बिनु
"सिय मन राम चरन अनुरागा । घरु न सुगम बन विषम न ला
"प्रभु करुनामय परम विवेकी । तनु तजि रहति छाँह किमि छें
"प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई । कहँ चन्द्रिका चन्दु तजि जाई ।
"पितु वैभव विलास मैं दीठा । नृपमनि मुकुट मिलत पदपीठा ।
सुख निधान अस पितु-गृह मोरे । पिय-विहीन मन भाव न भोरे ॥"

\+ \+ \+

"बिनु रघुपति पद-पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥
अगम पंथ बनभूमि पहारा । करि केहरि सर-सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरंग विहंगा । मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ॥"
"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहि उचित तप मोकहँ भोगू ॥"
"बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु वियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहि न कृपानिधाना ।

८—राम—भगवान् रामके मर्यादापूर्ण जीवन और उनके द्वार लोकशिक्षणके आदर्शका जो उदाहरण 'मानस'में मिलता है, वह हिन्दी-साहित्य ही नहीं, विश्व-साहित्यमे बेजोड़ है। उनके चरित्रका यथातथ्य वर्णन करनेवाले तुलसीदासजीने अपनी कलाका पूर्ण परिचय दे दिया है। क्योंकि "होते न जो तुलसी से महाकवि तो फिर राम से राम न होते" इनके चरित-चित्रणमें, गुरु-प्रेम, माता-पिता-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, सत्य-तिशा-प्रेम, स्त्री-प्रेम, प्रजा-प्रेम और सेवक-प्रेमकी व्यंजना की गयी है।

गुरु प्रेम—"आदर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥"

"सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू॥"

काल सिन्धु मुनि गुरु आगमनू। सिय समाज धाएउ रिपुदवनू॥

चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरमधुर दीनदयाला॥"

"गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे॥"

माता पिता-प्रेम—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥

तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥"

"आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ। पिता वचन मैं नगर न आवउँ॥"

"कहेउ सत्य सब सखा सुजाना। पिता दीन्ह मोहिं आयसु आना॥"

भ्रातृ-प्रेम—

"भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥"

"सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई॥

कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी॥"

"जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥"

"जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥"

अहहीं अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥

अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥"

भ्रातृ प्रेममें भगवान् राम इतने आगे हैं कि पिताका वचन मानना जिनके लिए परम कर्त्तव्य था, वे उसे भी छोड़नेके लिए तैयार थे।

"जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥

अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥"

...र :—

मज्जन करिय समर स्रम छीजे॥

भए द्रो नयन बिसाला॥

तोर कोप यह मोर सब भाव बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥
तापस बेष गात कृस भरत निरंतर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतन कर सखा निहोरउँ तोहि ॥
बीते अवधि जाउँ जौं जियत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि-पुनि पुलक शरीर ॥

पत्नी-प्रेम—"वर्षा गत निर्मल रितु आई । सुधि न तात सीता कै पाई ॥
"एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं । कालहु जीति निमिष महँ आनौं ॥
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई । तात जतन करि आनउँ सोई ॥"
"तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं । जानु प्रीतिरसु एतनेहि माहीं ॥"

प्रजाप्रेम-"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥"

सत्य-प्रतिज्ञा-प्रेम—"सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान ॥"

ऐसा प्रण कर चुकने पर जब सुग्रीवने कहा—
"बालि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥"
अर्थात्—'बालि मेरा हितकारी है, जिसकी कृपासे शोकका नाश करनेवाले आप मुझे मिले ।' भाव यह कि आप अब बालिका वध न करें; ऐसी कृपा करें :—
"अब प्रभु कृपा करु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिन राती ॥"
इस पर—"सुनि
जो क
सेवक-
लो
"

बहँसि राम धनु पानी ॥
मृषा न होई ॥"
पावक सो बरई ॥
सा ॥"
॥"
"

"सुनु सुरेस कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥"
"ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥"

वानर जो रामके सेवक हैं, उन्हें उनके समक्ष नीचे आसनपर रहना चाहिए था, किन्तु वे अपनेसे ऊँचे आसनोंपर (असभ्यतापूर्वक व्यवहार होनेपर) रहनेसे बुरा नहीं मानते और यह सोचकर प्रेम करते हैं कि इनका मन तो हमारे कार्यमें ही लगा है :—

"प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील-निधान॥

६—भरत—इनके चरित्र-चित्रणमें आदर्श भातृ-भक्ति, आदर्श मर्यादा-पालन और आदर्श-भक्ति-भावनाकी व्यंजना की गयी है। 'मानस' में भरत-चरित्रके वर्णनमें कविकी विशाल हृदयताकी जो व्यंजना परिलक्षित होती है, वह हिन्दी-साहित्यमें बेजोड़ है। भरतके हृदयकी विविध भावनाओंका कविने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। भरतके महान् चरित्रपर सभी मुग्ध हैं :—

धर्म-प्रेम—"समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥"
"पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥
"रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥"
"नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥"
"अरथ न धरम न काम-रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥"
"सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥"

भरतजीने उत्तरोत्तर बढ़ते हुए राम-प्रेमकी अपने हृदयमें जाँच भी की। हनुमानजीको, सञ्जीवनी लेकर आते समय जब भरतने बिना

काँचे घट जिमि डारौं फोरी । सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । को बापुरो पिनाक पुराना ॥
"कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउँ । जोजन सत प्रमान लै धावौं ॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ॥"
"आजु राम सेवक जस लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई । सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकर आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥"
"धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार ।"
"जौं तेहि, आजु बधे बिनु आवउँ । तौ रघुपति सेवक न कहावउँ ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतौं रघुबीर दोहाई ॥"
भ्रातृ-प्रेम—"गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाव नाथ पतिआहू ॥"
भक्ति-भावना—"सखा परम परमारथ यहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥"
"मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ज्ञान विराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥
ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥"
[हनु]मान—इनके चरित्र-चित्रणमें स्वामि-भक्ति, भक्ति-भावना
[की] व्यंजना हुई है :—
[...] मैं आवौं । सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं
[...] नहिं कोउ सुर-नर मुनि तनु धारी ॥
[...] । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
[...] देखेउँ करि बिचारि मन माहीं ॥"

"तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्हें हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तव चरन देखिहउँ देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥"

भक्ति-भावना'—"कह हनुमन्त सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥"

"कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ॥"
"नाथ भगति अति सुखदायिनी । देहु कृपा करि अनपायिनी ॥"

वीरता—"सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाँघउँ जलनिधि खारा ॥
सहित सहाय रावनहि मारी । आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी ॥"
"कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अति बल बीरा ॥"
"राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजन सुत बल भाखी ॥"

१२–रावण–इसके चरित्र-चित्रणमें वीरोल्लास-गर्वोक्ति और दृढ़ता-की व्यंजना मिलती है।

वीरोल्लास—गर्वोक्तिः—

"जौं आवइ मर्कट कटकाई । जिअहि बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥"
"बिहँसि दसानन पूछी बाता । कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी । जाहि मृत्यु आई अति नेरी ॥
करत राज लंका सठ त्यागी । होइहि जब कर कीट अभागी ॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई । कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥
जिनके जीवन कर रखवारा । भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी । जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी ॥
की भइ भेंट कि फिरि गए स्रवन सुजसु सुनि मोर ।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥"
"जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ॥"

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥
तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल-नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥"
दृढ़ता—"सुभट बोलाइ दसानन बोला । रन सन्मुख जा कर मन डोला ॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई । संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा । देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥"

इस प्रकार और भी अनेक पात्र हैं, जिनके चरित्र-चित्रणमें विभिन्न गुणोंके साथ सामाजिक आदर्श मर्यादाका भी ध्यान रखा गया है, ये आदर्श स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढगसे रचनामें अभिव्यंजित हुए हैं। अधिक न कहकर हम यही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि कला और उपदेशका इस जैसा समन्वय और किसी रचनामें नहीं प्राप्त होता। गोस्वामीजीकी इस रचनामें जो अनुपम काव्य-शक्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण समाजके प्रत्येक स्तरके लोगोंमें उसका बड़ा सम्मान है।

रस निरूपण—'मानस'में सभी रसोंका उद्रेक बड़ी सरलतासे हुआ है। गोस्वामीजीकी इस रचनामें रसोंकी अभिव्यंजना स्वाभाविक ढङ्गसे कथा-प्रवाहके बीच हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:—

(१) शृङ्गार-रस—(संयोग)—
"प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥"
(वियोग)—"राम वियोग बहा सुनु सीता । मो कहँ सकल भए बिपरीता ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥"

"देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥"

(२) करुण-रस—
"सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पन मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते॥"

(३) वीर-रस—"तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥"

(४) हास्य-रस
"करहिं कूट नारदहि सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँवरि छबि देखी। इनहिं बरिहि हरि जान बिसेखी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभुगन अति सचु पाएँ॥"

(५) रौद्र-रस—
"अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥"

(६) भयानक रस—
"नाचहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥"

(७) वीभत्स-रस—
"काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक तें छीनि एक लेइ खाहीं॥"

(८) अद्भुत-रस—"देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥"

(९) शान्त-रस—"लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु॥"

गोस्वामीजीने संचारीभावोंकी यथास्थान जो सृष्टि की है, उसका भी कुछ संकेत इस स्थलपर दे देना प्रसंगानुकूल ही होगा।

ग्लानि—'एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं॥'

निर्वेद—'अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिनराती॥'

तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गएउ सुरधाम ।।'

आवेग—'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।'

अपस्मार—'अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ।।'

त्रास—'भा निरास उपजी मन त्रासा । जथा चक्रभय रिषि दुरबासा ।।'

जड़ता—'मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा।।'

उन्माद—'लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ।।'

वितर्क—'लंका निसिचर निकर निवासा । इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ।।'

अलंकार - योजना और गुण—गोस्वामीजीकी भाव-विश्लेषण-क्षमता इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसको भाव-तीव्रता अथवा सौंदर्य-की अभिव्यक्तिके लिए अलंकारोंको हठपूर्वक लानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती । आचार्य शुक्लजीका भी कथन है कि "उनकी साहित्य-मर्मज्ञता, भावुकता और गम्भीरताके सम्बन्धमें इतना जान लेना और भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना-नैपुण्यका भद्दा प्रदर्शन नहीं किया है और न शब्द आदिके खेलवाड़में वे फँसे हैं । अलंकारोंकी योजना उन्होंने ऐसे ढंगसे की है वे सर्वत्र भावों या तथ्योंकी व्यंजनाको प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं ।... गोस्वामीजीकी वाक्य-रचना अत्यन्त प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है; एक भी शब्द फालतू नहीं।...हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिन्दीको एक प्रौढ़ साहित्यिक-भाषा सिद्ध करनेके लिए काफी है ।"*

तुलसीदासकी इस रचनामें भावोंकी अभिव्यंजना इस प्रकार हुई है कि सरल स्वाभाविक एवं विदग्धतापूर्ण वर्णनके अन्तर्गत उनकी प्रतिभा और शैलीके कारण अलंकारोंका स्वतः यथास्थान वर्णन मिलता है । यही कारण है कि सभी प्रकारके अलंकारोंका प्रयोग इस रचनामें हुआ है ।

रसोंकी अभिव्यक्ति गुणोंके सहारे 'मानस' में अनेक स्थलोंपर हुई

---

* 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १४५-१४८

तनु परिहरि रघुवर विरह, राउ गयउ सुरधाम ॥'

आवेग—'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥'

अपस्मार—'अस कहि मुरुछिपरा महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ॥'

त्रास—'भा निराश उपजी मन त्रासा । जथा चक्रभय रिषि दुरवासा ॥'

जड़ता—'मुनि मग माँझ अचल होइ वैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा॥'

उन्माद—'लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाती ॥'

वितर्क—'लंका निसिचर निकर निवासा । इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ॥'

अलंकार - योजना और गुण—गोस्वामीजीकी भाव-विश्लेषण-क्षमता इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक है कि उसको भाव-तीव्रता अथवा सौंदर्य-की अभिव्यक्तिके लिए अलंकारोंको हठपूर्वक लानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती । आचार्य शुक्लजीका भी कथन है कि "उनकी साहित्य-मर्मज्ञता, भावुकता और गम्भीरताके सम्बन्धमें इतना जान लेना और भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना-नैपुण्यका भद्दा प्रदर्शन नहीं किया है और न शब्द आदिके खेलवाड़में वे फँसे हैं । अलंकारोंकी योजना उन्होंने ऐसे ढंगसे की है वे सर्वत्र भावों या तथ्योंकी व्यंजनाको प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं,

और साहित्य-निर्माणकी भावना नहींके बराबर थी। इसके अतिरिक्त कृष्ण-काव्यके आदर्शोंका निर्माण हो रहा था, उसमें अभी प्रौढ़ता नहीं आ पाई थी। उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी-साहित्यमें उत्कृष्टता न आ पायी थी। उसे उत्कृष्ट बनानेका कार्य तो इन्हीं महाकविके द्वारा हुआ। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें 'तुलसीदासजीके रचना-विधानकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाके बलसे सबके सौन्दर्यकी पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणीको दिखाकर साहित्यमें प्रथम पदके अधिकारी हुए। हिन्दी-कविताके प्रेमीमात्र जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओंपर समान अधिकार था। ब्रज-भाषाका जो माधुर्य हम सूरसागरमें पाते हैं, वही माधुर्य और भी संस्कृतरूपमें हम गीतावली और कृष्णगीतावलीमें पाते हैं। ठेठ अवधीकी जो मिठास हमें जायसीके 'पद्मावत'में मिलती है, वही जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, बरवै रामायण और रामलला नहछूमें हम पाते हैं। यह सूचित करनेकी आवश्यकता नहीं कि न तो सूरका अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रज भाषापर।*

६—धार्मिक दृष्टिकोण—गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'में समाज-के आदर्शका विस्तृत विवेचन करते हुए धार्मिक दृष्टिकोणसे उन्होंने अपनी एक विशिष्ट धार्मिक मर्यादाकी स्थापनाके लिए तत्कालीन प्रचलित अनेक मतों एवं पंथोंसे बड़ी उदारतापूर्वक समझौता किया। गोस्वामीजीके समयमें जनता विविध मतोंमें विभक्त हो चुकी थी, जिसमें शैव, शाक्त और पुष्टिमार्गका वैष्णवमतसे बड़ी प्रतिद्वन्दिता थी। गोस्वामीजीने इनसे विरोध करना अच्छा न समझा, बल्कि उदारतापूर्वक उसे अपने ही आदर्शमें मिला लिया। फल यह हुआ कि थोड़ा-थोड़ा बल सब मतों और पंथोंका

---

* आचार्य शुक्ल प्रणीत 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १३४ देखिए।

की अभिव्यंजनाके लिए कवि लघु वर्णोंका ही सफल प्रयोग करत
उपर्युक्त तीनोंसे सीताकी सुन्दरता श्रेष्ठ है, अतः सीताके लिए
वर्णोंका ही प्रयोग है। देखिये :—

सीता—तीय सम सीया (दूसरे ही पदमें स्त्रियोंकी हीनता
करनेके लिए तीय शब्द 'जुवति'के लघु अक्षरोंमें बदल दिया गया है

गिरा—इनकी हीनता प्रकट करनेके लिए 'मुखर' शब्दसे दोष
गया है, जो (मु' ख' र') तीनों लघु अक्षर हैं।

भवानी—इनकी हीनता प्रकट करनेके लिए 'तनु अरध' शब्दसे दो
कहा गया है, जो ('त', 'नु' 'अ', 'र', और 'ध') सभी लघु अक्षर हैं

इसी प्रकार रति—इनकी हीनता 'अति दुखित अतनु पति जानी
शब्दोंसे दोष कहा गया है जो ('अ', 'ति', 'दु', 'ख', 'त', 'अ', 'त',
'नु', 'प' और 'ति',) सभी अक्षर लघु हैं। इस प्रकार शब्द-शिल्पी
तुलसीदासकी महनीयता 'मानस'में यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

'मानस'की रचना शैली—भाषा पद्यके स्वरूपमें तुलसीदासके समय
पाँच शैलियाँ प्रचलित थीं—१—वीर-गाथा कालकी छप्पय-पद्धति,
२—विद्यापति और सूरदासकी गीत-पद्धति, ३—गंग आदिकी कवित्त-
सवैया-पद्धति, ४—कबीरदासकी नीति-संबंधी बानीकी दोहा-पद्धति, जो
अपभ्रंश कालसे ही चली आ रही थी और ५—ईश्वरदासकी दोहे-
चौपाईवाली प्रबन्ध-पद्धति। तुलसीदासके पूर्व (जो चारण-कालके वीर-
गाथात्मक-ग्रन्थ और प्रेम-काव्य एवं सन्त-काव्यके ग्रन्थ थे, वे मुसलमानी
प्रभावसे प्रभावित ग्रन्थ थे) चारण-कालमें काव्यकी भाषा स्थिर नहीं हो
पायी थी; अतः उसमें साहित्यिक सौन्दर्यका अभाव था, इसके अतिरिक्त
प्रेम-काव्यकी दोहे-चौपाईकी प्रबन्धात्मक रचनामें शैलीका सौन्दर्य था,
किन्तु उसमें भावोंके उत्कृष्ट प्रकाशनका अभाव तो था ही। इसी प्रकार
सन्त-साहित्यमें भी एक मात्र एकेश्वरवाद और गुरुकी वन्दना मात्र ही
प्रमुख होकर सामने आई थी, जिसमें धर्म-प्रचारकी भावना प्रबल थी

इन्हें मिला, जिससे इनकी शक्ति और भी बढ़ गयी। पारस्परिक सर्वदाके लिए नष्ट हो गया। मुस्लिम धर्मकी सफलतामें इस संगठनसे शक्ति प्राप्त हुई। विभिन्न मतमतान्तरोंमें फँसी जनता राम-भक्तिकी मुड़ी और राम-भक्तिके प्रचारके लिए पृष्ठभूमि बन गयी। शैव, और पुष्टिमार्गको जिस प्रकार गोस्वामीजीने अपने आदर्शमें सम्मि किया, उसका यहाँ थोड़ा वर्णन करना अनुचित न होगा।

शैवमत—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मुँहसे :—

"करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना।"
"शिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा।"
"संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥"
"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ बास॥"
"औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहौं कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥"

शाक्तमत—वैदेही जानकीके मुँहसे :—

. "नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारनि। विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि॥"

पुष्टिमार्गीमत—

"अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू।"
"सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई॥
तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन॥"
"राम-भगति मन उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥"
"चतुर-सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥"

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके व्यक्तित्वमें शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्गके आदर्शको सन्निहित कर तुलसीदासने वैष्णव-धर्म

दिया है। तुलसीदासजी ज्ञानके विरोधी न थे, किन्तु उनके सामने ज्ञानका उतना महत्व नहीं था, जितना भक्तिका। ज्ञानकी अपेक्षा गोस्वामीजीने भक्तिको विशेष महत्व तो दिया, किन्तु ज्ञान और भक्तिमें कोई विशेष अन्तर नहीं माना है :—

"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा॥

यदि कुछ अन्तर है भी तो :—

"ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
पुरुष त्याग सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी बिषया बस बिमुख जो पद रघुबीर॥"

"सोउ न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥"

इसलिए भक्तिपर मायाका कोई प्रभाव नहीं हो सकता। ज्ञानकी साधना बड़ी कठिन होती है। इस कठिन साधनामें जो सफल होते हैं, वे मुक्ति पा जाते हैं, किन्तु सभी उसे प्राप्त भी नहीं कर सकते, क्योंकि यह साधना बड़ी कष्टसाध्य है—

"ग्यान क पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥"

गोस्वामीजीने इस प्रकार भक्ति और ज्ञानका विरोध दूरकर धार्मिक प्रवृत्तियोंमें एकताकी स्थापना कर दी। ज्ञान मान्य तो है, किन्तु भक्तिकी अपेक्षा करके नहीं, ठीक इसी प्रकार भक्तिका विरोध भी ज्ञानसे नहीं। इसका संकेत अरण्यकाण्डमें देखिए :—

'सुनि मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिस्राम॥

भक्तिकी सर्वोच्च साधना ही तुलसीदासजीके धर्मकी मर्यादा है। इन्होंने
ाने धर्मकी जो रूप-रेखा निश्चित की थी, वह अत्यन्त सरल साधनोंके
ारा ही निर्मित थी, जिसमें दोष आ जानेका भय था। अतः कबीर-
थियोंकी भाँति उनकी भक्तिके अन्तर्गत बाह्याडम्बर और छल-कपट न
ा जाय, इस दोषसे बचते रहनेके लिए ही उन्होंने सन्तोंके लक्षण भी
ता दिए :—

"सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जिन्हतें मैं उन्हके बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र-पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥

इसके अतिरिक्त पाप और धर्मकी पहचानके लिए तुलसीदासजीने
निम्न प्रकारसे व्याख्या करदी है :—

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥'
'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥'
'धर्म कि दया सरिस हरिजाना। अघ कि पिसुनता सम किछु आना॥'

प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहु ग्यान भगति नहिं तजहीं॥"

अर्थात् ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इसका निर्देश किया है :—

"धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो सन्त होहिं अनुकूला॥"

अर्थात् ज्ञान-विज्ञान भी भक्तिके अन्तर्गत है, क्योंकि भक्तिसे ही ज्ञानकी सृष्टि होती है तथा ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी स्थिति रहती है; दोनों एक दूसरेपर अवलंबित हैं, दोनोंमें विरोध नहीं है :—

"जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥"

भक्तिके अनेक साधन गोस्वामीजीने गिनाए हैं, जो सभी प्रायः वर्णाश्रमधर्मके दृष्टिकोणसे हैं। देखिए भक्तिके साधनोंका उल्लेख कविके ही शब्दोंमें:—

"भगति कि साधन कहौं बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र-चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥"
"संतचरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिस्राम॥

भक्तिकी सर्वोच्च साधना ही तुलसीदासजीके धर्मकी मर्यादा है। इन्होंने अपने धर्मकी जो रूप-रेखा निश्चित की थी, वह अत्यन्त सरल साधनोंके द्वारा ही निर्मित थी, जिसमें दोष आ जानेका भय था। अतः कबीर-पंथियोंकी भाँति उनकी भक्तिके अन्तर्गत बाह्याडम्बर और छल-कपट न आ जाय, इस दोषसे बचते रहनेके लिए ही उन्होंने सन्तोंके लक्षण भी बता दिए :—

"सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जिन्हतें मैं उन्हके बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र-पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥

इसके अतिरिक्त पाप और धर्मकी पहचानके लिए तुलसीदासजीने निम्न प्रकारसे व्याख्या करदी है :—

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥'
'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥'
'धर्म कि दया सरिस हरिजाना। अघ कि पिसुनता सम किछु आना॥'

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥'
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा । पर-निन्दा सम अघ न गरीसा ॥

१०—'मानस'में भाव-पक्ष और शब्द-शिल्प—'मानस'में भावाभिव्यंजनाका जो समाहार मिलता है वह ग्रन्थके महत्वको बढ़ाता है। तुलसीदासने मानव-हृदयकी सृष्टि-व्यापिनी सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्रवृत्तियोंका 'मानस'में जिस कुशलतासे विश्लेषण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानवकी विभिन्न परिस्थितियोंमें जितनी मनोदशाएँ संभव हो सकती हैं, अपने स्वाभाविक कवित्व-शक्तिके साथ उनका प्रकाशन कितना सफल है यहाँ उसका थोड़ा-सा विवरण उपस्थित करना आवश्यक है :—

१—"गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा । रथ रव हिंस बाजि चहुँ ओरा ॥"
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिय न काना ॥"

'गज-गरजहिं', 'घण्टा धुनि घोरा', 'रथ रव', 'बाजि हिंस' और 'निदरि घनहिं, घुर्मरहिं निसाना' आदि शब्दोंके द्वारा भावोंके अनुरूप ही शब्दोंके प्रयोग कितने उत्कृष्ट हैं।

२—"राज कुँवर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥"
वाले प्रसंगमें 'जिन्हकें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥'
में—"देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ॥
नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥

हरि-भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥"

उपर्युक्त प्रसंगमें कविने रामके प्रति जिसकी जैसी भावना थी, उसने वैसे ही उनको देखा, किन्तु कितनी बड़ी विशेषता यह है कि योगियों और जानकीकी भावनाओंके लिए जिन शब्दोंका प्रयोग हुआ है वह विशेषताओंसे संयुक्त है। योगी अपनी समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके परमतत्वकी अनुभूति करता है; क्योंकि योगियोंके लिए परमतत्व आभासित होता है। वह नेत्रका ही विषय नहीं है कि उसे देखा जाय, किन्तु वह आभासित होनेका ही विषय है। इसीलिए "जोगिन्ह परमतत्वमय भासा।" और रामकी ओर चितैकर जानकी जिस सुख और सनेहका अनुभव करती हैं, वह अकथनीय है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि 'प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना।'

२—'तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही॥'

जिस-तिससे विनय करना हृदयकी अस्थिरताका कितना सफल चित्रण है।

४—'दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥'

इस स्थलपर शब्दोंकी ध्वनिसे ही भाव सजीव हो उठा है।

५—"हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥"

स्वर्ण मृगके वधकी उमंगमें आकर श्रीरामचन्द्रजीने जानकीको खो [illegible]या। उसको स्मरणकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयका क्षोभ कितना करुण [illegible]मार्मिक है।

६—"दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरन बलधामा॥
[illegible]चिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बधु लघु तासू॥"

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जियइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद-बदनि दुखु कानन भारी ॥"

इसे सुन जानकीने जो उत्तर दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है:—

"तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति-बिहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥"

अर्थात्—"हे राम! आपके वियोगमें सम्पूर्ण भोग रोगके समान एवं आभूषण भारके समान हैं।"

तो, जब जानकी रामसे अलग वियोगावस्थामें लंका पड़ी हैं, तब चूड़ामणि उन्हें भार (बोझ) की तरह लग रहा है और उतारा ही जाता है; निकाला नहीं! इस प्रकार सम्पूर्ण राम-चरित-मानसमें विशेषताएँ भरी पड़ी हैं, चाहे जहाँ इसकी परीक्षा की जा सकती है।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'में अपने अध्ययन और काव्य-ज्ञानसे साहित्यके आदर्शोंको ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकताको छाप छोड़ दी है। परम्परासे आती हुई राम-कथाको लेकर रामके चरित्रमें उन्होंने समाजकी आदर्शभूत आवश्यकताओंका समावेश किया है। 'राम-कथा'के जिस अंशको उन्होंने आवश्यक समझा उसे ग्रहण किया और जिसे अनुपयुक्त समझा उसे छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी अनुभूतियोंका भी प्रयोगकर राम-कथाको फिरसे सजीव कर दिया। कविवर श्री 'बेनी'-जीके शब्दोंमें :—

"बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥

अथवा ७—"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भै परतीती॥

'रावन नाम बीर बरिबंडा' और बल, महाबल, अमित बल, क्रमसे अपना-अपना अलग महत्व रखते हैं, इसी प्रकार लंकामें 'भट', 'सुभट', 'महाभट' और 'दारुण भट' चार प्रकारके योद्धाओंका वर्णन है यथा :—

'रहे तहाँ बहु भट रखवारे', 'फेरि सुभट लंकेस रिसाना', 'रहे महाभट ताके संगा', 'कपि देखा दारुन भट आवा।' आदि हैं।

भावनाओंके अनुरूप शब्दोंका प्रयोग तुलसीदासकी सबसे बड़ी विशेषता है। दो उदाहरण और लीजिए :—

८—"रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजन सुत बल भाखी॥"

जब कपिवर हनुमानने कहा कि मैं संजीवनी अभी लिए आता हूँ, तो उनके लिए 'पवनसुत', 'सुमेरु सूनु' आदि शब्दोंका प्रयोग न कर प्रभंजन (आँधी) सुत कहकर उनकी तीव्रगामिताका वर्णन किया है।

९—"चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥"

जिन स्त्रियोंके पति जीवित रहते हैं उनके लिए 'उतारि' शब्दका प्रयोग नहीं होता, बल्कि 'निकारि' शब्द ही प्रयुक्त हो सकता है; क्योंकि जिस समय वे विधवा होती हैं, उसी समय आभूषण उतारती हैं और फिर कभी उसे धारण नहीं करतीं और पतिके जीवित रहनेपर जो आभूषण निकालती हैं, उसे फिर धारण कर सकती हैं। इस परम्पराके रहते हुए भी गोस्वामीजीको जब जानकी सधवा स्त्री हैं, तब उनके लिए चूड़ामणि 'उतारि तब दयऊ' नहीं लिखना चाहिए था, किन्तु कारण विशेषसे ही 'उतारि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अयोध्याकांडमें जब वन-गमनके प्रसंगमें श्रीरामचन्द्रजीने कहा :—

"हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन-पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंद-बदनि दुखु कानन भारी ॥"

इसे सुन जानकीने जो उत्तर दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है:—

"तनु धनु धाम धरनि पुर राजू । पति-बिहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥"

अर्थात्—"हे राम ! आपके वियोगमें सम्पूर्ण भोग रोगके समान एवं आभूषण भारके समान हैं ।"

तो, जब जानकी रामसे अलग वियोगावस्थामें लंका पड़ी हैं, तब चूड़ामणि उन्हें भार (बोझ) की तरह लग रहा है और उतारा ही जाता है; निकाला नहीं ! इस प्रकार सम्पूर्ण राम-चरित-मानसमें विशेषताएँ भरी पड़ी हैं, चाहे जहाँ इसकी परीक्षा की जा सकती है ।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'में अपने अध्ययन और काव्य-ज्ञानसे साहित्यके आदर्शोंको ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकताकी छाप छोड़ दी है । परम्परासे आती हुई राम-कथाको लेकर रामके चरित्रमें उन्होंने समाजकी आदर्शभूत आवश्यकताओंका समावेश किया है । 'राम-कथा'के जिस अंशको उन्होंने आवश्यक समझा उसे ग्रहण किया और जिसे अनुपयुक्त समझा उसे छोड़ दिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी अनुभूतियोंका भी प्रयोगकर राम-कथाको फिरसे सजीव कर दिया । कविवर श्री 'बेनी'-जीके शब्दोंमें :—

"बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो ।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥

"जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह॥"
"नहि जाँचत नहि संग्रही, सीस नाइ नहि लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ॥"
"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किन्तु वह चातक कैसा है!

"उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥"
"बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥"

अर्थात् चातकका प्रिय लोक - मंगलकारी, लोक-संग्रही और लोक-कल्याणकारी है। चातकके प्रियका यही लोक मंगलकारी रूप तुलसीदासके प्रियका भी है, उस रामको तुलसीने सीताके पतिके रूपमें, लक्ष्मणके भाईके रूपमें, दशरथके पुत्र रूपमें, हनुमानके स्वामी रूपमें चित्रित किया है; देखिए वह कितना मार्मिक है।

"कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहि निरखि स्याम मृदु गाता।"

उसी घनश्यामकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे जानकी रामके वियोगमें पड़ी लंकामें जी रही हैं। चातकके द्वारा कविने अपनी अनन्यभक्तिका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

(आ) कवितावली—इसका रचनाकाल अधिकांश विद्वानोंने सं० १६६६ के निकट माना है। रचनासे जान पड़ता है कि समय-समयपर लिखे गए कवित्तोंका इसमें संग्रह है। कुल छन्द सं० ३२५ है। सारी रचना सात कांडोंमें 'मानस'की भाँति विभक्त है। २२ छन्द बाल-काण्डमें, २८ छन्द अयोध्याकाण्डमें, १ छन्द अरण्य-काण्डमें, १ छन्द

'बेनी' कवि कहै मानो मानो हो प्रतीत यह,
पाहन हिए में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसो न गावतो॥"

अब यहाँ इस स्थलपर गोस्वामी तुलसीदासकृत राम-कथा-सम्बन्धी
न्य रचनाओंपर भी कुछ विचार किया जायगा। 'राम-कथा'-संबंधी
रचनाओंपर विचार कर लेनेके पश्चात् हम तुलसीके 'राम-कथा'की
र्शनिक पृष्ठभूमि और भाषा सम्बन्धी विचार प्रकट करेंगे।

११—कविकी राम-कथा संबंधी अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ—(अ)
हावली—वेणीमाधवदासके अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १६४०
किन्तु कुछ विद्वानोंने इसकी रचना-तिथि १६६५ से १६८० के बीच
ना है, जो भी हो, इसकी रचना दोहोंमें है। इसमें ५७३ दोहे हैं। इस
थमे अन्य ग्रन्थोंके दोहे भी संग्रहीत हैं, जैसे 'मानस'के ८५ दोहे
सईके १३१, रामाज्ञाके ३५ और वैराग्य-संदीपनीके २ दोहे हैं, शेष
हे नए हैं, इसमें २० सोरठे भी हैं। यह ग्रन्थ दोहा और सोरठा छन्दमें
खा गया है। 'दोहावली'के अन्तर्गत कविने नीति, भक्ति, राम-
हिमा, नाम-माहात्म्य, रामके प्रति चातकके आदर्शका प्रेम तथा आत्म-
दयक उक्तियोंकी हृदयग्राही रचना की है। चातककी अन्योक्तियों द्वारा
लसीदासजीने अपनी अनन्य भक्तिका आभास दिया है। ६
लिकाल-वर्णनमें तत्कालीन परिस्थियोंपर अच्छा
प्रत्न दीखता है। इसमें आए हुए कुछ दोहे ऐसे भी
ाभाविक चित्रण करते हैं। इसमें घन और चात
नन्य प्रेम है, वह अलौकिक है और अत्यं
। कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं:—

'चातक तुलसीके मते, स्वातिहु f
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटे

"जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह॥"
"नहिं जाँचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ॥"
"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किन्तु वह चातक कैसा है?

"उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥"
"बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥"

अर्थात् चातकका प्रिय लोक-मंगलकारी, लोक-संग्रही और लोक-कल्याणकारी है। चातकके प्रियका यही लोक मंगलकारी रूप तुलसीदासके प्रियका भी है, उस रामको तुलसीने सीताके पतिके रूपमें, लक्ष्मणके भाईके रूपमें, दशरथके पुत्र रूपमें, हनुमानके स्वामी रूपमें चित्रित किया है; देखिए वह कितना मार्मिक है।

"कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहि निरखि स्याम मृदु गाता।"

उसी घनश्यामकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे जानकी रामके वियोगमें पड़ी लंकामें जी रही हैं। चातकके द्वारा कविने अपनी अनन्यभक्तिका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

(आ) कवितावली—इसका रचनाकाल अधिकांश विद्वानोंने सं० १६६६ के निकट माना है। रचनासे जान पड़ता है कि समय-समयपर लिखे गए कवित्तोंका इसमें संग्रह है। कुल छन्द सं० ३२५ है। सारी रचना सात काण्डोंमें 'मानस'की भाँति विभक्त है। २२ छन्द बालकाण्डमें, २८ छन्द अयोध्याका ̆. १ छन्द अरण्य-काण्डमें, १ छन्द

'बेनी' कवि कहै मानो मानो हो प्रतीत यह,
पाहन हिए मैं कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो॥"

अब यहाँ इस स्थलपर गोस्वामी तुलसीदासकृत राम-कथा-सम्बन्धी अन्य रचनाओंपर भी कुछ विचार किया जायगा। 'राम-कथा'-संबंधी इन रचनाओंपर विचार कर लेनेके पश्चात् हम तुलसीके 'राम-कथा'की दार्शनिक पृष्ठभूमि और भाषा सम्बन्धी विचार प्रकट करेंगे।

११—कविकी राम-कथा-संबंधी अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ—(अ) दोहावली—वेणीमाधवदासके अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १६४० है, किन्तु कुछ विद्वानोंने इसकी रचना-तिथि १६६५ से १६८० के बीच माना है, जो भी हो, इसकी रचना दोहोंमें है। इसमें ५७३ दोहे हैं। इस ग्रन्थमें अन्य ग्रन्थोंके दोहे भी संग्रहीत हैं, जैसे 'मानस'के ८५ दोहे सतसईके १३१, रामाज्ञाके ३५ और वैराग्य-संदीपनीके २ दोहे हैं, शेष दोहे नए हैं, इसमें २० सोरठे भी हैं। यह ग्रन्थ दोहा और सोरठा छन्दमें लिखा गया है। 'दोहावली'के अन्तर्गत कविने नीति, भक्ति, राम-महिमा, नाम-माहात्य, रामके प्रति चातकके आदर्शका प्रेम तथा आत्म-विषयक उक्तियोंकी हृदयग्राही रचना की है। चातककी अन्योक्तियों द्वारा तुलसीदासजीने अपनी अनन्य भक्तिका आभास दिया है। इसी प्रकार कलिकाल-वर्णनमें तत्कालीन परिस्थियोंपर अच्छा प्रकाश डालनेका प्रयत्न दीखता है। इसमें आए हुए कुछ दोहे ऐसे भी हैं, जो मनोवेगोंका स्वाभाविक चित्रण करते हैं। इसमें घन और चातकका जो अविचल और अनन्य प्रेम है, वह अलौकिक है और अत्यन्त उत्कर्षपर पहुँचा हुआ है। कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं:—

'चातक तुलसीके मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥"

"जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह॥"
"नहि जाँचत नहि संग्रही, सीस नाइ नहि लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ॥"
"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किन्तु वह चातक कैसा है?

"उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥"
"बध्यो बधिक परयो पुन्य बल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥"

अर्थात् चातकका प्रिय लोक-मंगलकारी, लोक-संग्रही और लोक-कल्याणकारी है। चातकके प्रियका यही लोक मंगलकारी रूप तुलसीदासके प्रियका भी है, उस रामको तुलसीने सीताके पतिके रूपमें, लक्ष्मणके भाईके रूपमें, दशरथके पुत्र रूपमें, हनुमानके स्वामी रूपमें चित्रित किया है; देखिए वह कितना मार्मिक है।

"कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहि निरखि स्याम मृदु गाता।"

उसी घनश्यामकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे जानकी रामके वियोगमें पड़ी लंकामें जो रही है। चातकके द्वारा कविने अपनी अनन्यभक्तिका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

(आ) कवितावली—इसका रचनाकाल अधिकांश विद्वानोंने सं० १६६६ के निकट माना है। रचनासे जान पड़ता है कि समय-समयपर लिखे गए कवित्तोंका इसमें संग्रह है। कुल छन्द सं० ३२५ है। सारी रचना सात काण्डोंमें 'मानस'की भाँति विभक्त है। २२ छन्द बालकाण्डमें, २८ छन्द अयोध्याकाण्डमें, १ छन्द अरण्य-काण्डमें, १ छन्द

"जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित हेर।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सो सहज सनेह॥"
"नहि जाँचत नहि संग्रही, सीस नाइ नहि लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ॥"
"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किन्तु वह चातक कैसा है?

"उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥"
"बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥"

अर्थात् चातकका प्रिय लोक - मंगलकारी, लोक-संग्रही है, ...
... है। चातकके प्रियका यही लोक [illegible]
... तुलसीने [illegible]

किष्किन्धा काण्डमें, ३२ छन्द सुन्दर-काण्डमें, ५८ छन्द लंका-काण्डमें और १८३ छन्द उत्तर-काण्डके अन्तर्गत लिखे गए हैं। ग्रन्थ भरमें सबसे अधिक विस्तार उत्तर-काण्डका है, जिसमें कविने विभिन्न-विषयों पर स्फुट रचना की है। कवित्त, सवैया, झूलना और छप्पय छन्दोंमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके ऐश्वर्य और शक्तिके चित्रणमें ये ही छन्द उपयुक्त थे। रामचरितकी सम्पूर्ण घटनाओंका विस्तृत वर्णन न कर ऐश्वर्य सम्बन्धी अर्थात् युद्धादिका बड़ा ओजस्वी वर्णन इसमें विशेष रूपसे आया है। 'मानस'की भाँति इसमें नियमित रूपसे कथाका विस्तार काण्डोंमें नहीं हुआ है। अरण्य और किष्किन्धा-काण्डमें एक-एक छन्द देकर मात्र काण्डोंका निर्वहण किया गया है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि कथा-सूत्र सर्वथा छिन्न-भिन्न रूपमें है। आगे चलकर उत्तरकाण्डमें राम-कथासे सम्बन्धित न होकर रचना व्यक्तिगत घटनाओं, तत्कालीन परिस्थितियों और स्फुट भावोंपर ही प्रकाश डालती है। जैसे सीतावट, काशी, कलियुगकी अवस्था, बाहुपीर, रामस्तुति, गोपिका-उद्धव-सम्वाद, हनुमान-स्तुति और जानकी-स्तुति आदि स्वतंत्र विषय हैं। इनके पहले भी जो घटनाएँ रामचरित-सम्बन्धी हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। 'मानस'की भाँति वे विस्तारपूर्वक नहीं लिखी गयी हैं। मात्र सात छन्दोंमें रामकी बाल-लीलाका वर्णन है, इसके पश्चात् सीता-स्वयम्वरका वर्णन आता है, जिसमें विश्वामित्र आगमन और अहल्या-उद्धारकी घटनाओंका वर्णन नहीं आने पाया है। इसके अतिरिक्त जो कथाएँ आयी हैं, वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इसी प्रकार अयोध्याकाण्डमें जिन प्रसंगों एवं पात्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठता और भक्तके आत्मसमर्पणकी भावना दिखाई पड़ती है, उन्हें छोड़कर शेष कथा बहुत अस्त-व्यस्त है। घटनाओंके वर्णनमें प्रबन्धात्मकताका दृष्टिकोण न रखनेसे कविने पारस्परिक संबन्धका निर्वाह नहीं किया है। कैकेयीके वरदानका जिक्र भी न करके कविने राम-वन-गमनसे काण्ड प्रारम्भ कर दिया है,

जिसमें आगे चलकर केवल मुनि और ग्राम-वधूके चित्र अत्यन्त मार्मिक और खरे उतरे हैं :—

"रानी मैं जानी अयानी महा पवि पाहनहूँतें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है॥"

इसी प्रकार एक और छन्द है जिसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी मर्यादा-पालन और उनकी शालीनतापर प्रकाश डाला गया है :—

"सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौहें॥"
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्राम-बधू सिय सों, कहो, साँवरे से सखि रावरे को हैं॥
मुनि सुन्दरि बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली॥"

उपर्युक्त छन्दोंमें 'चितै तुम त्यों' तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली' में कविने एकमें रामचन्द्रजीमें एक पत्नी-व्रतीकी मर्यादाका पालन करनेका कितना सुन्दर संकेत दिया है। क्योंकि गाँवकी स्त्रियोंने 'चितै तुम त्यों' ही कहा और 'चितै हम त्यों' नहीं कहा, पर स्त्रीकी ओर न निहारनेवाली मर्यादाका कितना सुन्दर चित्रण है और दूसरे छन्दमें महारानी जानकीने जिस ढंगसे समझाया कि श्रीरामचन्द्र मेरे पति हैं, वह अत्यन्त मार्मिक होकर जानकीजीकी शालीनतापर अच्छा प्रकाश डाल रहा है।

अरण्य-काण्डमें एक छन्द देकर जिसमें "हेम कुरंगके पीछे रघुनायक" देकर शेष कथाको कविने छोड़ दिया। जानकी-हरण जैसी महत्व-

पूर्व घटनाका भी संकेत नहीं मिलता। इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्डमें
सुग्रीवमित्रता एवं बालि-वध आदि घटनाओंका वर्णन न आकर केव
हनुमानजीका समुद्रोलंघन संबन्धी एक छन्द दे दिया गया। कथाकी दृष्टि
इसी प्रकार सुन्दर काण्ड भी महत्वहीन है, किन्तु रसकी दृष्टिसे बहुत
श्रेष्ठ है। रौद्र और भयानक रसोंका वर्णन तो 'मानस' से भी बढ़कर है
इसका कारण यही है कि इन रसोंके वर्णनमें घनाक्षरी छन्दका उपयु
प्रयोग है, जो कि 'मानस' में नहीं अपनाया गया है। लंका-दहनके
वर्णनमें क्रोध और भयकी भावना स्थायी रूपसे रहनेके कारण भयानक
और रौद्र रसोंके उद्रेकमें सहायक है, देखिये कितना प्रभावकारी भय है :-

'लागि, लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
घोय को न माय बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार-बसन उघारे धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े, 'बारि-बारि' बार-बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं॥
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥ १५॥"

"लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहिरे।
पानी को ललात बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तूँ ---हिरे॥
प्रिया! तूँ पराहि, नाथ! नाथ! तूँ पराहि बाप!
बाप! तूँ पराहि पूत! पूत! तूँ पराहि "
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल क
कहि दससीस! अब बी- नख

और हनुमानके अमित पर।

व्याकुल हो गये हैं: —

"बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि-पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अधं-ऊर्ध बानर, बिदिसि-दिसि बानर है,
मानो रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
मूँदैं आँखि हिय में, उघारैं आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ, तहाँ और कोउ को किए।
लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखायो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए॥ १७॥"

एक वीभत्स-दृश्यका भी उदाहरण लीजिए :—

"हाट-बाट हाटकु पिघिलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्ही भली-भाँति भायसों॥
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित-चाय सों।
'तुलसी' निहारि अरि-नारि दै-दै गारि कहैं,
बावरे सुरारि बैरु कीन्हीं रामराय सों॥ २४॥"

लंका-काण्डमें, जिसमें कविने अङ्गद-रावण और मन्दोदरी-रावण-सम्वाद विस्तारसे वर्णनकर युद्ध-वर्णन प्रारम्भ कर दिया है, कथा नियमित रूपसे नहीं चल पायी है। रसके विचारसे इसमें भी वीर, रौद्र तथा वीभत्स रसोंका अच्छा वर्णन मिलता है, किन्तु 'मानस' की भाँति राम और हनुमानका युद्ध राक्षसोंके साथ जिस प्रकार हुआ, इसमें वैसा नहीं है। इसमें तो रामका युद्ध संक्षेपमें है और हनुमान्‌का विस्तृत। वीर तथा रौद्र रसके वर्णन हनुमान्‌जीके युद्धमें देखे जा सकते हैं :—

"जो दससीस महीधर ईसु को बीस भुजा खुलि खेलनहारो।

पूर्ण घटनाका भी संकेत नहीं मिलता ? इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्डमें सुग्रीवमित्रता एवं बालि-वध आदि घटनाओंका वर्णन न आकर केवल हनुमानजीका समुद्रोलंघन संबन्धी एक छन्द दे दिया गया। कथाकी दृष्टि इसी प्रकार सुन्दर काण्ड भी महत्वहीन है, किन्तु रसकी दृष्टिसे बहुत । श्रेष्ठ है । रौद्र और भयानक रसोंका वर्णन तो 'मानस' से भी बढ़कर है इसका कारण यही है कि इन रसोंके वर्णनमें घनाक्षरी छन्दका उपयुक्त प्रयोग है, जो कि 'मानस' में नहीं अपनाया गया है। लंका-दहनके वर्णनमें क्रोध और भयकी भावना स्थायी रूपसे रहनेके कारण भयानक और रौद्र रसोंके उद्रेकमें सहायक है, देखिये कितना प्रभावकारी भय है :-

'लागि, लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
घीय को न माय बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार-बसन उघारे धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े, 'बारि-बारि' बार-बारहीं ॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं ॥
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात ! तौंसियत झौंसियत झारहीं ॥ १५ ॥"
"लपट कराल ज्वाल-जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचाने कौन काहि रे।
पानी को ललात बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तूँ निबाहि रे ॥
प्रिया ! तूँ पराहि, नाथ ! नाथ ! तूँ पराहि बाप !
बाप ! तूँ पराहि पूत ! पूत ! तूँ पराहि रे ॥'
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस ! अब बीस चख चाहि रे ॥ १६ ॥"

और हनुमानके अमित पराक्रमसे लंका-निवासी आतंकित भयभीत

व्याकुल हो गये हैं: —

"बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि-पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अर्ध-ऊर्ध बानर, बिदिसि-दिसि बानर है,
मानो रह्यो है भरि बानर तिलोकिए॥
मूँदैं आँखि हिय में, उघारैं आँखि आगे ठाढो,
धाइ जाइ जहाँ, तहाँ और कोउ को किए।
लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखायो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए॥ १७॥"

एक बीभत्स-दृश्यका भी उदाहरण लीजिए :—

"हाट-बाट हाटकु पिघिलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्ही भली-भाँति भायसों॥
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित-चाय सों।
'तुलसी' निहारि अरि-नारि दै-दै गारि कहैं,
बावरे सुरारि बैरु कीन्हीं रामराय सों॥ २४॥"

लंका-काण्डमें, जिसमें कविने अङ्गद-रावण और मन्दोदरी-रावण-सम्वाद विस्तारसे वर्णनकर युद्ध-वर्णन प्रारम्भ कर दिया है, कथा नियमित रूपसे नहीं चल पायी है। रसके विचारसे इसमें भी वीर, रौद्र तथा बीभत्स रसोंका अच्छा वर्णन मिलता है, किन्तु 'मानस' की भाँति राम और हनुमानका युद्ध राक्षसोंके साथ जिस प्रकार हुआ, इसमें वैसा नहीं है। इसमें तो रामका युद्ध संक्षेपमें है और हनुमान्का विस्तृत। वीर तथा रौद्र रसके वर्णन हनुमान्जीके युद्धमें देखे जा सकते हैं :—

"जो दससीस महीधर ईसु को बीस भुजा खुलि खेलनहारो।

लोकप, दिग्गज, दानव-देव, सबै सहमे सुनि साहस भारो ॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिका गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो ॥

"साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बन्दर बिसाल मेरु-मन्दर-से,
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधि तीर के ॥
तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी युद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज-निज भट भीर के।
रुंडन के झुण्ड झूमि-झूमि झुकने से नाचैं,
समर सुमार सूर मारैं रघुबीर के।।"

'मानस' की भाँति राम-कथा उत्तर-काण्ड तक नहीं जा पायी है। लंका-काण्डमें ही वह समाप्त हो जाती है।

उत्तर-काण्ड इस ग्रन्थका वृहत् अंश है। इसमें कविने नीति, भक्ति तथा आत्म-चरित्रका विशेष वर्णन किया है। इस प्रकरणमें कविने अपनी कितनी ही बातें व्यक्तिगत लिखी हैं। जिससे इसके द्वारा कविके जीवनके सम्बन्धमें अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस काण्डमें शान्त-रसके वर्णन अधिक मिलते हैं। इसके साथ ही तत्कालीन परिस्थितियोंका चित्रण, पौराणिक कथाएँ, भ्रमरगीत, कलिसे विवाद और देवताओंकी स्तुतिके विवरण भी मिलते हैं। उत्तर-काण्ड राम-कथासे सम्बन्धित न होकर स्वतन्त्र है। समग्र कवितावलीमें भयानक-रसका जितना सुन्दर वर्णन विस्तारके साथ मिलता है, वह हिन्दी-साहित्यमें बेजोड़ है।

(द) गीतावली—इसका रचनाकाल कुछ लोग सं० १६२८ मानते हैं* और कुछ लोग सं १६४३ मानते हैं।† यह कृति ग्रन्थके रूपमें

---

* श्रीबेणीमाधवदासका मत। † डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माका मत।

सम्बद्ध न लिखी जाकर स्फुट पदोंमें ही रची गयी है। इसमें कोई मंगला-चरण नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीके जन्मोत्सवसे ही इसकी रचना प्रारम्भ होती है। 'मानस'की भाँति भगवान् रामके जन्मके कारणोंका न तो उल्लेख है और न उसकी सब कथाएँ ही वर्णित हैं। यह ग्रन्थ भी सात काण्डोंमें विभक्त है। इसमें कुल मिलाकर ३२८ पद ही रचे गये हैं। बाल-काण्डमें १०८, अयोध्या-काण्डमें ८६, अरण्य-काण्डमें १७२, किष्किंधा-काण्डमें २, सुन्दर-काण्डमे ५१, लंका-काण्डमें २३ और उत्तर-काण्डमें ३८ पद हैं। 'मानस'की भाँति सभी काण्डोंका कथाका पूर्ण-निर्वाह नहीं किया गया है। क्योंकि अयोध्या-काण्डमें प्रथम पदमें ही वशिष्ठसे रामराज्याभिषेकके निमित्त दशरथजीकी विनय है, दूसरेमें राम-वनवास और माता कौशिल्या द्वारा रामसे वन न जानेकी प्रार्थना है, कैकेयीकी वरदानवाली सभी विदग्धतापूर्ण कथाओंका वर्णन नहीं आने दिया गया है। 'मानस'की भाँति इस ग्रन्थमें कविको चरित्र-चित्रणमें सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इसका भी कारण यही है कि इसमें भी घट-नाओंका वर्णन विशृङ्खलित है। यदि 'गीतावाली' स्फुटरूपमें न लिखी गयी होती, तो चरित्र-चित्रणमें कविको अवश्य सफलता प्राप्त होती।

राम-कथाकी रचना पदोंमें करनेकी प्रेरणा तुलसीदासको सूरसागरसे मिली; क्योंकि 'गीतावली'के अनेक पद भी सूर-सागरके कुछ पदोंसे मिलते हैं। कहीं-कहीं तो इनमें इतनी समानता है कि 'तुलसी' और 'सूर' तथा 'राम' और 'श्याम' का ही अन्तर होता है और शेष पद ज्यों-के-त्यों एक-से हैं। इसके अतिरिक्त 'गीतावली'में बाल-वर्णन सूरसागरके ही समान विस्तारके साथ मिलता है, जब कि कविने अन्य ग्रन्थों—कविता-वली', 'मानस'—आदिमें बहुत संक्षिप्त रूपसे इस प्रसंगको वर्णित किया है। जिस प्रकार सूरसागरमें यशोदा श्रीकृष्णके वियोगमें अनेक कल्पनाएँ करती हैं, अनेक पूर्व स्मृतियोंको जगाती हैं, उसी प्रकार तुलसीदासने भी रामके वियोगमें 'गीतावलीके अन्तर्गत माता कौशल्याका चित्रण किया

किया है। सूरसागरके समान ही 'गीतावली'में—रामराज्यमें हिंडोल वसन्त, होली और चाँचर-वर्णन मिलते हैं। इतना होते हुए भी 'सूरसागर' और 'गीतावली'के बाल-वर्णनमें अन्तर है। साधारण तथा स्वाभाविक परिस्थितियोंके वर्णनमें गोस्वामीजीने भगवान् रामके उत्कृष्ट व्यक्तित्व और महत्त्वका ध्यान रखा है, जिससे मर्यादाका अतिक्रमण न होने पावे। गीतावलीका बाल-वर्णन वर्णनात्मक अधिक है; क्योंकि उसमें स्थितिका सम्पूर्ण निरूपण हुआ है। किन्तु 'गीतावली'का बाल-वर्णन अभिनयात्मक नहीं माना जा सकता। पात्रोंके सम्भाषणके कुछ अभावके कारण रामके शृङ्गार-वर्णनके प्रसंगमें मनोवेगोंका स्थान गौण हो गया है। सूरसागरमें मनोवैज्ञानिक भावनाओंका जो वर्णन पात्रोंके अभिनयका रूप देकर सूरदासने किया है, वह 'गीतावली'के ऐसे वर्णनोंसे श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वाभाविक बाल-चेष्टाओंके अन्तर्गत स्वतन्त्रता, चञ्चलता और चपलता आदिकी सृष्टि न करके तुलसीदासजी अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रजीके सौन्दर्य-चित्रण—उनके अंग, वस्त्र तथा आभूषण आदिके वर्णनमें भी मर्यादाका सर्वथा ध्यान रखते ही रहे। उन्हें भय था कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मनोवेगोंके स्वाभाविक चित्रणमें कहीं मर्यादाका उल्लंघन न हो जाय। सूरदासकी भक्ति सख्यभावके अन्तर्गत होनेसे विस्तृत क्षेत्रका उन्हें अवसर था। वे अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता-पूर्वक भावोंकी सृष्टि कर सकते थे, किन्तु महात्मा तुलसीदासकी भक्ति दास्यभावके अन्तर्गत थी, जिसके भीतर दृष्टि-विस्तारकी क्षमता होनेपर भी मर्यादाके बाहर झाँकना वर्जित होनेसे कविको एक संकुचित घेरेमें ही रह जाना पड़ा। इसलिए रामचन्द्रजी नागरिक-जीवनसे मर्यादित होनेके कारण (मर्यादा पुरुषोत्तम होनेके कारण) उच्छृङ्खलताके सम्पर्कमें न लाए जा सके और कविको उनके प्रायः बाह्यरूप-वर्णनमें ही संतोष करना पड़ा। जहाँ सूरदासको भगवान् श्रीकृष्णके अनेक गोपियोंके सम्पर्कमें आने और उनसे प्रेम करने जैसे विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके लिए

अवसर था, वहाँ रामके एक पत्नीव्रती और मर्यादित संयमी होनेके कारण कवि तुलसीदासको सुन्दर ललित रोमांचक प्रेम का नहीं मिल पाया, जिससे उन सभी काम-चेष्टाओंका वे अंकन न कर सके। अत्यन्त संकुचित दायरेमें भी रहकर कविने अपनी काव्य कुशलताका जिस परिचय दिया है, वह क्या कम है?

वर्ण्य-विषय—गोस्वामी तुलसीदासके ग्रन्थोंमें कलेवरकी दृष्टिसे 'मानस' के पश्चात् 'गीतावली' का है। इसमें समग्र राम-चरित्र पदोंमें वर्णित है। किन्तु 'मानस'की अपेक्षा इसकी वर्णन-शैली, दूसरे ढंगकी है, 'मानस' महाकाव्य है, उसमें सभी रसोंका सांगोपांग वर्णन है, वहाँ कवि-हृदयके समग्र भावोंका गम्भीर विश्लेषण देखनेमें मिलता है। किन्तु 'गीतावली' की रचना गीतोंमें मुक्तक रूपसे हुई है, जिसमें आद्योपान्त कविका एक ही भाव देखनेमें आता है। सच तो यह है कि आराध्यसे आत्म-निवेदनकी प्रबलतामें रचना गेय हो जाती है तथा भावनाके घनीभूत होनेसे संक्षिप्तता आ जाती है। विद्वानों द्वारा सफल गीति-काव्यके चार लक्षण गिनाए गए हैं :—१—आत्माभिव्यक्ति, २—विचारोंकी एकरूपता, ३—संगीत और ४—संक्षिप्तता। ये तत्त्व 'गीतावली'में पाए जाते हैं। इन तत्वोंके संयोजनका प्रयत्न कविने किया है। इस रचनामें प्रबन्धात्मकताकी अपेक्षा न करके अपने इष्टदेवकी मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत करनेमें कवि ललित भाव ही व्यक्त कर सका है। भगवान्‌के रूप-माधुर्य अथवा करुण रसका वर्णन कविने अन्य घटनाओंकी अपेक्षा अधिक विस्तारसे किया है, जितनी परुष घटनाएँ हैं; उनकी ओर तो कवि दृष्टिपात भी नहीं करता। इसी दृष्टिकोणसे कविने कैकेयी-दशरथसंवाद, लंका-दहन, राम-रावण-युद्ध आदिका वर्णन नहीं किया है। ये स्थल गीतके कोमल एवं मधुर उपकरणोंके लिए अनुकूल नहीं पड़ सकते थे। संक्षेपमें प्रत्येक काण्डकी समीक्षा इस प्रकार है :—

बाल-काण्ड—इसमें रामकी बाल्यावस्थाके अतीव सुन्दर और कोमल

चित्र अंकित है ४४ पदोंमें रामका बाल-चित्रण किया गया है। इ
जनकपुरकी स्त्रियों द्वारा रामकी (किशोर मूर्तिकी) सुन्दरता एवं उन
प्रति भक्ति-भावनाकी सर्वाङ्गीण पवित्र चित्रावली, उपस्थित करते हुए इ
प्रसंगका कविने बहुत विस्तृत वर्णन किया है।

अयोध्या-काण्ड—इसमें दशरथ और कैकेयीके संवादका वर्ण
नहीं है। किन्तु वनमार्गमें ग्रामीण स्त्रियों द्वारा प्रभुके वारथ-वेशका व
वर्णन किया गया है, वह भक्तके दृष्टिकोणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'मानस'के
अपेक्षा चित्रकूटके प्रसंगमें वसन्त और फागके वर्णन भी मिलते हैं, जो
कविके किसी दूसरे ग्रन्थमें नहीं मिलते। माताकी करुणामयी भावनाका
वर्णन बड़ा ही सजीव है। इस काव्यमें कथाकी प्रधानता न होकर भावोंका
प्रधानता है।

अरण्य-काण्ड—इसमें भी 'मानस'की भाँति कथाका निर्वाह नहीं
किया गया है, वसन्त-ऋतु, अत्रि एवं अनुसूइयासे तपस्वी वेशमें राम-
लक्ष्मण और सीताका मिलाप, विराध-वध, शरभंग, अगस्त एवं
सुतीक्ष्णसे प्रभुमिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-वध, रावण और
मारीचका वार्तालाप, राम और नारदका मिलन तथा उनका भक्ति-सम्बंधी
संवाद, जो मानसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, इसमें नहीं लिया गया।
इसका कारण यह जान पड़ता है कि ये घटनाएँ वर्णनात्मक और वीरात्मक
हैं, जो कोमल भावनाओंसे युक्त न होनेके कारण छोड़ दी गयी हैं। राम-
चन्द्रजीकी भक्तवत्सलतासे सम्बन्धित होनेके कारण गीध-प्रसंग पूर्वरूपमें
वीरतापूर्ण होनेपर भी ले लिया गया है शबरीके प्रसंगमें भी यही बात
है। इस काण्डमें कोमल भावनाओंका सुन्दर वर्णन है।

किष्किन्धा काण्ड—इसमें मात्र दो पद लिखे गए हैं। कथाकी
दृष्टिसे तथा 'मानस'में वर्णित प्रकृति-चित्रणके साथ जो उपदेश दिया
गया है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है।

सुन्दर-काण्ड—इसमें 'मानस'की भाँति अशोक-वाटिका-विध्वंस एवं

लंकादहन जैसे प्रमुख प्रसंग छूट गये हैं। रस की दृष्टिसे, इसमें वीर, वियोग शृङ्गार और रौद्र-रसोंके अतिरिक्त शान्त रसको भी अपनाया गया है, यह काण्ड श्रेष्ठ है। विभीषणका रामके समीप आकर शरणागत होना, तुलसीदासजीका अपनी आत्माभिव्यक्तिका द्योतक है। वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें सीताके हृदयकी मर्मस्पर्शिनी-व्यथा, वीर-रसमें श्रीराम-चन्द्रजीका सैन्य-संचालन, रौद्र-रसमें रावणके प्रति हनुमानजीकी ललकार तथा शान्त रसमें विभीषणके उद्गारोंका वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस काण्डमें गीति-काव्यका पूर्ण-निर्वाह करनेका प्रयत्न किया गया है।

लंका-काण्ड—इस प्रकरणमें राम-रावण-युद्ध, जिसके आधारपर इस काण्डका नामकरण भी 'युद्ध काण्ड' किया गया है, नहीं वर्णित है। अंगद-रावण संवादके बाद ही लक्ष्मण-शक्तिका वर्णन कर दिया गया है। इस काण्डमें 'मानसकी भाँति वीररसका अधिक वर्णन होना चाहिए था, किन्तु वीररसके बदले करुणरसका वर्णन आया है। इसमें हनुमानजीकी वीरताके कुछ पद आ गए हैं और इसी प्रकार कथाको संक्षिप्त करते हुए कविने लक्ष्मण-शक्तिके बाद ही भगवान् रामकी विजयका एक ही पदमें वर्णन किया है।

उत्तर-काण्ड—इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण और कृष्ण-काव्यसे प्रभावित है। इन दोनोंके मध्य तुलसीदासकी कथा-वर्णनकी मौलिकताके दर्शन भी होते चलते हैं। रामराज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश-जन्म आदि कथाएँ तो वाल्मीकि-रामायण की-सी हैं; हिंडोला, नख-शिख-वर्णन कृष्ण-काव्य सा है। बाल-काण्डके समान ही अवस्था-भेदके साथ इस काण्डके प्रारम्भमें भी 'मानसकी भाँति सम्पूर्ण राम-कथाका सारांश दे दिया गया है। इसमें हिंडोला आदि वर्णनोंके आ जानेसे रामचन्द्रजी-की जिस मर्यादाका उचित संरक्षण 'मानस'में किया गया है, वह इस ग्रन्थमें नहीं हो पाया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि गीतावलीमें भावनाओंकी ही प्रधानता

चित्र अंकित हैं ४४ पदोंमें रामका बाल-चित्रण किया गया है। इसमें जनकपुरकी स्त्रियों द्वारा रामकी (किशोर मूर्त्तिकी) सुन्दरता एवं उनके प्रति भक्ति-भावनाकी सर्वाङ्गीण पवित्र चित्रावली, उपस्थित करते हुए इस प्रसंगका कविने बहुत विस्तृत वर्णन किया है।

अयोध्या-काण्ड—इसमें दशरथ और कैकेयीके संवादका वर्णन नहीं है। किन्तु वनमार्गमें ग्रामीण स्त्रियों द्वारा प्रभुके तापस-वेषका जो वर्णन किया गया है, वह भक्तके दृष्टिकोणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'मानस'की अपेक्षा चित्रकूटके प्रसंगमें वसन्त और फागके वर्णन भी मिलते हैं, जो कविके किसी दूसरे ग्रन्थमें नहीं मिलते। माताकी करुणामयी भावनाका वर्णन बड़ा ही सजीव है। इस काव्यमें कथाकी प्रधानता न होकर भावोंकी प्रधानता है।

अरण्य-काण्ड—इसमें भी 'मानस'की भाँति कथाका निर्वाह नहीं किया गया है, जयन्त-छल, अत्रि एवं अनुसूइयासे तपस्वी वेषमें राम-लक्ष्मण और सीताका मिलाप, विराध-वध, शरभंग, अगस्त एवं सुतीक्ष्णसे प्रभुमिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-वध, रावण और मारीचका वार्तालाप, राम और नारदका मिलन तथा उनका भक्ति-सम्बंधी संवाद, जो मानसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, इसमें नहीं लिया गया। इसका कारण यह जान पड़ता है कि ये घटनाएँ वर्णनात्मक और वीरात्मक हैं, जो कोमल भावनाओंसे युक्त न होनेके कारण छोड़ दीं

चन्द्रजीकी भक्तवत्सलतासे सम्बन्धित होनेके कारण गौण

वीरतापूर्ण होनेपर भी ले लिया गया है शबरीके

है। इस काण्डमें कोमल भावनाओंका सुन्दर

किष्किन्धा-काण्ड—इसमें मात्र दो

दृष्टिसे तथा 'मानस'में वर्णित प्रकृति-चि.

गया है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है।

सुन्दर-काण्ड—इसमें 'मानस'

लंकादन जैसे प्रमुख प्रसंग छूट गए हैं। रस की दृष्टिसे, इसमें वीर, वियोग-शृङ्गार और रौद्र-रसोंके अतिरिक्त शान्त-रसको भी अपनाया गया है, यह काण्ड श्रेष्ठ है। विभीषणका रामके समीप आकर शरणागत होना, तुलसीदासजीका अपनी आत्माभिव्यक्तिका द्योतक है। वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें सीताके हृदयकी मर्मस्पर्शिनी-व्यथा, वीर-रसमें श्रीराम-चन्द्रजीका सैन्य-संचालन, रौद्र-रसमें रावणके प्रति हनुमानजीकी ललकार तथा शान्त रसमें विभीषणके उद्‌गारोंका वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस काण्डमें गीति-काव्यका पूर्ण-निर्वाह करनेका प्रयत्न किया गया है।

लंका-काण्ड—इस प्रकरणमें राम-रावण-युद्ध, जिसके आधारपर इस काण्डका नामकरण भी 'युद्ध काण्ड' किया गया है, नहीं वर्णित है। अंगद-रावण संवादके बाद ही लक्ष्मण-शक्तिका वर्णन कर दिया गया है। इस काण्डमें 'मानसकी भाँति वीररसका अधिक वर्णन होना चाहिए था, किन्तु वीररसके बदले करुणरसका वर्णन आया है। इसमें हनुमानजीकी वीरताके कुछ पद आ गए हैं और इसी प्रकार कथाको संक्षिप्त करते हुए कविने लक्ष्मण-शक्तिके बाद ही भगवान् रामकी विजयका एक ही पदमें वर्णन किया है।

उत्तर-काण्ड—इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण और कृष्ण-काव्यसे प्रभावित है। इन दोनोंके संग तुलसीदासकी कथा-वर्णनकी मौलिकताके दर्शन भी होते चलते हैं। रामराज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश-जन्म आदि कथाएँ तो वाल्मीकि-रामायण की-सी हैं; हिंडोला, नख-शिख-वर्णन कृष्ण-काव्य-सा है। बाल-काण्डके समान ही अवस्था-भेदके साथ इस काण्डके प्रारम्भमें भी 'मानसकी भाँति सम्पूर्ण राम-कथाका सारांश दे दिया गया है। इसमें हिंडोला आदि वर्णनोंके आ जानेसे रामचन्द्रजी-की [illegible] उचित संरक्षण 'मानस'में किया गया है, वह इस [illegible] है।

[illegible] चुका है [illegible] भावनाओंकी ही प्रधानता

चित्र अंकित हैं ४४ पदोंमें रामका बाल-चित्रण किया गया है। इसमें जनकपुरकी स्त्रियों द्वारा रामकी (किशोर मूर्त्तिकी) सुन्दरता एवं उनके प्रति भक्ति-भावनाकी सर्वाङ्गीण पवित्र चित्रावली, उपस्थित करते हुए इस प्रसंगका कविने बहुत विस्तृत वर्णन किया है।

अयोध्या-काण्ड—इसमें दशरथ और कैकेयीके संवादका वर्णन नहीं है। किन्तु वनमार्गमें ग्रामीण स्त्रियों द्वारा प्रभुके तापस-वेषका जो वर्णन किया गया है, वह भक्तके दृष्टिकोणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'मानस'की अपेक्षा चित्रकूटके प्रसंगमें वसन्त और फागके वर्णन भी मिलते हैं, जो कविके किसी दूसरे ग्रन्थमें नहीं मिलते। माताकी करुणामयी भावनाका वर्णन बड़ा ही सजीव है। इस काव्यमें कथाकी प्रधानता न होकर भावोंका प्रधानता है।

अरण्य-काण्ड—इसमें भी 'मानस'की भाँति कथाका निर्वाह नहीं किया गया है, जयन्त-छल, अत्रि एवं अनुसूइयासे तपस्वी वेषमें राम-लक्ष्मण और सीताका मिलाप, विराध-वध, शरभंग, अगस्त एवं सुतीक्ष्णसे प्रभुमिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-वध, रावण और मारीचका वार्तालाप, राम और नारदका मिलन तथा उनका भक्ति-सम्बंधी संवाद, जो मानसमें विस्तारपूर्वक वर्णित है, इसमें नहीं लिया गया। इसका कारण यह जान पड़ता है कि ये घटनाएँ वर्णनात्मक और वीरात्मक हैं, जो कोमल भावनाओंसे युक्त न होनेके कारण छोड़ दी गयी हैं। रामचन्द्रजीकी भक्तवत्सलतासे सम्बन्धित होनेके कारण गीध-प्रसंग पूर्वपक्षमें वीरतापूर्ण होनेपर भी ले लिया गया है शबरीके प्रसंगमें भी यही बात है। इस काण्डमें कोमल भावनाओंका सुन्दर वर्णन है।

किष्किन्धा काण्ड—इसमें मात्र दो पद लिखे गए हैं। कथाकी दृष्टिसे तथा 'मानस'में वर्णित प्रकृति-चित्रणके साथ जो उपदेश दिया गया है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है।

सुन्दर-काण्ड—इसमें 'मानस'की भाँति अशोक-वाटिका-विध्वंस एवं

लंकादहन जैसे प्रमुख प्रसंग छूट गए हैं। रस की दृष्टिसे, इसमें वीर, वियोग शृङ्गार और रौद्र-रसोंके अतिरिक्त शान्त-रसको भी अपनाया गया है, यह काण्ड श्रेष्ठ है। विभीषणका रामके समीप आकर शरणागत होना, तुलसीदासजीका अपनी आत्माभिव्यक्तिका द्योतक है। वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें सीताके हृदयकी मर्मस्पर्शिनी-व्यथा, वीर-रसमें श्रीराम-चंद्रजीका सैन्य-संचालन, रौद्र-रसमें रावणके प्रति हनुमानजीकी ललकार तथा शान्त रसमें विभीषणके उद्गारोंका वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस काण्डमें गीति-काव्यका पूर्ण-निर्वाह करनेका प्रयास किया गया है।

लंका-काण्ड—इस प्रकरणमें राम-रावण-युद्ध, जिसके आधारपर इस काण्डका नामकरण भी 'युद्ध काण्ड' किया गया है, नहीं वर्णित है। अंगद-रावण संवादके बाद ही लक्ष्मण-शक्तिका वर्णन कर दिया गया है। इस काण्डमें 'मानस'की भाँति वीररसका अधिक वर्णन होना चाहिए था, किन्तु वीररसके बदले करुणरसका वर्णन आया है। इसमें हनुमानजीकी वीरताके कुछ पद आ गए हैं और इसी प्रकार कथाको संक्षिप्त करते हुए कविने लक्ष्मण-शक्तिके बाद ही भगवान् रामकी विजयका एक ही पदमें वर्णन किया है।

उत्तर-काण्ड—इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण और कृष्ण-काव्यसे प्रभावित है। इन दोनोंके साथ तुलसीदासकी कथा-वर्णनकी मौलिकताके दर्शन भी होते चलते हैं। रामराज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश-जन्म आदि वर्णन तो वाल्मीकि-रामायणसे लिये हैं; हिंडोला, वसन्तोत्सव-वर्णन कृष्ण-काव्यका है। अश्वमेधके स्थान ही [illegible] के बाद इस प्रकारके [illegible] 'मानस'की भाँति सम्पूर्ण [illegible] कराया है 'दिया गया है। इसमें हिंडोला आदि वर्णनोंके [illegible] [illegible] [illegible] वसन्तोत्सव [illegible] 'मानस'से लिया गया है, वह इस ग्रन्थमें नहीं हो सका है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि दोहावलीके अनुकरण ही [illegible]

है, घटनाओंकी नहीं। इसलिए इसमें कथाका अनियमित विस्तार जिसमें भावनात्मक-चित्रण विशेष मार्मिक हैं। रामका सौन्दर्य-व विशेष ढंगसे मिलता है। लोक-शिक्षणकी ओर कविका ध्यान 'मानस' भाँति नहीं गया। गीत-काव्यके आदर्शोंके संरक्षणमें 'मानस'की भी सभी घटनाएँ नहीं आयी हैं, जैसे करुण तथा ओजपूर्ण स्थल तो स 'गातीवली'में छूट ही गए हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी हृदय विविध भावोंकी अभिव्यक्ति 'गीतावली'के मधुर पदोंमें हुई है। 'गीत वली'की रचना ब्रज भाषामें हुई है, जिसमें ब्रज भाषापर कविका अन्छ अधिकार दिखायी पड़ता है। इसमें काव्य-कलाकी दृष्टिसे सबसे अधि मधुर भावोंकी अभिव्यक्ति है। डाक्टर श्रीरामकुमार वर्माके शब्दोंमें 'तुलसीदास गीति-काव्यके अन्तर्गत केवल सौन्दर्यकी सृष्टि कर सके, किस उत्कृष्ट काव्यादर्शकी नहीं। न तो वे 'विनय-पत्रिका'के समान आत्म-निवेदन हो कर सके और न 'मानस'के समान कथा-प्रसंगकी सृष्टि ही। अतः 'गीतावली' एकान्त 'माधुर्य'की रचना है।*

रसकी दृष्टिसे 'गीतावली' शृङ्गार-रस-प्रधान रचना है। डा० श्रीराम-कुमार वर्माके शब्दोंमें—१—'यदि वात्सल्यको भी शृङ्गार-रसके अन्तर्गत मान लिया जावे, तब तो संयोग-शृङ्गार ही प्रधान हो जाता है, क्योंकि—रामका बाल-वर्णन संयोगात्मक अधिक है, वियोगात्मक कम। इसके पर्याय कृष्णका बाल-वर्णन वियोगात्मक अधिक है, संयोगात्मक कम। २—'तुलसीने जैसा चित्रण राम-कथाका किया है, उसके अनुसार भी शृङ्गार-रसको प्रधान स्थान मिलता है। रामके उन्हीं चरित्रोंका दिग्दर्शन अधिक कराया गया है, जो कोमल भावनाओंके व्यंजक हैं। ३—"गीता-वलीका अन्तिम भाग कृष्ण-काव्यसे प्रभावित होनेके कारण भी अधिक

* डा० श्रीरामकुमार वर्मा कृत देखिए "हिन्दी साहित्यका आलो-चनात्मक इतिहास" द्वितीय संस्करण पृ० ४०३।

शृङ्गारात्मक बन गया है। वसन्त और हिंडोला आदि अवतरणोंने तो शृङ्गारको और भी अतिरंजित कर दिया है।'*

'गीतावली'में रामका बाल-वर्णन, सीता-स्वयंवर, विवाह, वन-गमन, चित्रकूट-वर्णन और रामके पंचवटी-जीवनका वर्णन तथा रामके नख-शिख और हिंडोला, वसन्त आदिके वर्णनोंमें शृङ्गार-रसके वर्णनकी उत्कृष्ट पदावलियां मिलेंगी। इसके अतिरिक्त वियोग-शृङ्गारके वर्णनमें कविको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। जीवनकी वास्तविक परिस्थितियोंके वर्णनमें वियोग-शृङ्गार विशेष सफल हुआ है। अयोध्या-काण्डमें वियोग-शृङ्गार तो अपनी चरम सीमापर है।

करुण-रसका वर्णन अयोध्या-काण्डके १२ वें और ५७ वें पद (दशरथ-मरणके प्रसंग) में इसी प्रकारके पद दूसरेसे चौथे तक कौशल्या-विलाप और लंका-काण्डके लक्ष्मण-शक्तिके बाद राम-विलापके अन्तर्गत पांचवेंसे सातवें पदमें मिलते हैं, जो अत्यन्त मार्मिक हैं। जान पड़ता है, हास्य-रसको कविने इसमें लानेकी चेष्टा ही नहीं की। यह बाल-काण्डके ६५ वें पदमें वर्णित अवश्य है; किन्तु अन्य रसोंकी भांति उत्कृष्ट नहीं है। वीर-रसके लिए यद्यपि इस गीति-काव्य-ग्रन्थमें विशेष उपयुक्त अवसर नहीं था, किन्तु सुन्दर-काण्डके १२ वें—१४ वें पदमें जहां हनुमान-रावण प्रसंग है; अरण्य-काण्डके आठवें पदमें जहां जटायु-रावण-युद्ध-प्रसंग है और लङ्का-काण्डमें ८-६ तथा १० वें पदमें जहां हनुमानका संजीवनी लानेके लिए प्रस्थानका प्रसंग है, उत्तम व्यञ्जना है। इसी प्रकार बाल-काण्डके ८६ वें पदमें धनुष-चढ़ानेके प्रसंगमें राम तथा लक्ष्मणका उत्साह तथा धनुर्भंगकी प्रचण्डताका वर्णन भी अत्यधिक ओजस्वितापूर्ण है। जनकजीके कहने पर :—

* देखिए 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास'—डा० श्रीरामकुमार वर्मा कृत पृ० ४०३।

"सतदीप नव खंड भूमि के भूपति वृन्द जुरे।
बड़ी लाभ कन्या कीरति को, जहँ तहँ महिप मुरे॥
टन्यो न धनु जनु वीर-विगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे।"

वीर लक्ष्मण कहते हैं :—

"रोषे लखन विकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे॥
सुनहु भानु-कुल-कमल-भानु! जो अब अनुशासन पावौं।
का बापुरो पिनाकु, मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं॥
देखौ निज किंकर को कौतुक, क्यों कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यौं, तौ प्रभु-अनुज कहावौं॥"

इसी प्रकार लक्ष्मण-मूर्च्छा पर रामकी व्याकुलता देख हनुमानजीके वचन :—

"जौं हौं अब अनुशासन पावौं।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुण्ड महि लावौं॥
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुज कहावौं॥
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहि को बायु बहावौं॥"

इत्यादि वीर-रसके श्रेष्ठ नमूने हैं।

रौद्र तथा भयानक-रसके वर्णनोंका अवसर कविको मिल सकता था, वह था—राम-रावण-युद्धका स्थल, किन्तु इस ग्रन्थमें यह कथा आने ही नहीं पायी है। इसके अतिरिक्त अयोध्या-काण्डके ६० वें तथा ६१ वें पदमें, जहाँ कैकेयीके प्रति भरतकी और लंका-काण्डमें दूसरे तथा चौथे पदमें रावणके प्रति अंगदकी भर्त्सना वर्णित है :—

"ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्योरी?
राम जाहु कानन कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्योरी॥ १॥
दिनकर बंस पिता दशरथ-से राम-लखन-से भाई॥

जननी तू जननी ! तो कहा कहौं विधि केहि खोरि न लाई ॥ २ ॥

+ + +

तुलसीदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कवन विधि भरिहै ॥"

इसके अतिरिक्त :—

"तू दस कंठ भले कुल आयो ॥"

"तैं मेरो मरम कछु नहि पायो ॥"

"सुनु खल ! मैं तोहि बहुत बुझायो ॥"

आदि रौद्र-रसके उदाहरण मिलते हैं ।

रामके लंका-प्रस्थानके प्रसंगमें सुन्दर-काण्डके २२ वें पदके अन्तर्गत भयानक-रसका वर्णन बड़ी ओजस्वी भाषामें हुआ है—

"जब रघुबीर पयानो कीन्हों ।

छुभित सिन्धु डगमगत महीधर, सजि सारंग कर लीन्हों ॥ १ ॥

+ + +

तुलसीदास गढ़ देखि फिरे कपि, प्रभु आगमन सुनाइ ॥ १२ ॥"

वीभत्स-रस—इसका वर्णन 'गीतावली'में नहीं आ सका है, क्योंकि युद्धकी विकरालताका वर्णन, जहाँ राम-रावण-युद्धमें अधिक संभव था, उसे न आनेसे इसके वर्णनका अवसर ही नहीं मिल सका । अद्भुत-रसका साधारण वर्णन 'गीतावली'में मिलता है । बाल-काण्डमें पद १, २, १२,और२२, में जहाँ रामकी बाललीलाओंका वर्णन है; अयोध्या-काण्डमें पद १७–४२ में, जिसमें वन-मार्गमें तपस्वी-वेष धारणकर राम, लक्ष्मण और सीताको चलते समय इनके प्रति लोगोंका आकर्षण दिखाया गया है और लंका-कांडमे हनुमान्-द्वारा संजीवनी लानेके लिए जो पद लिखे गये हैं, अर्थात् १० वें, ११ वें पदमें अद्भुत-रसकी व्यंजना हुई है । शान्त-रसका वर्णन सुन्दर-काण्डके अन्तर्गत ३७ से ४६, मात्र दस पदोंमें मिलता है, जिसमें विभीषणका श्रीरामकी शरणमें आनेका प्रसंग है ।

डा० श्रीरामकुमार वर्माके मतानुसार 'गीतावली'में कविके रस-निरू-

पद्यके अन्तर्गत एक दोष है—"उसमें शृङ्गारको छोड़ अन्य रसोंमें आत्मा-
नुभूति नहीं है। पद्य रसोंकी व्यंजना तो कहीं-कहीं केवल उद्दीपन
विभावोंके द्वारा ही की गयी है। यह भी देखनेमें आता है कि स्थायी
भावके चित्रणके बाद तुलसीदासने संचारीभावोंके चित्रणका प्रयत्न बहुत
कम किया है।*

कुछ भी हो इतना तो मानना ही होगा कि 'गीतावली' में अनेक
स्थलोंपर कविने मनोदशाओंके अनेक करुण-चित्र अंकित कर रचनाको
सजीव कर दिया है। यद्यपि 'गीतावली' में 'मानस' तथा 'विनय-पत्रिका'
की भाँति आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तोंकी झलक नहींके बराबर
है, किन्तु राम-कथाके कोमल अंशोंका प्रकाशन तो इस ग्रन्थमें सफलता-
पूर्वक हुआ ही है। भाषामें तद्भव और तत्सम दोनों प्रकारके शब्दोंके
प्रयोगसे इसमें ब्रजभाषा अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक बन गयी है।
इनकी रचनासे कहा जा सकता है—जिस प्रकार कविका अवधीपर पूर्ण
अधिकार था, उसी प्रकार ब्रज-भाषापर भी क्षमता थी। इसमें भी अलं-
कारोंका यथास्थान प्रयोग मौलिक और स्वाभाविक है, किन्तु प्रायः उपमा,
रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, काव्यलिंग और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकारोंका ही
प्रयोग है। गुणोंमें माधुर्य और प्रसादका प्राधान्य है। एक ही प्रकारकी
उपमाओंका आवर्त्तन अनेक बार हो गया है। रामके सौन्दर्य-कथनके
प्रसंगमें कामदेवकी उपमा अधिक बार दी गयी है। इसी प्रकार बादल
और मोर भी अधिक बार याद किए गए हैं। 'गीतावली' का सबसे
महत्वपूर्ण अंश वह है, जिसमें रामके सौन्दर्य और ऐश्वर्यका कथन है।
छन्दोंकी दृष्टिसे 'गीतावली' में किसी एक छन्दको विशेष रूपसे न
अपनाकर आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा,
कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी, मारू,

* ...हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' पृ० ४०७।

भैरव, चंचरी, वसन्त तथा रामकली आदि रागोंकी योजनाके दर्शन होते हैं।

(ई) विनय-पत्रिका—इसका रचना-काल वेणीमाधवदासने सं० १६३६ के लगभग और कुछ विद्वानोंने सं० १६६६ तथा १६८० के बीच माना है। वर्ण्य-विषयकी दृष्टिसे विनय-पत्रिकामें कोई कथा ऐसी नहीं है, जो प्रबन्धात्मक-काव्य माननेमें सहायक हो, इसमें तो भक्ति-संबंधी कविकी प्रार्थना अपने उद्धारके लिए अपने इष्टदेवसे पदोंमें की गयी है। गोस्वामी तुलसीदास स्मार्तवैष्णव थे, इसलिए विनय-पत्रिकामें इन्होंने पाँचों देवताओं—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश—की स्तुतिसे रचना प्रारम्भ की है। भगवान् श्रीराम विष्णु रूप हैं, जिनकी स्तुति तो ग्रन्थमें सबसे अधिक है। आरम्भमें शेष चारों देवताओंकी वन्दना करके तब ग्रन्थकी रचना की गयी है। पदोंमें रचना होनेसे 'विनय-पत्रिका' मुक्तक रचना है, जिसमें सम्पूर्ण प्रबन्धात्मकताकी रक्षा नहीं हो सकती थी। इसमें कविने आत्म-निवेदन किया है, जिसमें भावोंका नियमन नहीं हो सका है। किन्तु श्रीवियोगी हरिजीने यह नहीं माना है, वे लिखते हैं :—

"कोष-काव्य होते हुए भी 'विनय-पत्रिका' का क्रम बड़ा ही सुन्दर है। किसी-किसीके मतसे यह ग्रन्थ गोसाईंजीके फुटकर पदोंका संग्रह-मात्र है, पर हमें यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। हो सकता है, इसके कुछ पद समय-समयपर बनाए गये हों, किन्तु इनकी रचना यथाक्रम ही हुई है। राजा-महाराजाके पास कोई बाला-बाला अर्जी नहीं भेजता। पहले दरबारके मुसाहिबोंको मिलना पड़ता है, तब कहीं पैठ होती है। इस बातको ध्यानमें रखकर गोसाईंजीने पहले देवी-देवताओंको मनाया है, तब वहीं हजूरमें अर्जी पेश की है। श्रीगणेश श्रीगणेशजीकी वन्दनासे किया गया है। फिर भगवान् भास्करकी वन्दना की गयी है। अनेक जन्म-संचित अविद्या-अन्धकारके दूर करनेके लिए मरीचिमालीकी स्तुति युक्तियुक्त ही है। फिर पार्वती-वल्लभ जगद्गुरु शिवका गुणगान किया गया है।

यहींसे कल्याणका प्रशस्त पथ दृष्टिगोचर होता है। कलिको डराने-धमकानेके लिए भीषण मूर्ति भैरवका भी ध्यान किया गया है। तदनन्तर पार्वती, गंगा, यमुना, काशी और चित्रकूटका यशोगान किया गया है... अब यहाँसे हनुमानजीकी वन्दना प्रारम्भ होती है। यह गोसाईंजीके स्थास वकील हैं। इनके आगे अपनी सारी व्यथा-कथा खोलकर रख दी है।...इसके बाद लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसे विनय की है। यहाँ तक दरबारके सारे मुसाहिब साथ लिये गये हैं। अब किसीकी ओरसे कोई शंका नहीं है। श्रीरघुनाथजीके सामने अपनी चर्चा छेड़नेके लिए गोसाईंजीने जनकनन्दिनीजीको क्या ही उक्ति बताई है:—

"कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ॥"

किसी पदमें स्वामीका प्रभुत्व, तो किसीमें सौहार्द्र वा किसीमें औदार्य एवं शील प्रदर्शित किया गया है। किसी पदमें जीवका असामर्थ्य, किसीमें आत्म-ग्लानि वा किसीमें मनोराज्य दिखाया गया है, किसी पदमें अपनी राम-कहानी सुनाई गयी है तो किसीमें अत्याचार-पीड़ित मानव-समाजका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार २७६ पद तक पत्रिका लिखी गयी है। पत्रिका पूरी हो चुकी। अब पेश कौन करे? फिर हनुमान, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरतसे प्रार्थना की गयी। सेवक होनेके कारण अगुवा बननेका किसीको साहस न हुआ। एक दूसरेका मुँह देखने लगे। पर सबमें लक्ष्मण अधिक ढीठ थे उनपर श्रीरामचन्द्रजीका अपरमित स्नेह था। सो उन्होंने पत्रिका पेश की, यहीं ग्रन्थ समाप्त होता है।*

'विनय-पत्रिका'में छः प्रकारके पद हैं—१—प्रार्थना या स्तुति, २—

---

* देखिये 'विनय-पत्रिका हरितोषिणी टीका', श्रीवियोगीहरिजी कृत अनुवाद पृ० १५, १६ और १७।

स्थानोंका वर्णन ३—मनके प्रति उपदेश; ४—संसारकी निस्सारता, ५—ज्ञान-वैराग्य-वर्णन और ६—आत्मचरित्र-संकेत।

प्रार्थना या-स्तुति जिसके अन्तर्गत गणेशसे राम तककी वन्दना की गयी है, रूपकों और कथाओं द्वारा गुण-वर्णनके पद और हैं। रूपवर्णन अलङ्कारों द्वारा तथा रामकी भक्ति-याचना पदोंकी अन्तिम पङ्क्तियोंके द्वारा की गयी है। स्थानोंके वर्णनमें चित्रकूट तथा काशीका विशद चित्रण है। रामकी प्रार्थनाके प्रसंगमें रामकी लीला, नख-शिख-वर्णन, हरिहरकी रूप, दशावतारी महिमा तथा आत्म-निवेदनके भावोंकी व्यञ्जना हुई है।

इस ग्रन्थमें वर्णित भावनाएँ स्वतन्त्र हैं। कहीं कवि संसारकी निस्सारता का वर्णन करता है, तो कहीं मनको उपदेश देता है। रचनामें कहीं कविके व्यक्तिगत जीवनकी व्यञ्जना है, तो कहीं भगवान्‌के दशावतारोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उदारता तथा भक्तवत्सलताकी पौराणिक कथाओंकी झलक है। यही कारण है कि गणिका, अजामिल, गज, व्याध और अहिल्या आदि-की इतिवृत्तोंका बार-बार आवर्त्तन हुआ है। क्योंकि कविका हृदय भक्तिसे भरा है, जिससे वह भगवान्‌के गुणगानमें सर्वथा संलग्न है और उनकी भक्तिमें वह अनेक साधना-पद्धतियों पर अनेक पदोंकी रचना करता है। भक्तिकालमें तुलसीदासके पूर्व विद्यापति, कबीर और सूरदासने जिस लोकोत्तर भक्ति-भावनाकी अभिव्यंजना की थी, उसे उन्होंने नहीं अपनाया। विद्यापतिने जयदेवका अनुकरण करते हुए [illegible] रचनाओंको अपनाया; किन्तु राधा कृष्णका गुणगान करते हुए भी वे [illegible] की व्याख्या करनेमें सफल न हो सके। इसी प्रकार महात्मा कबीरकी रचना भक्तियुक्त होनेपर भी [illegible] करके निकटवर्ती न हो सकी। क्योंकि ज्ञान-समन्वयकी भावना उनकी रचनामें स्थिर हो न हो सकी। देशपरम्पराकी भावना तथा [illegible] अनुभूति, इन दोनोंने निर्गुण कवियोंकी भक्तिकी उपासनाका रूप दे दिया था; जिससे [illegible] और [illegible] कुछके [illegible] न [illegible]

स्थिर कर सके थे, अतः तुलसीकी भक्तिका आदर्श एक मौलिक प्रयास था। यदि सूरदास, उनकी उपासनाका दृष्टिकोण तुलसीदासकी उपासनाके दृष्टिकोणसे भिन्न था, उनकी (सूरकी) भक्ति सख्यभावके अन्तर्गत है और तुलसीकी भक्ति दास्यभावके अन्तर्गत। महात्मा सूरकी रचनामें संस्कृतकी कोमल-कान्त पदावली एवं अनुप्रासोंकी वह योजना नहीं है, जो तुलसीदासकी रचनामें पायी जाती है। आचार्य शुक्लजी लिखते हैं— "दोनों भक्त-शिरोमणियोंकी रचनामें यह भेद ध्यान देने योग्य है और इसपर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजीकी रचना अधिक संस्कृत-गर्भित है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके पदोंमें शुद्ध देश भाषाका माधुर्य नहीं है। उन्होंने दोनों प्रकारकी मधुरताका बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है।*

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीके समकालीन कवियोंने भी पुष्टिमार्गका अवलम्बन कर भक्तिकी विवेचना की; परन्तु उनकी रचनाओंमें भक्ति-भावनाका समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पणकी भावनाकी व्यंजना नहीं हो पायी है। इस विचारसे विनय-पत्रिका' हिन्दी-साहित्यमें अपना एक मौलिक दृष्टिकोण उपस्थित करती है तुलसीदासकी इस रचनामें (दास्य-भावकी भक्तिमें) आत्माकी समग्र वृत्तियोंकी व्यंजना सफल रूपसे हुई है।

'विनय-पत्रिकामें कविने संगीतका आधार लिया है, हर्ष और करुणा-की भावनामें जयतश्री, केदारा, सोरठ तथा आसावरी; वीरकी भावनामें मारू और कान्हरा; शृङ्गारकी भावनामें ललित, गौरी, सूहो और वसन्त; शान्तकी भावनामें रामकली, विभास, कल्याण, मलार और टोड़ीका राग प्रयोगमें लाया गया है। तुलसीदासने विशेष रागिनीमें भावना विशेषके लिए रचना की है। कुल मिलाकर विनय-पत्रिकाके अंतर्गत २१ रागोंमें आत्म-निवेदन है, जिनके नाम हैं—बिलावल धनाश्री, रामकली,

* देखिए "हिन्दी-साहित्यका इतिहास" परिवर्द्धित सं० पृ० १३५।

वसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित, टोड़ी, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण; किन्तु ध्यान देनेकी बात है कि इस प्रसंगमें भावोंका तात्पर्य रस नहीं है।

'विनय-पत्रिका'में एक ही रसकी व्यञ्जना है, वह है शान्त-रस। विविध भाव उसके सञ्चारी होकर ही आए हैं। "विनय-पत्रिका" में शान्त-रसकी जितनी मार्मिक-व्यञ्जना हुई है, 'मानस'को छोड़कर किसी और ग्रन्थमें वह देखनेको नहीं मिलती। 'विनय-पत्रिका' में शान्त-रसके प्राबल्यसे किसी और रसके प्रस्फुटनका अवसर कविको नहीं मिल सका है। क्योंकि इसमें कविकी आत्म-निवेदनकी भावना प्रबल है। जितने और भी रस रचनामें आए, वे सब शान्त रसके ही सञ्चारी बन गए हैं। सूरदासके भी विनयके पद महत्वपूर्ण हैं। किन्तु तुलसीके विनयके पदोंकी भाँति उनमें अनुभूतिकी गहराई नहीं है। जो प्रौढ़ता तुलसीदासके स्थायी भावमें झलकती है, वह सूरदासके स्थायीभावमें नहीं मिलती; क्योंकि रसके आलम्बन विभावको रामचरितने जो अवधेश और मर्यादा पुरुषोत्तमके गुणोंसे विभूषित है बहुत सहायता दी है। सूरदासको कृष्ण-चरितसे यह उपकरण नहीं प्राप्त हो सका है। दूसरा कारण यह है कि तुलसीदासकी उपासना 'दास्यभाव'की है। जिससे आत्म-निवेदनमें भी प्रौढ़ता आ गयी है।

'विनय-पत्रिका'की रचनाके पदोंको नाविका भेदोंमें विभक्त किया जा सकता है:—

(१) दीनता—"कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भक्ति परिहरि तोरि॥"

(२) मानमर्दता—"[illegible] हरि! [illegible]।
जानत निज महिमा, मेरे अघ [illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]॥"

स्थित कर सके थे, अतः तुलसीकी भक्तिका आदर्श एक मौलिक प्रयास था। रहे सूरदास, उनकी उपासनाका दृष्टिकोण तुलसीदासकी उपासनाके दृष्टिकोणसे भिन्न था, उनकी (सूरकी) भक्ति सख्यभावके अन्तर्गत है और तुलसीकी भक्ति दास्यभावके अन्तर्गत। महात्मा सूरकी रचनामें संस्कृतकी कोमल-कान्त पदावली एवं अनुप्रासोंकी वह योजना नहीं है, जो तुलसीदासकी रचनामें पायी जाती है। आचार्य शुक्लजी लिखते हैं— "दोनों भक्त-शिरोमणियोंकी रचनामें यह भेद ध्यान देने योग्य है और इसपर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजीकी रचना अधिक गर्भित है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके पदोंमें [illegible] भाषाका माधुर्य नहीं है। उन्होंने दोनों प्रकारकी मधुरताका [illegible] अनूठा मिश्रण किया है।*

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजीके समकालीन कवियोंने भी पुष्टि [illegible] अवलम्बन कर भक्तिकी विवेचना की; परन्तु उनकी रचनाओंमें भावनाका समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पणकी भावनाकी व्यंजन[illegible] हो पायी है। इस विचारसे विनय-पत्रिका' हिन्दी-साहित्यमें अपन[illegible] मौलिक दृष्टिकोण उपस्थित करती है तुलसीदासकी इस रचनामें ([illegible] भावकी भक्तिमें) आत्माकी समग्र वृत्तियोंकी व्यंजना सफल रूपसे हु[illegible]

'विनय-पत्रिकामें कविने संगीतका आधार लिया है, हर्ष और [illegible] की भावनामें जयतश्री, केदारा, सोरठ तथा आसावरी; वीरकी भा[illegible] मारू और कान्हरा; शृङ्गारकी भावनामें ललित, गौरी, सूहो और [illegible] शान्तकी भावनामें रामकली, विभास, कल्याण, मलार और टो[illegible] रागिनीमें भा[illegible]

इस बातकी कि प्रभुकी अनन्त शक्तिकी भावना बाधित हो गई। इसी प्रकार एक दूसरा पद :—

'विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहि होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि बनसी-पद-अंकुस, परम-प्रेम-मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ॥"

कितनी अनूठी उक्तियाँ हैं। एक और पद देखिए :—

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध रिपु मारा ॥

\+ \+ \+

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा ॥
चिन्ता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥"

इस प्रकारकी उक्तियोंके अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। भक्तिरसके पदोंसे सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। आचार्य शुक्लजीके शब्दों में :—

"भक्ति-रसका पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिकामें देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्तिमें प्रेमके अतिरिक्त आलम्बनके महत्त्व और अपने दैन्यका अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसीके हृदयसे इन दोनों अनुभवोंके ऐसे निर्मल शब्द-स्रोत निकले हैं, जिनमें अवगाहन करनेसे मनकी मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।*

१२—तुलसीकी राम-कथाकी दार्शनिक पृष्ठभूमि (१)—राम-नामके विविध अर्थ—जितने हो बन दाशरथि रामको विष्णुका अवतार

*—देखिए 'विनय-पत्रिका' भ० वियोगीहरिजीकृत हरितोषिणी टीकाकी भूमिका पृ० १।

इस बातकी कि प्रभुकी अनन्त शक्तिकी भावना बाधित हो गई। इस प्रकार एक दूसरा पद :—

'विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी-पद-अंकुस, परम-प्रेम-मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥"

कितनी अनूठी उक्तियाँ हैं। एक और पद देखिए :—

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ प्रभु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध रिपु मारा॥
+ + +
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिन्ता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥"

इस प्रकारकी उक्तियोंके अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। भक्तिरसके पदोंसे सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। आचार्य शुक्लजीके शब्दों में :—

"भक्ति-रसका पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिकामें देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्तिमें प्रेमके अतिरिक्त आलम्बनके महत्व और अपने दैन्यका अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसीके हृदयसे इन दोनों अनुभवोंके ऐसे निर्मल शब्द स्रोत निकले हैं, जिनमें अवगाहन करनेसे मनकी मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।*

१२—तुलसीकी राम-कथाकी दार्शनिक पृष्ठभूमि (१)—राम-नामके विविध अर्थ—जितने ही बन दाशरथि रामको विष्णुका अवतार

*—देखिए 'विनय-पत्रिका' श्री वियोगीहरिजीकृत हरितोषिणी टीकाकी भूमिका पृ० १।

मानते हैं, कितने ही उन्हें परात्पर ब्रह्म और कितने ही जन उन्हें मर्याद पुरुषोत्तम कहते हैं तथा उन्हें ईश्वरका अवतार माननेसे इन्कार कर देते हैं। कहनेका तात्पर्य सबकी राय या मान्यता एक-सी नहीं है। अतः इसके निर्णयकी समस्या कठिन है। कठिन इसलिए है कि किसी एक निर्णय पर सब सहमत न होंगे। किसी भी निर्णयपर पहुँचनेके बाद भी प्रश्न-वाचक चिन्हका निवारण नहीं किया जा सकता। क्योंकि बहुतोंने प्राण-प्रणसे और शास्त्रीय-पद्धतिसे भी रामको परात्परब्रह्म, विष्णुका अवतार घोषित किया और प्रमाणित भी किया; किन्तु दूसरोंने इस मान्यताको तर्कों द्वारा खण्डित कर दिया। अतः इसके संबंधमें कुछ भी कहने और प्रमाणित करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब तक जो कुछ भी कहा और सुना गया वही पर्याप्त है। किन्तु इतना कह देनेसे भी काम नहीं चल सकता, यहाँपर इस वाद-विवादसे तटस्थ होकर 'राम' शब्दके सम्बन्धमें प्राचीन साहित्य और परम्परासे जो स्पष्ट है, उसपर विचार करना है, क्योंकि राम-कथाके लेखकोंने रामके जिस रूपकी कल्पना करके रचना की, उस भाव-भूमिपर हमें उतरना ही होगा और उन्हीं रचनाओंके दृष्टिकोणसे रामके उसी रूपको देखते हुए विचार करना होगा। राम ईश्वर थे या नहीं; यहाँपर इस प्रश्नके उत्तरकी आवश्यकता नहीं। यहाँ-पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि रामके व्यक्तित्वका मूल्यांकन किस प्रकार कवियोंने किया। उन कवियोंके दृष्टिकोण-विशेषके अनुसार ही रामके रहस्यपर प्रकाश डाला जाय, क्योंकि यहाँ यही प्रधान प्रश्न है।

तो, प्राचीन-साहित्यमें 'राम' शब्दके कितने अर्थ हुए? सर्वप्रथम अवतारवादकी भावना शतपथ-ब्राह्मणमें मिलती है। प्रारंभमें विष्णुकी अपेक्षा प्रजापतिको इस संबंधमें अधिक महत्व दिया जाता था। कुछ विद्वानोंके मतानुसार शतपथ ब्राह्मणसे ही प्रजा-पतिके मत्स्य (दे० १.८. १.१.); कूर्म (७.५.१.५. १४. १. २-११) के अवतार हुए थे। प्रजा-पतिके वाराह रूप धारण करनेकी कथा तैत्तरीय ब्राह्मण (१.१.३.५)

और काठक संहितामें भी (८. २) बीज रूपमें पायी जाती है।

'महाभारत'में मत्स्य ब्रह्माका अवतार माना गया है (दे० ३,१८७) किंतु कालांतरमें जब विष्णु श्रेष्ठ माने जाने लगे, तो मत्स्य, कूर्म और वाराह विष्णुके अवतार माने जाने लगे। शतपथ-ब्राह्मणमें—(१.२.५.५.)—वामनावतार प्रारम्भसे ही विष्णुका अवतार माना जाता है। कुछ विद्वान् इसे ऋग्वेदकी एक कथाका विकसित रूप मानते हैं—(दे० ऋ० १.२२.१७); शतपथ-ब्राह्मण (१. २. ५. १), तैत्तरीय आरण्यकके परिशिष्टमें (१०१.६) विष्णुके अवतार नृसिंहकी कथा उद्धृत है,।†

उपर्युक्त विवरणोंसे स्पष्ट है कि अवतारवाद बहुत प्राचीनकालसे ब्राह्मण-साहित्यमें माना जा चुका था। आगे चलकर कृष्णावतारके साथ-साथ अवतारवादके विकासमें विद्वानोंने महत्वपूर्ण परिवर्तन माना। वासुदेव कृष्ण भागवतोंके इष्टदेव थे, जिन्हें कुछ विद्वान् पहले विष्णुसे संबधित नहीं मानते थे। समय पाकर लगभग तीसरी शताब्दी ई० पूर्वसे वासुदेव कृष्ण और विष्णुकी अभिन्नताकी भावनाका उदय हुआ।*

बौद्धधर्म और भागवतका भक्ति-मार्ग, दोनोंको समान रूपसे ब्राह्मणोंके कर्मकाण्ड एवं यज्ञकी प्रधानताके प्रतिक्रियास्वरूप विकसित और पल्लवित मानते हुए अवतारवादके विकासको बौद्ध-धर्मका प्रभाव माना जाता है। विद्वानोंका अनुमान है कि बौद्ध-धर्म एवं भागवतके भक्ति-मार्गके प्रवर्तनने ब्राह्मणोंका धर्म-विषयमें एकाधिकार जब लुप्त हो गया, तब बौद्ध-धर्मका अधिक प्रचार देखकर ब्राह्मणोंने भागवतोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके उद्देश्यसे उनके देवता वासुदेव कृष्णको विष्णु-नारायणका अवतार मान लिया, जिसने अवतारवादको बड़ा प्रोत्साहन दिया और साथ ही साथ विष्णुकी महिमा बढ़ने लगी। इस प्रकार अवे-

---

† देखिए 'राम-कथा, पृ० १४४ रेवरेंड फादर कामिल बुल्के।

* देखिए 'रामकथा' पृ० १४४।

धीरे अवतारवादकी समस्त भावना विष्णु-नारायणमें केन्द्रित होने लगी और वैदिक-साहित्यके अन्य अवतारोंके कार्य विष्णुमें ही आरोपित किए गए। इधर जब अनेक शताब्दियोंसे रामका आदर्श भारतीय जनताके समक्ष प्रस्तुत था, तब रामायणकी लोकप्रियताके साथ-साथ रामका महत्व भी बढ़ता रहा, उनकी वीरताके वर्णनमें अलौकिकताका अंश भी बढ़ने लगा। रावण पाप और दुष्टताका प्रतीक बन गया; राम पुण्य तथा सदाचारके। अतः इस विकासकी स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्णकी भाँति राम भी विष्णुका अवतार माने जाने लगे। यद्यपि इस मान्यताका समय अभी तक विद्वानोंने निर्धारित नहीं किया है; किन्तु रामायणमें उत्तर-काण्डके अन्तर्गत वर्णित अवतारवाद-सम्बन्धी वर्णित सामग्रीके पहलेका इसे माना है।

प्राचीनतम पुराण—वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य और हरिवंश आदि—में अवतारोंके वर्णनमें रामका नाम आया है और उधर बौद्ध एवं जैन-साहित्यमें, रामकथाका जो वर्णन मिलता है, उसके अन्तर्गत बौद्धोंने ईस्वीके अनेक शताब्दियों पहले रामको बोधिसत्व मानकर और जैनियोंने अपने धर्ममें आठवें बलदेवके रूपमें मानकर उस समयके तीन प्रचलित धर्मोंमे एक निश्चित स्थान प्रदानकर रामके महत्वको बढ़ाया है।

भारतीय-भक्तिमार्गका बीजारोपण वेदोंमें ही हुआ था और उसका पल्लवन भागवत-धर्ममें हुआ। भागवतोंका भक्तिमार्ग भी बौद्ध एवं जैन धर्मोंके समान कर्मकाण्ड और यज्ञ-प्रधान ब्राह्मण-धर्मका प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न तो हुआ; किन्तु इसमें विशेषता यह थी कि वेदोंकी निन्दाको इसमें स्थान नहीं मिला। आगे चलकर ब्राह्मण-धर्म और भागवत-धर्मका समन्वय हुआ, जिसके फल-स्वरूप वैष्णव-धर्मकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसमें प्राचीन वैदिक देवता विष्णु भागवतोंके देवता वासुदेव कृष्णके अवतार माने गए और भक्ति-भावना इन्हीं विष्णु-नारायण वासुदेवकृष्णमे केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होती गयी। विष्णुके दूसरे अवतार

भी माने जाने लगे, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रामावतार ही हुआ।*

यद्यपि कुछ विद्वान् राम-भक्तिकी परम्पराके सम्बन्धमें यह मानते हैं कि ईस्वी सन्‌के प्रारंभसे राम विष्णुके अवतार माने जाते हैं, किन्तु उनकी विशेष रूपसे प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग प्रारम्भ हुई तथा राम और राधाकी एकांतिक पूजा जिन वैष्णव-संहिताओंमें प्रतिपादित की गयी; वे अर्वाचीन हैं और पंचरात्रके प्रामाणिक साहित्यके अनुकरणसे उत्पन्न हुई हैं।†

परन्तु भक्ति-परम्पराके मूलस्रोतका अस्तित्व वैदिक-साहित्य तकमें भी ढूँढा जाता है और किसी प्रारम्भिक रूपका पता मोहेञ्जोदड़ोके भग्नावशेषोंके भी आधारपर माना जाता है।‡ "भक्ती द्राविड़ ऊपजी" के अनुसार कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि राम-भक्तिका आविर्भाव दक्षिण भारतमें ही हुआ था।

वैष्णव संहिताओं और उपनिषदोंमें भी राम-भक्ति और राम-पूजाका शास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि सायणके अनुसार 'राम' का अर्थ 'रमणीय पुत्र' है—(राम-कथा पृ० ४) किन्तु श्रीरामपूर्वतापनीयो-पनिषदने 'राम' शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है—ॐ सच्चिदानन्द-मय महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुलमें दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'जो महीतलपर स्थित होकर भक्तजनोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजाके रूपमें सुशोभित होते हैं, वे राम हैं'—ऐसा विद्वानोंने लोकमें

---

* देखिए 'राम-कथा' पृ० १४६।

† सर रामकृष्ण भंडारकर और डा० मजूमदार मत (राम-कथासे उद्धृत) पृ० १५०।

‡ देखिए "भारतीय-साहित्यकी सांस्कृतिक रेखाएँ" परशुराम चतुर्वेदी कृत पृ० २।

'राम' शब्दका अर्थ व्यक्त किया है। ("राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः"—इस विग्रहके अनुसार 'राति' या 'राजते'का प्रथम अक्षर 'रा' और 'महीस्थितः' का आदिम अक्षर 'म' लेकर 'राम' बनता है; इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।) राक्षस जिनके द्वारा मरणको प्राप्त होते हैं, वे राम हैं। अथवा अपने ही उत्कर्षसे इस भूतलपर उनका 'राम' नाम विख्यात हो गया (इसकी प्रसिद्धिमें कोई व्युत्पत्तिजनित अर्थ ही कारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिए) अथवा वे अभिराम (सबके मनको रमानेवाले) होनेसे राम हैं अथवा जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा) को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसोंको मनुष्य रूपसे प्रभाहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं। अथवा वे राज्य पानेके अधिकारी महिपालोंको अपने आदर्श-चरित्रके द्वारा धर्ममार्गका उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करनेपर ज्ञानमार्गकी प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करनेपर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रहकी पूजा करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; इसलिए भूतलपर उनका नाम 'राम' नाम पड़ा होगा। परन्तु यथार्थ बात तो यह है कि *उस अनन्त, नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्ममें योगीजन रमण* करते हैं; इसलिए यह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पदके द्वारा प्रतिपादित होता है ॥ १-६ ॥"*

इसके अतिरिक्त श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्के द्वितीय खण्डमें भगवान्‌के स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है और राम-नामकी व्याख्या की गयी है। जो इस प्रकार है:—

"भगवान् किसी कारणकी अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्य विद्यमान रहते हैं, इसलिए 'स्वयम्' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप है; अतः वे ज्योतिर्मय हैं। [illegible] गुण भी व अनन्त हैं—देश, काल और वस्तुकी सीमासे परे हैं। अतः अपरिच्छिन्न

* कल्याण—उपनिषद् अंक—गीताप्रेस, गोरखपुर पृ० ५३१।

करनेवाली दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपनेसे ही प्रकाशित होते हैं। वे ही अपनी चैतन्यशक्तिसे सबके भीतर जीवन रूपसे प्रतिष्ठित होते हैं, तथा तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और संहारके कारण बनते हैं; ऐसा होनेसे ही यह जगत् सदा प्रतीतिगोचर होता है। यह जो कुछ दिखाई देता है, सब ॐकार है—परमात्मा-स्वरूप है। जैसे प्राकृत वटका महान् वृक्ष वटके छोटेसे बीजमें स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् राम-बीजमें स्थित है ('राम' ही रामबीज है।) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीन मूर्तियाँ 'राम'—के रकारपर आरूढ हैं तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहारकी त्रिविध शक्तियाँ अथवा बिन्दु, नाद और बीजसे प्रकट होनेवाली रौद्री, ज्येष्ठा और वामा—ये त्रिविध शक्तियाँ भी वहीं स्थित हैं। ('राम'का अक्षर-विभाग इस प्रकार है—र, आ, अ, और म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीरामका वाचक है तथा उसपर आरूढ़ जो 'आ', 'अ' और 'म्' हैं, वे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन देवोंके और उपर्युक्त त्रिविध शक्तियोंके वाचक हैं।) इस बीज-मन्त्रमें प्रकृति-पुरुष रूप सीता तथा राम पूजनीय हैं। इन्हीं दोनोंसे

और 'श्रीरामरहस्य' दो अन्य उपनिषद् भी हैं जिनमें राम-मंत्र, राम और सीता-मंत्र आदिका उल्लेख है और जिसमें राम परम पुरुष सीता मूल प्रकृति मानी जाती है।

(२) राम और विष्णुका रहस्य—जिस राम-भक्तिका प्र भारतवर्षमें हुआ, वह वैष्णव-धर्मसे निकली। वैष्णव-धर्मका आदि विष्णुके देवत्वमें और उसकी प्रधानतामें मिलता है। विष्णु हिन्दुओं वेदकालीन प्रमुख देवता हैं।† विष्णु—'विश' धातुमें व्याप्त होनेके अर्थ आता है विष्णुमें संरक्षण एवं व्याप्त होनेकी भावना प्रमुख है। आ चलकर आचार्यों और कवियों द्वारा इस भावनाने सामान्य जनतामें प्रचार पाया। शतपथब्राह्मणमें तो विष्णु यज्ञ-रूप होकर (वामन रूपसे असुरसे समग्र पृथ्वी प्राप्त कर लेते हैं और ऐतरेय ब्राह्मणमें विष्णु सर्व श्रेष्ठ देवता माने गये हैं। अग्निका स्थान सबसे छोटा है तथा दूसरे देवताओंका स्तर विष्णु और अग्निके मध्यका है:—

> अग्निर् वै देवानाम् अवमो। विष्णुः परमम्।
> तदन्तरेण सर्वाः अन्याः देवताः॥—ऐतरेय ब्राह्मण—१,१।

वाल्मीकि रामायणमें भी विष्णुका विशेष महत्व है।

महाराज दशरथके द्वारा जब पुत्रेष्टि-यज्ञमें अपना यज्ञ-भाग लेनेके लिए सब देवता एकत्र हुए और सबसे अन्तमें—

> एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
> शङ्ख चक्र गदा पाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥१४॥
> —वा० रा० बालकाण्ड पंचदशः सर्ग।

अर्थात् "इतने होमें शंख, चक्र, गदा और पीताम्बर धारण किए महातेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु वहाँ आए।"

---

† ऋग्वेदमें वर्णन आता है—"अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ १६॥ आदि

रत्नालंकारोंसे सुशोभित हैं। कभी ये लक्ष्मीके साथ कमलपर बैठते हैं, कभी ये सर्प-शय्यापर विश्राम करते हैं और कभी ये गरुड़पर गमन करते हैं। संसारमें माने जानेवाले सभी देवताओंसे वैष्णव-धर्म केवल विष्णुको ही परमेशके रूपमें मानता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी त्रिमूर्तिसे भी परे विष्णु ब्रह्मके आदि रूप हैं। इसीमें वैष्णव-धर्मकी चरम भावना है।

विष्णुके अवतार राम और श्रीकृष्णको आगे चलकर आचार्योंने विशेष महत्व दिया। अनन्तकालसे आते हुए विष्णुकी श्रेष्ठताके विचारमें स्वामी शंकराचार्यके पश्चात् होनेवाले आचार्योंने (राम और कृष्णकी श्रेष्ठतामें)बहुत बड़ा जोर दिया स्वामी शंकराचार्यके सम्पर्कमें जब वैष्णव धर्म आया तब अपनी भक्तिके आदर्शके कारण उसे आचार्य शंकरके मायावादसे बड़ा संघर्ष करना पड़ा, जिसका पल्लवित रूप ग्यारहवीं शताब्दीमें जब स्वामी रामानुजाचार्य हुए, तब उनके श्री सम्प्रदायमें देखनेको मिलता है। आगे चलकर स्वामी निम्बार्काचार्यने विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्णकी परम्परासे आती हुई भक्ति और श्रेष्ठतामें योग दिया। इसी प्रकार मध्वाचार्यने भी इस विचारधाराको और भी पुष्ट किया। स्वामी रामानन्दजीने भी अनन्तकालसे आई हुई राम-भक्ति और उसकी श्रेष्ठताको विचारधारापर बल दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अनन्तकालसे आती हुई राम-भक्ति यद्यपि विभिन्न मनीषियोंके द्वारा श्रेष्ठ पदको प्राप्त कर चुकी थी, किन्तु रामभक्तिका विशेष प्रचार स्वामी रामानन्दजीने किया। कालान्तरमें यही राम-भक्ति गोस्वामी तुलसीदासके द्वारा अपनी उन्नतिकी चरम सीमाको स्पर्श करने लगी। गोस्वामी तुलसीदासके रामके महत्वका विचार यहाँ कर लेना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि आर्षकालीन ग्रन्थोंमें रामका जो महत्व है, तुलसीदासके रामका महत्व उससे भी बढ़कर है। मनु और शतरूपाके घोर तप करनेपर उन्होंने उनसे कहलाया है :—

दासजी 'परमप्रभु' कहते हैं। महाराज मनुके ऐसा कहनेपर 'परमप्रभु' उनके समक्ष प्रकट हुए, जिनका रूप है :—

"नील सरोरुह नीलमनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥

+ + +

पद-राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनिमन मधुप बसत जिन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

उपर्युक्त विवरणमें रामका वर्णन ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे भिन्न परमसत्ताका है। इस प्रकारका वर्णन 'मानस' में स्थान-स्थानपर और भी हुआ है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

"जग-पेखन तुम्ह देखनहारे। बिधि हरि संभु नचावन हारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥"

काकभुशुण्डिके मनमें जब सन्देह हुआ :—

"प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह॥"

तब—"एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥

+ + +

मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड-निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक तें एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडुगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि-सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥

"हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकलकाम दायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई॥
बिष्नु कोटि सम पालनकर्त्ता। रुद्रकोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥"

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि राम ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे बहुत ऊँचे परात्पर ब्रह्म हैं।

(३) दार्शनिक-भावना—यद्यपि हिन्दू-जनतामें अत्यन्त प्राचीन-कालसे अवतारकी भावना चली आ रही है; किन्तु जब अद्वैतवादके प्रतिपादक स्वामी शंकराचार्यने ब्रह्मकी जिस व्यावहारिक सगुण-सत्ताको स्वीकार किया, वह स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा सं० १०७३ में सम्प्रदायके घेरेमें प्रतिष्ठित हुई, अर्थात् राम-भक्तिने संप्रदायका रूप ग्रहण किया। इस समय रामानुजके 'श्री' सम्प्रदायमें विष्णु या नारायणकी उपासनाका विधान हुआ। आगे चलकर इस सम्प्रदायमें उच्चकोटिके सन्त हुए। विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें वैष्णव 'श्री' सम्प्रदायके प्रधानाचार्य राघवानन्दजी हुए, जो काशीमें रहते थे, उन्होंने रामानन्दजीको दीक्षा दी। दीक्षा ग्रहण करनेके उपरान्त श्रीरामानन्दजीने समग्र भारतका पर्यटन कर इस सम्प्रदायका प्रचार किया, जिसमें उन्हें उत्तर-भारतमें विशेष सफलता प्राप्त हुई। इस सम्प्रदायमें श्रीरामानन्दजीने जाँति-पाँतिका प्रतिबन्ध न रखा, इसलिए यह सम्प्रदाय सर्वसाधारणके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

श्रीरामानन्दजीने श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायमें दीक्षित होकर भी अपनी उपासना-पद्धति भिन्न रखी, अर्थात् उपासनाके निमित्त वैकुण्ठ-निवासी विष्णुका स्वरूप न ग्रहणकर दाशरथि राम (जो राम विष्णुके अवतार हैं) का ही आश्रय ग्रहण किया। इनके राम इष्टदेव हुए और राम-नाम मूलमंत्र हुआ। यद्यपि इनके पूर्व भी रामकी भक्ति प्रचलित

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकलकाम दायक भगवाना।
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई।
बिष्नु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्रकोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥"

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि राम ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे बहुत ऊँचे परात्पर ब्रह्म हैं।

(३) दार्शनिक-भावना—यद्यपि हिन्दू-जनतामें अत्यन्त प्राचीन-कालसे अवतारकी भावना चली आ रही है; किन्तु जब अद्वैतवादके प्रतिपादक स्वामी शंकराचार्यने ब्रह्मकी सिर्फ व्यावहारिक सगुण-सत्ताको स्वीकार किया, वह स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा सं० १०७३ में सम्प्रदायके घेरेमें प्रतिष्ठित हुई, अर्थात् राम-भक्तिने संप्रदायका रूप ग्रहण किया। इस समय रामानुजके 'श्री' सम्प्रदायमें विष्णु या नारायणकी उपासनाका विधान हुआ। आगे चलकर इस सम्प्रदायमें उच्चकोटिके सन्त हुए। विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें वैष्णव 'श्री' सम्प्रदायके प्रधानाचार्य राघवानन्दजी हुए, जो काशीमें रहते थे, उन्होंने रामानन्दजीको दीक्षा दी। दीक्षा ग्रहण करनेके उपरान्त श्रीरामानन्दजीने समग्र भारतका पर्यटन कर इस सम्प्रदायका प्रचार किया, जिसमें उन्हें उत्तर-भारतमें विशेष सफलता प्राप्त हुई। इस सम्प्रदायमें श्रीरामानन्दजीने जाँति-पाँतिका प्रतिबन्ध न रखा, इसलिए यह सम्प्रदाय सर्वसाधारणके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

श्रीरामानन्दजीने श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायमें दीक्षित होकर भी अपनी उपासना-पद्धति भिन्न र [illegible] एठ-
निवासी विष्णुका स्वरूप
अवतार हैं) का ही आश्र
-राम-नाम मूलमंत्र हु

वदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै॥
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।"

'विनय-पत्रिका'के इस पदके अनुसार तुलसीदासजी आचार्य शंकरके अद्वैतवादको मानते हुए भी उसे 'भ्रम' मानते थे। इसके अतिरिक्त 'मानस'में जहाँ तुलसीदासने घटना-प्रसंगमें भी दर्शनका पुट दे दिया है, वहाँ दर्शनका व्यापक और परिमार्जित रूप देखनेको मिलता है। बाल-काण्डमें जहाँ उन्होंने ईश्वर-भक्तिका निरूपण किया है, अपने दार्शनिक विचारोंका आभास दे दिया है। इसी प्रकार लक्ष्मण-निषाद-सम्वाद, राम-नारद-सम्वाद, वर्षा-शरद-वर्णन, राम-लक्ष्मण-संवाद, गरुड़ और काकभुशुण्डि-संवादमें गोस्वामीजीने अपनी दार्शनिक विचार-धाराका परिचय दे दिया है। तुलसीदासने रामको ही पूर्ण ब्रह्म माना है। 'बिधि हरिहर बंदित पद-रेनू।' 'बिधि हरि संभु नचावनिहारे' आदिके जो वर्णन अनेक बार आये हैं, वे अद्वैतवादी ब्रह्मके ही विशेषण हैं। इस अद्वैतवादकी व्याख्यामें मायाके लिए भी स्थान है, जिसका वर्णन स्थान-स्थानपर गोस्वामीजीने किया है। इनके वैष्णव होनेमें तो कोई संदेह है ही नहीं, अतः ये अवतारवादी भी माने जायँगे। क्योंकि 'मानस'में अपने इष्टदेवको अद्वैतवादके शब्दोंमें व्यक्त करते हुए भी उसे गोस्वामीजीने विशिष्टाद्वैतके गुणोंसे विभूषित कर दिया है:—

'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥'

जहाँ तुलसीदास अपने ब्रह्मको अद्वैतवादके अन्तर्गत यह दिखाते हैं कि:—

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"
"नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥"

जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ॥"

अर्थात् गोस्वामीजीने अद्वैतवादके अन्तर्गत विशिष्टाद्वैतकी सृष्टि कर दी है। 'मानस'के समग्र अवतरणोंसे पता चलता है कि तुलसीदास अद्वैतवादको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते तो हैं; किन्तु वे अनुयायी थे, विशिष्टाद्वैतके ही। आचार्य शुक्लजीके शब्दोंमें :—

'साम्प्रदायिक-दृष्टिसे तो वे रामानुजाचार्यके अनुयायी थे, जिनका निरूपित सिद्धान्त भक्तोंकी उपासनाके अनुकूल दिखायी पड़ा।'

गोस्वामीजीने ब्रह्मको व्यापक दिखानेके लिए अद्वैतवादका रूप अवश्य अपनाया और उसे मायासे समन्वित भी किया, किन्तु भक्त होनेके नाते भक्तिका अवलम्ब ग्रहण कर उन्होंने ब्रह्मको विशिष्टाद्वैतके द्वारा ही निरूपित किया है। यही कारण था, जहाँ कहीं भी उन्होंने अद्वैतवादके अन्तर्गत ब्रह्मका निरूपण किया है, वहीं उसे उन्होंने भक्ति-मार्गका आराध्य भी माना है।

लक्ष्मणके पूछनेपर :—

"ईस्वर जीवहिं भेद प्रभु, कहहु सकल समुझाइ।
जातें होइ चरन-रति, सोक मोह भ्रम जाइ॥"

भगवान् राम उत्तर देते हैं।—

"माया ईस न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥"

"जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥"

'मानस' में गोस्वामीजी ब्रह्म रामको (अद्वैतवादरूपमें मानते हुए भी) विशिष्टाद्वैतवादके अन्तर्गत ही निरूपित करते हैं—१—पर-रूप, २—व्यूह-रूप, ३—विभव-रूप, ४—अन्तर्यामी-रूप और ५—अर्चावतार रूप; ये पाँच कोटियाँ विशिष्टाद्वैतवाद की हैं, जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार से है :—

१—पर-रूप—जिसके अनुसार यह रूप वासुदेव-स्वरूप है। यह परमानन्दमय और अनन्त है। 'मुक्त' तथा 'नित्य' जीव उसीमें लीन हैं; यह ऐश्वर्य, तेज, ज्ञान, वीर्य और बल आदि षड्गुण्य विग्रहरूप है। रामको यही रूप दिया गया है, उनके प्रत्येक कार्यपर देवता जो नित्य जीव हैं, फूल बरसाते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, इसका वर्णन यत्र-तत्र 'मानस'में मिलता है।

"व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसिल्या के गोद॥"

२—व्यूहरूप—यह स्वरूप विश्वकी सृष्टि तथा लयके हेतु है। षड्गुण्य विग्रहमेंसे मात्र दो गुण ही स्पष्ट होते हैं, वे छः गुणोंमेंसे चाहे ज्ञान और बल हों, चाहे ऐश्वर्य और वीर्य, चाहे शक्ति या तेज हों। 'मानस'में इसका निरूपण इस प्रकार है :—

"जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥"

३—विभव-रूप—इसके अन्तर्गत विष्णुके अवतार मुख्य हैं, वास्तवमें यह रूप नर-लीलाके लिए होता है, 'मानस'में इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा॥
अंसन सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निरभय होहु देव - समुदाई॥"
निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोच्छ सब त्यागि॥"

(४) अन्तर्यामी-रूप—इसके अनुसार ईश्वर समस्त संसारकी गतिसे अवगत रहता है। वह जीवोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट कर उनका नियमन करता रहता है। इसी रूपमें श्रीरामचन्द्रजीने अवतारके रहस्योंको सुलझाया है। 'मानस'में स्थान-स्थानपर इसका संकेत मिलता है :—

"तुम सर्वग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥"
"तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर-काज सवाँरन॥"

(५) अर्चावतार-रूप—इसके अनुसार ब्रह्मका स्वरूप भक्तके हृदयमें अधिष्ठित होता है, वे जिस रूपसे ब्रह्मको चाहते हैं, वह उसी रूप में उन्हें प्राप्त होता है। 'मानस'में इसका उदाहरण देखिए :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसु लीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरि-पद पावहि ते न परहिं भव-कूपा॥"

अद्वैतवादको माननेपर भी विशिष्टाद्वैतवादके पोषक महात्मा तुलसीदासने 'मानस'में भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि उनके सम्प्रदायके विचार विशिष्टाद्वैतवादसे अधिक प्रभावित हैं। राम-जन्मके प्रसङ्गमें माता कौशल्या द्वारा जो स्तुति करायी गयी है, वह पूर्णरूपसे विशिष्टाद्वैतवादके अन्तर्गत मानी जायगी। स्तुतिकी पृष्ठ-भूमि एवं रूप-चित्रण :—

"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिन्धु खरारी॥"

इसके पश्चात् १—पर-रूपका संकेत :—

"कह दुहुँ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥

२—व्यूह-रूपका संकेत :—

"करुना-सुख-सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति-संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

३—विभव-रूपका संकेत :—

"ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।

मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥"

४—अन्तर्यामी-रूपका संकेत :—

"उपजा जब ग्याना प्रभु मुसकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥"

५—अर्चावतार-रूपका संकेत :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥"

बिप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार ॥"

गोस्वामीजीने धार्मिक-सिद्धान्तोंमें अति सहिष्णु होनेके कारण अद्वैत-वाद-विशिष्टाद्वैतवादका विरोध दूर करनेके उद्देश्यसे रामके व्यक्तित्वमें दोनों वादोंका समन्वय कर दिया है। तुलसीदासके पहले 'अध्यात्म-रामायण'में सारी राम-कथा अद्वैतवादकी भावनाके अन्तर्गत वर्णित है और गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस'का प्रधान आधार-ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण'को बनाया था, अतः 'मानस'में स्थान-स्थानपर उसकी दार्श-निक भावनाओंकी स्वतः छाप पड़ी हुई है, किन्तु यह समन्वय अन्यकी रक्षा करनेके कारण कि :—

होकर 'गीतावली', 'कृष्ण-गीतावली' 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिका' की रचना उन्होंने ब्रजभाषामें भी की।

अवधी एवं ब्रजभाषाके अतिरिक्त गोस्वामीजीने अन्य भाषाओंके शब्दोंको भी अपनी कृतियोंमें अपनाया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

(१) भोजपुरी भाषाका प्रयोग—

'राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।

\+ \+ \+

हमहि दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे॥

\+ \+ \+

मन्द बिलंद अमेरा दलकन पाइअ दुख झकझोरा रे॥'

"खोटो खरो रावरो हौं रावरी सौं, रावरे सों,

झूठ क्यों कहौंगो? जानौ सबही के मनकी।"

—'विनय-पत्रिका'

'बठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल।'

'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।'

'धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

—'मानस'

उपर्युक्त अवतरणोंके 'दिहल', 'रावरे' 'मरायल' 'धायल' 'तहँवा' और 'जहँवा' आदि शब्द भोजपुरी भाषाके प्रभावके सूचक हैं।

(२) बुन्देलखण्डी भाषाका प्रयोग—

"ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुनामई।

अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो कई॥

\+ \+ \+

"परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।

तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी॥"

"श्रंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे॥"
'सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं।'

—'राम-चरित-मानस'

उपर्युक्त अवतरणोंमें 'दाख'=देखा, 'बैसा'=बैठा, बैसे'=बैठे और खटाहिं=निभना आदि बंगलाके शब्दोंके प्रयोग हैं। जिनका हिन्दीके शब्दोंके साथ सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(५) गुजराती भाषाका प्रयोग—

"का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयनके भोरें॥'
'इन्ह सम काहु न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥'

—'राम-चरित-मान

तबि साथ भो दास रघुपति को दसरथ को दानि दया-दरिया॥'
"पाशौ हेरो दूबको परेहु चूक मूकिए,
न टूक कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए।"

—'कवितावली'

"सुनि खग कहत अब मौगी रहि समुझि प्रेम-पथ न्यारो।'

'गीतावल

उपर्युक्त अवतरणोंमें—
'जून' 'लाधे' 'दरिया' और मौगी' आदि क्रमशः 'जीर्ण' 'प्राप्त किया' 'समुद्र' और 'मौन' के अर्थमें (गुजराती शब्दोंका) प्रयोग हुआ है।

(६) राजस्थानी भाषाका प्रयोग—

"तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥"
"एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल॥"
"मिला आइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥"

—'मानस'

'वेऽपि', 'पश्यन्ति' 'यं' और सोऽपिके ही विकृत रूप हैं—

(६) प्राकृत और अपभ्रंशका प्रयोग—

'खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥"

—'मानस'

"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्रसर।

दिग्गयन्द लरखरत परत दसकण्ठ मुक्खभर॥"

"मानो प्रयच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।"

आदि उदाहरण दिए जा सकते हैं। —'कवितावली'

गोस्वामीजीके पूर्व 'भाषा' में जो रचना की जाती थी, वह आदर-हीन रचना समझी जाती थी। इसका संकेत स्वयं कविके ही शब्दोंमें मिलता है :—

"भाषा भनित मोर मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

किन्तु 'भाषा'में राम-कथाकी रचना कर इन्होंने इसका बड़ा ही महत्त्व बढ़ाया है। 'भाषा' रचना करनेके कारण गोस्वामीजीने संस्कृतके तत्सम शब्दोंको भी तद्भव कर सरल बना दिया है। इस प्रणालीके अनुसार तुलसीदासकी रचनाकी वर्णमाला निम्नांकित होगी :—

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं।

व्यंजन—क, ख, प्रायः 'ष' के रूप में इसका प्रयोग किया गया है।

ग, घ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, ष, स, ह, ड़, और, ढ़, हैं।

१४—भाषा-संबंधी अन्य विचार—तुलसीकी काव्यगत भाषाका विचार वैज्ञानिक, शास्त्रीय और भावात्मक-दृष्टिकोणसे पूर्ण संतुलित है, यहाँ कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भाषा-सम्बन्धी विचारके अन्तर्गत भाषा-विज्ञान और व्याकरण आता है, जिसके अन्तर्गत विविध बोलियोंके रूपोंकी छान-बीन, व्याकरणीय विशिष्टताओंका विश्लेषण, संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, विभक्ति तथा

'इइ', 'ई', 'इहि' 'ई' 'ही' रूप बन जाता है—'इइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।'—'मानस'।

२—कुछ शब्दोंमें आरम्भ या बीचके किसी व्यंजनके साथ लगे हुए 'अ' के स्थानमें 'उ' किया गया है; जैसे 'शिशिपा', 'अञ्जलि' और 'सफल' आदिमें गोस्वामीजीने 'सिमुपा', 'अंजुलि' और 'सुफल' बनाकर व्यवहृत किया है।

३—कुछ शब्दोंमें पूर्व उच्चारणकी सरलताके हेतु 'अ' जोड़ दिया गया है; जैसे 'स्तुति', 'स्नान', 'स्थान' आदिमें 'अस्तुति', 'अस्तुति', 'अस्नान' और 'अस्थान' कर दिया है।

४—अकारान्त स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा शब्दोंके पीछे कहीं-कहीं 'ई' भी जोड़ दी गयी है। जैसे 'प्रभुता', 'सजा', 'रजा' और मनोहरता' आदिको 'प्रभुताई', 'सजाई' और 'मनोहरताई' आदि रूप दिया गया है।

५—संयुक्ताक्षरोंके अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले दीर्घ स्वरोंको प्रायः ह्रस्व कर दिया गया है। जैसे—'आज्ञा', 'मुनीन्द्र', 'दीक्षा', 'परीक्षा' आदिको 'अग्या', 'मुनिन्दा', 'दिच्छा' और 'परिच्छा' आदि रूपोंमें प्रयुक्त किया गया है।

६—उकारादि शब्दोंमें आदिके 'उ' के स्थानमें कहीं-कहीं 'हु' कर दिया गया है, जैसे 'उल्लास' शब्दको 'हुलास' बना दिया गया है।

७—शब्दोंके आदि, अन्त और मध्यमें आनेवाले उकारान्त व्यंजनोंको कहीं-कहीं अकारान्त कर दिया गया है जैसे 'गुरु', 'दयालु', 'कृपालु', 'उडुगण', 'भीरु', 'कुधातु', 'तनु', 'कुपुत्र', 'अनुरूप', 'अनुकूल' आदि शब्दोंका रूप 'गुर', 'दयाल','उडगन','भीर','कुधात', 'तन', 'कपूत', 'अनरूप' और 'अनुकूल' किया गया है।

८—कहीं-कहीं शब्दके आदि 'अ' को वहाँसे हटाकर उसके आगेके व्यंजनके साथ जोड़ दिया गया है और कहीं-कहीं इसके विपरीत आदिके

'क' के आगे 'त' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'क' का लोप हो जाता है और उसका पूर्ववर्त्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ हो जाता है—जैसे 'रक्त' (अनुरक्त) से 'राता' और 'रिक्त' से 'रीता' (खाली) बन गया।

१३—'क्ष' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है, जैसे 'दक्षिण' से 'दहिन'। इसी प्रकार पदान्तके 'क्ष' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ख' और कहीं 'छ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'लक्ष' का लाख' 'अक्षि' का 'आँखि' 'मक्षी' का 'माखी' और 'ऋक्ष' का 'रीछ' हो गया है। इसी प्रकार 'ख' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ह' हो गया है, जैसे 'मुख' से 'मुँह'।

१४—पदान्त के 'ग' और 'ज' का लोप कर कहीं-कहीं उसके साथ का स्वरमात्र ही प्रयुक्त हुआ है, जैसे—संजोगु'के स्थानपर 'सँजोऊ' 'समाजु' के स्थान पर 'समाउ' 'आम्रराजि' का 'अँवराई' और 'राजु' का 'राउ' आदि। शब्दोंके बीचवाले 'ग' के स्थानपर 'य' का प्रयोग हुआ है, जैसे-'मृगांक' के स्थानपर 'मयंक'।

१५—'ग'के आगे 'ध' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'ग' का का लोप हो जाता है और कहीं-कहीं दोनोंके स्थानमें 'ढ़' एकरूप हो जाता है। दोनों ही स्थलोंमें पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया गया है, जैसे 'दुग्ध' का 'दूध' तथा दग्धका 'दाढ़ा'।

१६—'ग' के साथ 'न'का संयोग होनेपर कहीं-कहीं 'न' का विकल्प-से लोप होकर पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ कर दिया गया है, जैसे—'अग्नि' से 'आगि' और जहाँ लोप नहीं होता, वहाँ बीचमें 'इ' का आगम होकर 'अगिनि' हो गया है। 'घ' के स्थानमें कहीं-कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है जैसे 'श्लाघ्' से 'सराहना' और इसके विपरीत 'ह' से 'घ' का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—'सिंह' से 'सिंघ' 'सिंहासन' से 'सिंघासन', 'सिंहल' से 'सिंघल' तथा 'नहुष' से 'नघुष'।

१७—कहीं-कहीं 'च' के स्थानमें शब्दोंके बीच 'य' का प्रयोग किया

गया है; जैसे—'लोचन' से 'लोयन' 'बचन' से 'बयन' या बैन; 'ज' के स्थान में 'य' का प्रयोग; जैसे—'राज' का 'राय', 'गज' का 'गय' और 'गजेन्द्र' का 'गयंद' आदि।

१८—'ज्ञ' के स्थानमें कहीं 'ज' और कहीं 'य' कर दिया गया है, जैसे—'ज्ञान' से 'जान' और 'सज्ञान' से 'सयान' इसी प्रकार 'अज्ञान' से 'अयान'। पदान्तके 'ज्ञ' के स्थानमें कहीं-कहीं 'न' हो गया है; जैसे—'राज्ञी' से 'रानी'। पदान्तके 'च' के पूर्व 'ञ' का और 'त' के पूर्व 'न' का संयोग होने पर 'ञ' और 'न' लोपकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ तथा सानुनासिक कर दिया गया है; जैसे—'पञ्च' का 'पाँच' और 'दन्त' का 'दाँत'।

१९—पदान्त के 'ट' के स्थानपर कहीं-कहीं 'र' हो गया है—'ललाट' का 'लिलार' 'कोटि' का 'कोरि' 'कटु' का 'करु' 'उत्पाट' से 'उपार' 'पुष्पवाटी' से 'फुलवारी'। कहीं-कहीं 'ज' के स्थान पर 'द' का प्रयोग हुआ है। जैसे—'कागज' से 'कागद'। पदान्त के 'ठ' के स्थान पर 'ढ' का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया गया है; जैसे—'पठ्' से पढ़ना' 'ष' के साथ संयोग होने पर 'ठ' के स्थान पर 'ट' का प्रयोग; जैसे—'वसिष्ठ' के स्थानपर 'बसिष्ट', 'विष्ठा' के स्थानपर 'बिष्टा', 'कुष्ठ' का 'कुष्ट' 'तिष्ठति' का 'तिष्टइ' और 'पापिष्ठ' का 'पापिष्ट'।

२०—हलन्त शब्दोंको अकारान्तके रूपमें प्रयुक्त किया गया है, जैसे—'राजन्' के स्थान पर 'राजन', 'पूषन्' से 'पूषन' 'महत्' 'महत', 'उपनिषद्' से 'उपनिषद' इसी प्रकार 'मूर्तिमत्' से मूरतिमंत' 'हिमवत्' से 'हिमवंत' आदि।

२१—शब्दोंके आदि अथवा अन्तके 'ह' का कहीं-कहीं लोप होकर उसके साथका स्वर मात्र शेष रह जाता है; जैसे—'मोहा' के स्थानपर 'मोई' (मोहित हुई) तथा 'छुह-छुह' के स्थानपर 'छि-छुइ' शब्दोंका प्रयोग हुआ है।

२२—शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'बीस' के स्थान पर 'बीह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह','केसरी' से 'केहरी', 'एष' से 'एह' और 'निष्काम' से 'निष्काम' आदि।

२३—किसी-किसी शब्दके पूर्व छन्दके अनुरोधसे 'स' जोड़ा गया है; जैसे—अवकाश', 'चकित', 'चर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेउ' आदि में' 'सावकाश', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेउ' आदि। कहीं-कहीं 'स्' के साथ 'थ' का संयोग होनेपर 'स्' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहि', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति, 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'बच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग' 'उत्साह' से 'उछाह' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होनेपर दोनोंके स्थानमें एक रूपसे 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' आदि।

२४—शब्दोंके आरम्भ, मध्य अथवा अन्तमें 'ष' के स्थानमें कहीं-कहीं 'स' कर दिया गया है; जैसे—'पष्ठि' से 'साटि', 'तुषार' से 'तुसार', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से 'दोस', 'मनुष्यता' से 'मनुसाई' कहीं-कहीं शब्दोंके आरम्भमें 'ष' को 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'षट्' से 'छह'। 'ष' के साथ 'ट' अथवा 'ठ' का संयोग होनेपर दोनों स्थानोंमें एक रूप 'ठ' कर दिया गया है और पूर्ववर्ती स्वरको दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'दृष्ट' से 'दीठा', 'अष्ट' से 'आठ', 'मुष्टि' से 'मूठी' और 'पृष्ठ' से 'पीठि' आदि।

२५—'व' के प्रथम किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर 'व' के स्थानमें कहीं-कहीं और 'उ'

से 'सुभाऊ' 'त्वरित' से 'तुरित' 'त्वरावती' से 'तोरावति'। कहीं-कहीं ऐसे स्थानोंमें 'व' का लोप भी कर दिया गया है, जैसे—'श्वसुर' से 'ससुर', 'सरस्वती' से 'सरसइ', 'जिह्वा' से 'जीहा', 'पार्श्व' से 'पास', 'तेजस्वी' से 'तेजसी' और कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती 'व' का भी लोप करके उसके साथका स्वर मात्र रखा गया है, जैसे—'भुवन' का 'भुअन'।

२६—कहीं-कहीं शब्दोंके आरम्भ अथवा मध्यके 'ल' के स्थानमें 'न' कर दिया गया है; जैसे—'पलाश' से 'पनास' और 'लंघ' से 'नाघना'। कहीं-कहीं इसके विपरीत 'न' के स्थानमें 'ल' का प्रयोग हो गया है; जैसे—'नौका' से 'लौका' आदि। शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्तके 'ल' के स्थान 'र' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'काली' से 'कारी', 'विकराल' से 'बिकरार', 'कदली' से 'कदरी', 'अन्त्रावली' से 'अंतावरी', 'शीतल' से 'सिअर' आदि।

२७—रेफके आगे किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर कभी-कभी रेफका लोप कर दिया जाता है, और पूर्ववर्त्ती स्वरको प्राय: दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'वर्ति' से 'बाती', 'कीर्त्ति' से 'कीती', 'सर्व' से 'सब' तथा 'कार्य' से 'काज' हुआ है। रेफ अथवा 'ऋ' के परवर्त्ती 'त' 'थ' अथवा 'द' को कभी-कभी क्रमशः 'ट' और 'ड' के रूपमें बदल दिया गया है और 'ट' एवं 'ड' के संयुक्त रेफ अथवा अन्य किसी व्यंजनको भी क्रमशः 'ट' अथवा 'ड' कर दिया गया है; जैसे 'वर्त्म' का 'बट्ट', 'सार्द्ध' का 'सड्ढ' 'वृद्ध' का 'बुड्ढ'। रेफके पीछे 'प' का संयोग होनेपर कभी-कभी, 'प' के स्थान में 'प्प' का प्रयोग है, जैसे 'सर्प' से 'सप्प' 'खर्पर' से 'खप्पर'। रेफके आगे 'य' अथवा 'म' का संयोग होनेपर कहीं-कहीं रेफ 'य' के पूर्ववर्ती व्यंजनके आगे संयुक्त हो गया है,—'पर्यन्त' से 'प्रजंत', 'तिर्यक्' (पशु-पक्षी आदि योनि) से 'त्रिजग', 'कर्म' से 'क्रम' हो गया है।

२८—हकारान्त विशेषण शब्दोंके आगे पुल्लिंगमें 'अ' और स्त्री-लिंगमें 'इ' या 'ई' जोड़ा गया है; जैसे—'कड़' (कटु) से 'कडुअ', 'कडु'

१४

२२—शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'पोष' के स्थान पर 'पोह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह','केसरी' से 'केहरी', 'वष' से 'वह' और 'निष्काम' से 'निष्काम' आदि।

२३—किसी-किसी शब्दके पूर्व छन्दके अनुरोधसे 'स' जोड़ा गया है; जैसे—अवकाश', 'चकित', 'चर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेड' आदि में' 'सावकास', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेड' आदि। कहीं-कहीं 'स्' के साथ 'थ' का संयोग होनेपर 'स्' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहि', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति, 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'बच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग' 'उत्साह' से 'उछाह' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होनेपर दोनोंके स्थानमें एक रूपसे 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वरको दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' ई।

२४—शब्दोंके आरम्भ, मध्य अथवा अन्तमें 'ष' के कहीं 'स' कर दिया गया है; जैसे—'षष्ठि' से 'साठि', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से

से 'इरुअ', या 'हरुए', 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुए' आदि ।

२६—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर 'र' का प्रायः लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय', 'प्रिय' से 'पिय', 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयान' से 'पयान', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह' । पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घकरके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय', (हृदय) का 'ही', 'मुनिय' (मुनिअ) का 'मुनी', 'पाइय' (पाइअ) का 'पाई' हो गया है ।

३०—'य' के पूर्व किसी और वर्णका संयोग होनेपर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्यन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'साँवरो', 'श्यामकर्ण' का 'सावकरन' किया गया है । कहीं-कहीं ऐसे शब्दोंमें 'य' के स्थान में 'इ' कर दिया गया है और वह उसके पूर्ववर्ती व्यंजनमें मिल गया है जैसे—'अगस्त्य' से 'अगस्ति', 'अवश्य' से 'अवसि', 'विन्ध्य' से 'विंधि', 'व्यंजन' से 'बिंजन', 'सत्य' से 'सति', 'व्यंग्य' से 'बिंग्य', 'सत्यभाव' से 'सतिभाउ' 'व्यवहार' से 'बिहार' आदि ।

३१—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'य' का लोप होकर उनके साथका स्वर मात्र शेष रह गया है, जैसे 'विषयी' का 'विषई' 'विजयी' का 'बिजई' 'यातनामयी' का 'जातनामई', 'वायु' का 'बाउ', 'पीयूष' का 'पीऊष' तथा कहीं-कहीं 'य' के स्थान में 'इ' हो गया है; जैसे—'समुदाय' का 'समुदाइ', 'विषयक' का 'विषइक', 'सहाय' का 'सहाइ' आदि ।

३२—शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्तके 'म' के स्थान में 'व' का कहीं-कहीं प्रयोग कर दिया गया है, जैसे—'प्रमान' से 'प्रवान', 'गमन' से 'गवन', 'दमन' से 'दवन' आदि । इसके विपरीत [illegible] व है

स्थानमें 'म' कर दिया गया है, जैसे 'यवन' के स्थानपर 'जमन', 'यवनिका' के स्थानपर 'जमनिका' कर दिया गया है। कहीं-कहीं 'म' के स्थानमें व भी कर दिया है, जैसे 'श्राम्र' से 'श्रांव' श्रादि।

३२—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती और पदान्तके 'भ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है, जैसे 'सौभाग्य' से 'सोहाग', 'लाभ' से 'लाह' श्रादि। इसी प्रकार शब्दोंके मध्यवर्ती 'फ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है जैसे—'मुक्ताफल' से 'मुकताहल'।

३४—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'द' का लोप होकर उसके साथका स्वरमात्र शेष रह गया है, जैसे 'हृदय' का 'हियउ' अथवा 'हिश्र' 'प्रस्वेद' से 'पसेउ' 'भेदु' से 'भेउ' श्रादि।

गोस्वामीजीकी रचनामें भाषा और शब्दोंके विविध रूपोंको इस प्रकार देखकर कहना पड़ेगा कि उनकी रचना दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे जितना महत्व रखती है, उससे अधिक महत्व उसका भाषाके दृष्टिकोणसे भी है।

से 'इदुअ', या 'इदुइ', 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुइ' आदि ।

२९—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर 'र' का प्रायः लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय', 'प्रिय' से 'पिय', 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घ करके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय', (हृदय) का 'ही', 'मुनिय' (मुनिअ) का 'मुनी', 'पाइय' (पाइअ) का 'पाई' हो गया है ।

३०—'य' के पूर्व किसी और वर्णका संयोग होनेपर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्पन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'साँवरो', 'श्यामकर्ण' का 'सावकरन' किया गया है । कहीं-कहीं ऐसे शब्दोंमें 'य' के स्थान में 'इ' कर दिया गया है और वह उसके पूर्ववर्ती व्यंजनमें मिल गया है जैसे—'अगस्त्य' से 'अगस्ति', 'अवश्य' से 'अवसि', 'विध्य' से 'विधि', 'व्यंजन' से 'बिजन', 'सत्य' से 'सति', 'व्यंग्य' से 'बिंग्य', 'सत्यभाव' से 'सतिभाउ' 'व्यवहार' से 'बिहार' आदि ।

३१—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'य' का लोप होकर उनके साथका स्वर मात्र शेष रह गया है, जैसे 'विषयी' का 'विसई' 'विजयी' का 'विजई' 'यातनामयी' का 'जातनामई', 'वायु' का 'बाउ', 'पीयूष' का 'पीऊष' तथा कहीं-कहीं 'य' के स्थान में 'इ' हो गया है, जैसे—'समुदाय' का 'समुदाई', 'विनयक' का 'विनइक', 'सहाय' का 'सहाइ' आदि ।

३२—शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्तके 'म' के स्थान में 'व' का कहीं-कहीं प्रयोग कर दिया गया है, जैसे—'प्रमान' से 'प्रवान', 'गमन' से 'गवन', 'दमन' से 'दवन' आदि । इसके विपरीत कहीं-कहीं व के

स्थानमें 'ज' कर दिया गया है, जैसे 'यवन' के स्थानपर 'जवन', 'यव-निका' के स्थानपर 'जवनिका' कर दिया गया है। कहीं-कहीं 'त' के स्थानमें व भी कर दिया है, जैसे 'घात' से 'घाव' आदि।

१३—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती और पदान्तके 'भ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है, जैसे 'सौभाग्य' से 'सोहाग', 'लाभ' से 'लाह' आदि। इसी प्रकार शब्दोंके मध्यवर्ती 'फ' के स्थानमें 'ह' कर दिया गया है जैसे—'मुक्ताफल' से 'मुकताहल'।

१४—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'द' का लोप होकर उसके साथका स्वरमात्र शेष रह गया है, जैसे 'हृदय' का 'हिअ' अथवा 'हिय' 'प्रस्वेद' से 'पसेउ' 'मेदु' से 'मेउ' आदि।

गोस्वामीजीकी रचनामें भाषा और शब्दोंके विविध रूपोंको इस प्रकार देखकर कहना पड़ेगा कि उनकी रचना दार्शनिक, धार्मिक, राज-नीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे जितना महत्व रखती है, उससे अधिक महत्व उसका भाषाके दृष्टिकोणसे भी है।

से 'हरुअ', या 'हरुइ', 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुइ' आदि।

२६—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजनका संयोग होनेपर '
प्रायः लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय', 'प्रि
'पिय', 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन
से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य'
अव्यवहित पूर्वमें आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घ-करके 'य' का लो
कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का
'पी', 'हिय', (हृदय) का 'ही', 'सुनिय' (सुनिअ) का 'सुनी', 'पाइय'
(पाइअ) का 'पाई' हो गया है।

३०—'य' के पूर्व किसी और वर्णका संयोग होनेपर कभी-कभी
'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्यन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत',
'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'साँवरो',
'श्यामकर्ण' का 'सावकरन' किया गया है। कहीं-कहीं ऐसे शब्दोंमें 'य'
के स्थान में 'इ' कर दिया गया है और वह उसके पूर्ववर्ती व्यंजनमें मिल
गया है जैसे—'अगस्त्य' से 'अगस्ति', 'अवश्य' से 'अवसि', 'विन्ध्य'
से 'बिंधि', 'व्यंजन' से 'बिंजन', 'सत्य' से 'सति', 'व्यंग' से 'बिंग',
'सत्यभाव' से 'सतिभाउ' 'व्यवहार' से 'बिहार' आदि।

३१—कहीं-कहीं शब्दोंके मध्यवर्ती अथवा पदान्तके 'य' का लोप
होकर उनके साथका स्वर मात्र शेष रह गया है, जैसे 'विजयी' का 'बिजई'
'विजयी' का 'बिजई' 'यातनामयी' का 'जातनामई', 'वायु' का 'बाउ'
'पीयूष' का 'पीऊष' तथा कहीं-कहीं 'य' के स्थान में 'ह' हो ग
जैसे—'समुदाय' का 'समुदाई', 'निश्चय' का 'निहचै'
...हाइ' आदि।

३२—शब्दोंके मध्यवर्ती एवं पदान्त
कहीं प्रयोग कर दिया गया है, जैसे
...वन', 'दमन' से 'दवन' आदि

सगुणधारा

४. महात्मा सूरदास (कृष्ण-काव्य)

१—कृष्ण-भक्तिकी परम्परा—ऊपर लिखा जा चुका है कि यद्यपि हिन्दू-जनतामें अवतारोंकी भावना अत्यन्त प्राचीनकाल (अनादिकाल) से चली आ रही है; किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णचरितका प्रथम वर्णन करनेवाला ग्रन्थ महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत 'महाभारत' ही है। आगे चलकर कृष्ण-भक्ति व्यापकरूपसे बहुत अधिक बढ़ी और उसका प्रभाव बौद्धकालके बाद तक रहा और है। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमरकोष' के प्रणेता अमरसिंहने (जिन्हें महाराज विक्रमकी सभाका अन्यतम रत्न कहा जाता है और जिनका समय दो हजार वर्ष पूर्व निश्चित होता है) धार्मिक दृष्टिसे बौद्ध होते हुए भी 'अमरकोष' में ब्रह्मा, विष्णु और महेशका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णका भी वर्णन किया है—'विष्णुर्नारायणः कृष्णः' से प्रारम्भ करके इन्होंने उपेन्द्र (इन्द्रके छोटे भाई), कैटभजित् ('मधु-कैटभके मारने-वाले), श्रीपति, स्वयम्भू, यज्ञपुरुष, विश्वरूप, जलशायीके साथ-साथ दामोदर, माधव, देवकीनन्दन और वसुदेवका पुत्र भी कहा है।

'सर भंडारकर वासुदेव और कृष्णमें अन्तर मानते हैं, उनका विचार है कि 'सात्वत' एक क्षत्रियवंशका नाम था, जिसे 'वृष्णि' भी कहते थे। वासुदेव इसी 'सात्वत' वंशके एक महापुरुष थे, और उनका समय ईसासे ४०० वर्ष पूर्व है। उन्होंने ईश्वरके एकत्व भावका प्रचार किया था। उनकी मृत्युके बाद उसी वंशके लोगोंने वासुदेव ही को साकार रूपसे ब्रह्म मान लिया है। 'भगवद्गीता' इसी कुलका ग्रन्थ है।

'इसी प्रकार वासुदेवका प्रथम रूप नारायण था, बादमें विष्णु और अन्तमें गोपालकृष्ण।

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ।

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।

देवक्या गर्भ सम्बन्धः कुतो देहान्तर विना ॥ ८ ॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रज गतः ।

क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वताम्पतिः ॥ ९ ॥"

—("श्रीमद्‌भागवत" दशम् स्कन्ध, प्रथम अध्याय श्लोक १ से ९ तक)

अर्थात्—"भगवन् ! आपने चन्द्र और सूर्यवंशके विस्तार एवं दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्‌भुत चरित्र वर्णित किया । भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे धर्म-प्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया । अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं । उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हम लोगों-को श्रवण कराइये । भगवान् श्रीकृष्णके गुण और उनकी लीलाएँ इतनी मधुर और स्वभावसे ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषोंके हृदय-में किसी भी प्रकारकी लालसा तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आक-र्षित होकर नित्य-निरन्तर उनका गायन किया करते हैं । जो लोग इस भव-रोगसे छुटकारा पाना चाहते हैं, उनके लिए तो वे लीलाएँ औषध रूप ही हैं, जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ा देनेवाली हैं । यहाँ तक कि जो विषय-प्रेमी हैं, उनके मन और कान भी उनमें रम जाते हैं । उन्हें भी उनमें बड़ा रस, बड़ा सुख, मिलता है । ऐसी स्थितिमें पशुघाती अथवा आत्मघाती के अतिरिक्त ऐसा कोई और जीव नहीं हो सकता, जो मुक्त मुमुक्षु और विषयी सभीको सुख देनेवाली भगवानकी लीलाओंमें रुचि न करे । इसके अतिरिक्त मेरे कुलसे तो श्रीकृष्णका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले पितामह भीष्म आदि अतिरथियोंसे दादा पाण्डवोंका युद्ध

किन्तु 'महाभारत' और 'भागवत' में महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने भगवान् श्रीकृष्णका जो परिचय अपनी रचनामें दिया है, वह इस प्रकार है:—

"कृष्ण एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥ १९ ॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात्पूज्यतमोऽच्युतः ॥ २३ ॥
बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या।
चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥"

—(महाभारत—सभापर्व, अध्याय ३८, श्लोक १९,२३,२४)

तथा आगे—"एतावानेव यज्ञ एतावानेव यशः।
एतदध्यात्मकं एतद् वै सारतत्त्वं परः ॥"

—(महाभारत, सभापर्व, अध्याय ११, श्लोक १)

इसी प्रकार राजा परीक्षितके प्रश्नोत्तर :—

किन्तु 'महाभारत' और 'भागवत' में महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने भगवान् श्रीकृष्णका जो परिचय अपनी रचनामें दिया है, वह इस प्रकार है:—

"कृष्ण एव हि भूतानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥ १९ ॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात्पूज्यतमोऽच्युतः ॥ २१ ॥
बुद्धिर्मनो महद्वायुस्तेजोऽम्भः खं मही च या।
चतुर्विधं च यद् भूतं सर्वं कृष्णे प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥"

—(महाभारत—सभापर्व, अध्याय ३८, श्लोक १९,२१,२४)

तथा आगे—"एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः।
एतदक्षरमव्यक्तमेतद् वै शाश्वतं महः ॥"

—(महाभारत, सभापर्व, अध्याय ११, श्लोक १)

इसी प्रकार पाञ्चरात्रके पुरुषोत्तम :—

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥
रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भ सम्बन्धः कुतो देहान्तरं बिना ॥ ८ ॥
यस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वताम्पतिः ॥ ९ ॥"

—("श्रीमद्भागवत" दशम् स्कन्ध, प्रथम अध्याय श्लोक १ से ९ तक)

अर्थात्—"भगवन् ! आपने चन्द्र और सूर्यवंशके विस्तार एवं दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णित किया। भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे धर्म-प्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया। अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ की, उनका विस्तारसे हम लोगों-को श्रवण कराइये। भगवान् श्रीकृष्णके गुण और उनकी लीलाएँ इतनी मधुर और स्वभावसे ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषोंके हृदय-में किसी भी प्रकारकी लालसा तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आक-र्षित होकर नित्य-निरन्तर उनका गायन किया करते हैं। जो लोग इस भव-रोगसे छुटकारा पाना चाहते हैं, उनके लिए तो ये लीलाएँ औषध रूप ही हैं, जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ा देनेवाली हैं। यहाँ तक कि जो विषय-प्रेमी हैं, उनके मन और कान भी उनमें रम जाते हैं। उन्हें भी उनमें बड़ा रस, बड़ा सुख, मिलता है। ऐसी स्थितिमें पशुघाती अथवा आत्मघाती के अतिरिक्त ऐसा कोई और और नहीं हो सकता, जो दुःखी और विरही सभीको सुख देनेवाली भगवान्‌की लीलाओंसे रति न करे। इसके अतिरिक्त मेरे कुलसे तो श्रीकृष्णका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले पितामह भीष्म आदि अतिरथियोंसे दादा पाण्डवोंका युद्ध

प्रपन्नतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ।
रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भं सम्बन्धः कुतो देहान्तर बिना ॥ ८ ॥
कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वताम्पतिः ॥ ९ ॥"

—("श्रीमद्भागवत" दशम् स्कन्ध, प्रथम अध्याय श्लोक १ से ९ तक)

अर्थात्—"भगवन् ! आपने चन्द्र और सूर्यवंशके विस्तार एवं दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णित किया। भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे धर्म-प्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया। अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हम लोगों-को श्रवण कराइये। भगवान् श्रीकृष्णके गुण और उनकी लीलाएँ इतनी मधुर और स्वभावसे ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषोंके हृदय-में किसी भी प्रकारकी लालसा तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आक-र्षित होकर नित्य-निरन्तर उनका गायन किया करते हैं। जो लोग इस भव-रोगसे छुटकारा पाना चाहते हैं, उनके लिए तो वे लीलाएँ औषध रूप ही हैं, जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ा देनेवाली हैं। यहाँ तक कि जो विषय-प्रेमी हैं, उनके मन और कान भी उनमें रम जाते हैं। उन्हें भी उनमें बड़ा रस, बड़ा सुख, मिलता है। ऐसी स्थितिमें पशुघाती अथवा आत्मघाती के अतिरिक्त ऐसा कोई और जीव नहीं हो सकता, जो मुक्त मुमुक्षु और विषयी सभीको सुख देनेवाली भगवानकी लीलाओंमें रुचि न करे। इसके अतिरिक्त मेरे कुलसे तो श्रीकृष्णका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले पितामह भीष्म आदि अतिरथियोंसे दादा पाण्डवोंका युद्ध

हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिए अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे; किंतु मेरे पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय। हे महाराज! दादाओंकी बात जाने दें, मेरा यह शरीर जो आपके सामने है एवं जो कौरव और पांडव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था। उस समय मेरी माता जब भगवान्की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की। केवल मेरी ही बात नहीं, वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्यु। मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है। आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये। वे मेरे कुलदेवता हैं, जीवनदाता हैं और समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। भगवन् आपने अभी बताया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे। इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी उनकी गणना की गई। दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है? असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर व्रजमें क्यों चले गये? प्रभुने नन्द आदि गोपोंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया?"

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण महर्षि व्यासके समय-से ही पूर्णब्रह्म मान लिये गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु) अवतारके रूपमें; हरिवंशपुराण, वायुपुराण, वाराहपुराण अग्निपुराण और नृसिंह-पुराण आदिमें भी वर्णित हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति अत्यन्त प्राचीनकालसे चली आ रही

२—मत-सिद्धान्त और दार्शनिक पृष्ठ-भूमि—परम्परासे आती हुई जो कृष्णभक्ति, विक्रमकी पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें वैष्णव धर्मके आन्दोलनके अन्तर्गत पायी जाती है, उसके प्रवर्त्तकोंमेंसे आचार्य वल्लभ प्रमुख थे। इनका जन्म सम्वत् १५३५ वैशाख कृष्ण ११ को माना जाता है और मृत्यु सम्वत् १५८७ आषाढ़ शुक्ल ३ को मानी जाती है। ये वेद-शास्त्रके बड़े ही प्रकाण्ड पण्डित थे।

भारतमें आचार्य रामानुजसे लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भी उच्च-कोटिके भक्त, दार्शनिक या आचार्य हुए, उन सबोंका उद्देश्य स्वामी शंकराचार्यके मायावाद और विवर्त्तवादसे, जिसके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रांति ही ठहरती थी, * पीछा छुड़ाना था। शंकरने केवल निरुपाधि निर्गुणब्रह्मकी ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की थी। महाप्रभु वल्लभाचार्यने जगत्‌के मिथ्यात्वका खण्डन करके उपासनाकी प्रतिष्ठा की। समग्र सृष्टिको उन्होंने लीलाके लिए ब्रह्मकी आत्मकृति कहा। भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता, निर्विकार, गुणरहित, समस्त धर्मोंके आश्रय, संसारके धर्मोंसे रहित एवं जगत्‌के उपादान हैं। जगत् सत्य है। वह कार्य है। ब्रह्मसे अभिन्न उसकी परिणति है, क्योंकि ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत्‌में आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणुरूप है। जीवके लिये ब्रह्मसे प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। ब्रह्म पूर्ण सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। जीवको अपने पूर्ण आनन्दस्वरूपकी प्राप्ति ईश्वरके अनुग्रहपर निर्भर है। अतः उसी अनुग्रहको पुष्ट करना भक्तिकी साधनाका लक्ष्य है। इसीलिये आचार्य वल्लभने पुष्टिमार्गका प्रवर्त्तन किया, क्योंकि बिना ईश्वरके अनुग्रहके मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।—'मोक्षश्च विष्णुप्रसादमन्तरेण न लभ्यते।'

---

* देखिये आचार्य शुक्ल प्रणीत 'हि० सा० का इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृष्ठ १५५।

श्रद्धा-मिश्रित प्रेमको भक्ति कहते हैं। वल्लभ सम्प्रदायमें कृष्णके लीला-मय स्वरूपकी उपासनाके कारण प्रेमकी प्रधानता है। प्रेममें अनुरंजनका प्राधान्य रहता है। प्रेममूला-भक्तिके तीन प्रधान तत्व माने जाते हैं। समता, स्वच्छन्दता तथा प्रेमान्तिकता। प्रेम-साधनामें आचार्य वल्लभने वेदमर्यादा और लोक-मर्यादा दोनोंका त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेम-लक्षणाभक्तिका मानव-हृदयमें तभी स्फुरण होता है, जब उसपर भगवान्का अनुग्रह होता है, जिसे पुष्टि कहा जाता है। यही कारण है कि वल्लभाचार्यके सम्प्रदायका नाम 'पुष्टि-मार्ग' पड़ा। इस पुष्टिके आचार्यने चार भाग किये :—

(१) प्रवाह-पुष्टि — संसारमें रहते हुए भी श्रीकृष्णकी भक्ति प्रवाह रूपसे हृदयमें होती रहे। इसीसे इसे 'प्रवाह-पुष्टि' कहा जाता है।

(२) मर्यादा-पुष्टि—संसारके सुखोंको त्यागकर श्रीकृष्णका गुणगान करता रहे। इस प्रकार मर्यादापूर्ण भक्तिके विकासको 'मर्यादा-पुष्टि' कहते हैं।

३—पुष्टि-पुष्टि—श्रीकृष्णका अनुग्रह प्राप्त होनेपर भी भक्तिकी साधना अधिकाधिक होती रहे। इसीका नाम 'पुष्टि-पुष्टि' है।

४—शुद्धपुष्टि—मात्र प्रेम तथा अनुरागके आधारपर श्रीकृष्णका अनुग्रह प्राप्त कर हृदयमें श्रीकृष्णकी अनुभूति हो। यह अनुभूति श्रीकृष्णका स्थान हृदयको बना दे तथा गो, गोप, यमुना, गोपी और कदम्ब आदिके सम्बन्धसे उसे कृष्णमय कर दे। वही 'शुद्धपुष्टि' है।

इसी 'शुद्धपुष्टि'को वल्लभने अपने सम्प्रदायका चरम उद्देश्य माना है। इसके अनुसार वे प्राणीको राधाकृष्णके साथ गोलोकमें स्थान पा जानेपर ही सार्थक समझते हैं।

जिस प्रकार रामानुजाचार्यसे प्रभावित होकर उनके अनुयायी स्वामी-रामानन्दने विष्णु या नारायणके रूप रामकी भक्तिका प्रचार उत्तर-भारतमें किया, उसी प्रकार निम्बार्क, मध्व तथा विष्णु गोस्वामीके

आदर्शोंको मानकर उनके अनुयायी महाप्रभु चैतन्य और आचार्य वल्लभने विष्णुके रूपमें श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार किया। रामानुजाचार्य और अन्य आचार्यों—निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी—की भक्तिमें कुछ अन्तर है। रामानुजकी भक्तिमें चिन्तन और ज्ञान दोनोंका महत्व स्वीकार किया गया है। प्रपत्तिसे मुक्ति पानेके लिए इनकी विशेष आवश्यकता है, किन्तु इन तीनों आचार्योंकी भक्तिमें ज्ञानकी अपेक्षा प्रेमका महत्व अधिक है। इसमें आत्म-चिन्तनकी उतनी आवश्यकता नहीं; जितनी आत्मसमर्पणकी; इसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वंदन और आत्म-निवेदनकी अधिक आवश्यकता है। इस भक्तिकी उद्भावना प्रेमसे होती है।

भगवान् श्रीकृष्णकी यह भक्ति महाभारत कालसे आकर ईसाकी पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें महाप्रभु चैतन्य और आचार्य वल्लभकी साधनाका योग पाकर भलीभांति प्रसार पाने लगी। आचार्य वल्लभने दार्शनिक-क्षेत्रमें जैसे 'शुद्धाद्वैत'की प्रतिष्ठा की, वैसे ही भक्तिके क्षेत्रमें 'पुष्टिमार्ग'की। आचार्य वल्लभके इस 'पुष्टिमार्ग'में अनेक प्रतिभा-सम्पन्न लोग दीक्षित हुए, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिपर श्रेष्ठ रचनाएँ कीं। इनमें 'अष्टछाप' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी स्थापना वल्लभाचार्यके पुत्र श्री विट्ठलनाथने की। इसी अष्टछापके कवियोंमें महात्मा सूरदास तथा नन्ददास आदि ब्रज-भाषाके उत्कृष्ट कवि हुए।

२—कवि और रचनाएँ—हिन्दी-साहित्यमें कृष्ण-काव्यकी रचना विद्वानोंने प्रायः 'जयदेव'से मानी है। जयदेवके बाद विद्यापति हुए; किन्तु विद्यापति कृष्णभक्तोंकी परम्परामें नहीं थे। वे शैव थे। श्रीकृष्णके शृंगारिक रूपकी जो रचना की, उसमें उनका दृष्टिकोण भक्तका न होकर केवल शृंगारका ही रहा। अतः सच्चे अर्थमें हिन्दी-साहित्यमें कृष्ण-काव्यकी रचनाका श्रेय वल्लभाचार्यको ही है। क्योंकि उनके द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग'में दीक्षित होकर सूरदास आदि कवियोंने कृष्ण-भक्ति

सूरसारावली, ब्याहलो, नल-दमयन्ती और हितहरिवंशकी टीका । इनमें अन्तिम तीनों अप्राप्य हैं । इन सभी ग्रन्थोंमें सूरसागर ही श्रेष्ठ है । जिसमें श्रीमद्भागवतके विभिन्न स्कन्धोंका सामान्य परिचय देते हुए दशम् स्कंधकी कथाका बड़े विस्तारसे सूक्ष्म विवेचन मिलता है । 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' 'सूरसागर' के बादकी कृति हैं । इसका निर्देश अनेक स्थलोंपर स्वयं सूरदासने भी किया है । सूरने भागवत्के अनुरूप कथा कहनेपर भी इसमें मौलिकता ला दी है । सूरसागरकी रचनाको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है । १—विनयके पद, २—बाल-लीला-वर्णन और ३—शृङ्गार-वर्णन ।

विनयके पदोंसे सूरको एक मुक्त गायकको भाँति माना जा सकता है। आत्म-परिष्कार और प्रबोधनके लिये विनयका विशेष महत्व है । वास्तवमें भगवान् और भक्तके बीचकी यही कड़ी है । इसीके माध्यमसे आत्म-विस्तारके साथ जीवन-भावनाके केन्द्रमें भी परिवर्तन होता है । मनुष्य व्यष्टिसे ऊपर उठकर समष्टि-चेतनाकी ओर प्रेरित होता है । वैष्णव सम्प्रदायके अनुसार विनयके द्वारा भगवत् आश्रय ग्रहण करनेमें निम्नां-कित नियमोंका पालन आवश्यक होता है :—

"अनुकूलस्य संकल्पं, प्रतिकूलस्य वर्जनम्,
रक्षिष्यतीति विश्वासो तथा गोप्तृत्व - वर्णनम्
आत्म-निक्षेप कार्पण्यं षडविधा शरणागतिः ।"

अर्थात् अपने इष्टदेवके अनुकूल गुणोंको धारण करनेका संकल्प, प्रतिकूल गुणोंका त्याग, ईश्वरके संरक्षणमें दृढ़ विश्वास, अपने गोप्ता यानी रक्षकका गुणगानपूर्ण आत्मसमर्पणका भाव तथा दीनता और अपने पापोंको प्रकट करते हुए उसके मार्जनके लिए विनय करना । महात्मा सूरके पदोंमें इन्हीं नियमोंकी व्यंजना मिलती है । वास्तवमें भक्त-हृदयके उद्गारों एवं विदग्धताओंके आधारपर इस प्रकारकी व्यवस्था नियमित की —है । महात्मा सूरके विनयके पद इसी प्रकारके हैं :—

महाकवि सूरने सामान्य हृदय-तावकी सृष्टि-व्यापिनी भावनाके माध्यम-से वियोगका जो वर्णन किया है, वह विश्व-साहित्यमें अपनी एक विशेषता रखता है। सूरदासकी वियोग-रचनामें, विरह-जीवनके जितने चित्र हैं, वे भावनाओंकी गहरी अनुभूति लिए हुए हैं। विद्वानोंने विरहकी जो ग्यारह अवस्थाएँ मानी हैं, अर्थात् अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण इन सबोंका उचित वर्णन 'भ्रमरगीत'के अन्तर्गत मिलता है; जिनके उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

१—अभिलाषा—"निरखत अंक स्यामसुन्दरके बार-बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै होइ गइ स्याम स्याम की पाती॥"

२—चिन्ता—"मधुकर ये नैना पै हारे।
निरखि-निरखि मग कमल-नयन को प्रेम-मगन भए भारे॥"

३—स्मरण—"मोरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं जे नँदलाल कही॥"

४—गुणकथन—"सँदेशो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥
उबटन तेल और तातो जल, देखे ही भजि जाते।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती धर्म कर्म के नाते॥
तुम तौ टेव जानती होइहौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहिं माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहिं निसि-बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वैहैं करत सँकोच॥"

५—उद्वेग—"तिहारी प्रीति, किधौं तरवारि।
दृष्टिधार करि मारि साँवरे, घायल सब ब्रजनारि॥"

६—प्रलाप—"कैसे के पनघट जाउँ सखीरी डोलौं सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ चली है, इन नैनन के नीर॥

इन नैनन के नीर सखीरी, सेज भई घरनाउँ।
चाहति हौं याही पर चढ़ि कै स्याम मिलन को आउँ॥"

७—उन्माद—"माधव यह ब्रज को व्योहार।
मेरो कह्यो पवन को भुस भयो गावत नन्दकुमार॥
एक ग्वालिन गोधन ले रेंगति, एक लकुट करि लेत।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँटि कै देति॥"

८—व्याधि—
"ऊधो जू मैं तिहारे चरन, लागौं बारक या ब्रज करबि भाँवरी।
निसि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै मग जोवत भई दृष्टि झाँवरी॥"

९—जड़ता—"बालक संग लिए दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
'सूर' सीस सुनि चौंकत नावहिं, अब काहे न मुख बोलत॥"

१०—मूर्च्छा—"सोचति अति पछताति राधिका, मूर्च्छित धरनि ढही।
'सूरदास' प्रभु के बिछुरे ते, बिथा न जात सही॥"

११—मरण—
"जब हरि गवन कियो पूरब लौं, तब लिखि जोग पठायो।
यह तन जरि कै भस्म ह्वै निबर्‍यो बहुरि मसान जगायो॥
कै रे, मोहन आनि मिलाओ, कै ले चलु हम साथे।
'सूरदास' अब मरन बन्यो है, पाप तिहारे माथे॥"

इस प्रकार महात्मा सूरने विरह-वर्णनका सांगोपांग वर्णन कर हिन्दी-साहित्यके गौरवका स्वरोन्नयन किया है। शृङ्गार-वर्णनके दोनों पक्षोंमें सूरको अद्भुत सफलता मिली है। संयोग-वियोगकी विभिन्न दशाओंके अनेक सुन्दर और मनोमुग्धकारी चित्रोंको अपनी रचनामें सूरने उपस्थित किया है। वियोग संबंधी पदोंका संग्रह 'भ्रमरगीत'में किया गया है। 'भ्रमरगीत'को उपालम्भका अत्यन्त उत्कृष्ट संग्रह समझना चाहिए।

५—रस-निरूपण—शृङ्गारके साथ ही साथ सूरने करुण और हास्यरसकी भी व्यंजना की है। श्रीकृष्णके मथुरासे ब्रज न लौटनेकी निराशा-

से करुणरस और उद्धवके ज्ञान-मार्गके परिहाससे हास्यरसकी सृष्टि हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

करुणरस—"अति मलीन वृषभानु कुमारी।

हरिश्रम जल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहि चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भई इक विरहिन दूजे अलि जारी।
'सूरस्याम' बिनु यों जीवत हैं ब्रज-बनिता सब स्याम दुलारी॥"

हास्यरस—"निर्गुन कौन देस को बासी।

मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो वहि रस में अभिलाषी॥"

इन रसोंके अतिरिक्त सूरदासने दूसरे रसोंका भी वर्णन किया है, किन्तु सब गौणरूपसे हैं। इन रसोंमें कोमल रस ही प्रधान है; जिनमें अधिकता अद्‌भुत और शान्तकी है।

रस-निरूपणमें सूरने मनोवैज्ञानिक भावनाओंको सरस राग-रागिनियोंमें वर्णित किया है, जिनके प्रभावसे सूरकी रचना अत्यन्त मधुर और आकर्षक हो गयी है। रस-निरूपणमें निम्नलिखित राग-रागिनियोंका प्रयोग सूरने किया है :—

शृंगाररसके अन्तर्गत—ललित, गौरी, बिलावल, सूहो और बसन्त; हास्यरसके अन्तर्गत—टोड़ी, सोरठ, सारंग; और शान्तरसके अन्तर्गत—रामकली आदि। इसके अतिरिक्त सूरने विभास, नट, कल्याण और मलार आदि रागोंका भी यथास्थान प्रयोग किया है।

अलंकार-योजना—महात्मा सूरकी रचनामें अलंकार भी अधिक आए हैं, जिनमें शब्दालंकारकी अपेक्षा अर्थालंकारकी योजना प्रधान है। ...लंकारका प्रयोग प्रायः चमत्कार-वर्द्धनकी दृष्टिसे होता है, किन्तु

अर्थालंकारमें चमत्कारके अतिरिक्त अर्थ-व्यंजनाकी प्रधानता रहती है। सूरकी अलंकार-योजना अर्थ-व्यंजनाके लिए ही हुई है। रचनामें कहीं-कहीं ऊहात्मक प्रसंगोंकी योजना विशुद्ध कलात्मक दृष्टिसे की गई है। उनमें भाव-सौन्दर्यकी अपेक्षा चमत्कार एवं कलात्मकताका अंश अधिक है। सूरदासके कुछ पद दृष्टि-कूटके अन्तर्गत भी आते हैं, जिनमें साहित्यिकता संदिग्ध है। प्रस्तुतके सीमित होनेके कारण तथा अप्रस्तुतके आधिक्यसे सूरकी रचनामें परिस्थितियोंके गम्भीर वर्णनका अभाव मिलता है।

६—भक्ति-भावना—वल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गमें 'नारद-भक्ति-सूत्र'में वर्णित भक्तिके अनुसार ग्यारह प्रकारकी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रतिष्ठितकी गयी है। महात्मा सूरने कृष्णके प्रति यशोदा, नन्द, गोप और गोपियोंकी आसक्तिके माध्यमसे इन सभी ग्यारह आसक्तियोंकी व्यंजनाकी है। भ्रमरगीतमें गुणमाहात्म्यासक्ति, दानलीलामें रूपासक्ति, गोवर्द्धन-धारणमें पूजासक्ति, गोपिका-वचन परस्परमें स्मरणासक्ति, मुरली-
[illegible] दास्यासक्ति, गोचारणमें सख्यासक्ति गोपिका-विरहमें कान्तासक्ति,
[illegible] तूमें वात्सल्यासक्ति, और शेष आत्मनिवेदनासक्ति और
[illegible] भ्रमरगीतकी रचनामें वर्णित है। महात्मा सूरने उपर्युक्त
[illegible] व्यंजनाकी है। पुष्टिमार्गके अन्तर्गत
[illegible] ल्लभाचार्यके आदेशसे सूरदास भगवान्
[illegible] न किया करते थे। इस कीर्तनमें
[illegible] हुई है। पुष्टिमार्गके अन्तर्गत श्रीकृष्णके
[illegible] भातोंसे उठना, शृंगार करना, गो-चारण,
[illegible] है। इनसे संबंधित पदोंमें साम्प्रदायिक
[illegible] प्रचार भी था। इसके अतिरिक्त बाहर
[illegible] "श्रीकृष्णकी मुरली 'योगमाया' है। राम-
[illegible] गोपिका रूप

है, जिससे समस्त बाह्याडम्बरोंका विनाश और लौकिक संबंधोंका परित्याग कर दिया जाता है। गोपियोंकी परीक्षा, उसमें उत्तीर्ण होने पर उनके साथ रास-क्रीड़ा, १६ सहस्र गोपिकाओंके बीचमें श्रीकृष्ण, जिस प्रकार असंख्य आत्माओंके बीचमें परमात्मा हैं यही रूपक है। लौकिक विषयके पीछे सूरदासकी यही अलौकिक भावना छिपी है।'* ऊपर लिखा जा चुका है कि सूरकी भक्ति सख्य भावकी थी, किन्तु आरंभिक कुछ पद तुलसीदासके दृष्टिकोणसे मिलते हुए, दास्य भावके हैं। शेष सभी पद तो सख्य-भावके अन्तर्गत ही लिए जायंगे। गोस्वामी तुलसीदासकी भाँति इन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थमत, वेद-महिमा और वर्णाश्रम-धर्म पर जोर नहीं दिया और इनकी रचनामें धर्म-प्रचारकी उतनी भावना तथा लोक-रक्षाकी स्थापना नहीं हुई है, जितनी तुलसीदासकी रचनामें पाई जाती है; किन्तु इतना होने पर भी विनयके पदोंमें सगुणोपासनाका प्रयोजन, भक्तिकी प्रधानता; और मायामय संसार आदि पर उत्कृष्ट पद हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारों पर भी इन्होंने रचनाकी है। महात्मा सूरने सगुणोपासनाका निरूपण बड़ेही मार्मिक ढङ्गसे कियाहै। 'भ्रमरगीत'में मर्मस्पर्शी एवं वाग्वैदग्ध्यपूर्ण रचना करनेके साथही साथ निर्गुण-ब्रह्मज्ञान एवं योग-कथाके समक्ष सगुणोपासनाकी प्रतिष्ठा कर अपने समयमें प्रचलित निर्गुण-संत-सम्प्रदायके उपासना-पद्धतिकी सूरने खिल्ली उड़ाई है। जब गोपियोंको उद्धव लगातार निर्गुण उपासनाका उपदेश देते ही जाते हैं तब उनके उत्तरमें गोपियाँ कहती हैं :—

'ऊधो! तुम अपनो जतन करौ।' 'निर्गुन कौन देस को बासी?' आदि।

वे कहती हैं—दिग्दिगन्तमें चारों ओर व्याप्त इस सगुणसत्ताका निषेधकर आप क्यों व्यर्थ ही उसके अव्यक्त तथा अनिर्दिष्ट-पक्षको लेकर बकवाद करते हैं :—

* देखिए 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' डाक्टर श्रीरामकुमार वर्मा कृत, तृतीय संस्करण पृ० ५३३।

सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभी सम्प्रदाय और हरिदासी सम्प्रदाय आदि। इन सम्प्रदायोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१—दत्तात्रेय सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके अनुयायी दत्तात्रेयको ही अपने पंथका प्रवर्त्तक मानते हैं, दत्तात्रेयका रूप तीन सिरोंसे युक्त है, उनके साथ एक गाय और चार कुत्ते हैं। तीन सिरोंका संकेत त्रिमूर्त्तिसे, गायका पृथ्वीसे और चार कुत्तोंका चार वेदोंसे ज्ञात होता है। इस प्रकार दत्तात्रेयमें दैवी भावनाका आरोपण है। इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार माना जाता है। इस सम्प्रदायकी धार्मिक पुस्तक 'भगवद्गीता' मानी जाती है और श्रीकृष्णही आराध्य माने जाते हैं। इसका केन्द्र महाराष्ट्र रहा। इसकी उन्नति विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीमें हुई था।

२—माधव-सम्प्रदाय—विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी अच्छी उन्नति हुई। मध्वाचार्यसे प्रभावित इस सम्प्रदायके अनुयायियोंने अपनी धार्मिक पुस्तक 'भक्तिरत्नावली' मानी है। इस सम्प्रदायके प्रचारकोंमें ईश्वरपुरी नामक एक नेता थे। जिन्होंने इस सम्प्रदायका खूब प्रचार किया। नगर कीर्तन और संकीर्तन ही इसमें भक्तिके साधन माने गये।

३—विष्णुस्वामी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्तक विष्णुस्वामी थे। जिन्होंने शुद्ध द्वैतसे इसकी स्थापना की। बिल्वमंगल नामक सन्यासीके द्वारा इस सम्प्रदायका विशेष प्रचार हुआ। आगे चलकर विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें जाकर यह सम्प्रदाय वल्लभ सम्प्रदायमें मिल गया, क्योंकि वल्लभाचार्यने विष्णुस्वामीके सिद्धान्तानुसार ही पुष्टिमार्गकी स्थापना की।

४—निम्बार्क सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके प्रचारकोंमें केशव काश्मीरी, हरिव्यास मुनि तथा श्रीभट्ट प्रमुख थे। इस सम्प्रदायके प्रवर्तकका अभी तक पता नहीं चला है। इस मतका विकासकाल विक्रमकी

मारवाड़ीपन आ गया, किन्तु व्रजभाषाका रूप विकृत न होने पाया।

छन्दोंकी दृष्टिसे कृष्ण-काव्यमें प्रायः गीति-काव्यका ही स्वरूप मिलता है। कृष्ण-काव्य मुक्तकके* रूपमें वर्णित होनेके कारण प्रायः गेय ही रहा। कृष्ण-काव्यके सभी पद राग-रागिनीके आधार पर लिखे गए हैं। अतः कृष्ण-काव्य संगीतात्मक है। सूर, मीरा आदिने पदोंमें ही रचना की, किन्तु कुछ कवियोंने—नन्ददास आदि—रोला, आदि छन्दोंका भी प्रयोग किया। प्रारंभमें सूरने भी रोला और चौपाई छन्द अपनाया है, पर पदोंमें उन्होंने अधिक रचना की।

रसकी दृष्टिसे समूचे कृष्ण-काव्यमें शृंगार, अद्भुत और शान्त रसकी प्रधानता है। संयोग और वियोग दोनों पक्षोंके साथ-साथ शृंगार रसमें वर्णन हुआ है। रति-भावके प्राधान्यसे शृंगारकी प्रधानता कृष्ण-काव्यकी विशेषता है। यद्यपि इस धारामें हास्य तथा वीर रसका भी यत्र-तत्र दर्शन होता है, किन्तु प्रधानता तो शृंगार रसकी ही है।

६—कृष्ण-काव्य और भक्तिका प्रसरण—राम-भक्तिका प्रचार उत्तरी भारतमें ही अधिकतर हुआ; किन्तु कृष्ण-भक्ति मध्यप्रदेश, दक्षिणी भारत, राजस्थान और काठियावाड़ (जूनागढ़) आदि प्रान्तोंमें भी विकसित होती रही। मध्यप्रदेश एवं दक्षिणमें तो वह सम्प्रदायोंका रूप धारण कर बढ़ती रही॥‡ जिनके नाम हैं—दत्तात्रेय सम्प्रदाय, माधव

* यद्यपि सूरकी रचनामें श्रीकृष्णके शिशुकालसे गोचारण तकके क्रमशः चित्र उपस्थित हैं, जिसमें इतवृत्तात्मकताकी झलक पायी जाती है, किन्तु इनकी रचनामें मुक्तककी परम्पराका पूर्ण निर्वाह है। प्रत्येक पद अपनेमें पूर्ण एवं स्वतन्त्र है। इनमें पूर्वापर सम्बन्ध-योजना नहीं दिखाई पड़ती।

‡ डा० श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए० पी-एच० डी० कृत 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास तृतीय सं० पृ० ६०५ देखिये।

पन्द्रहवीं शताब्दी ही है। इस मतमें भगवान् श्रीकृष्णके संकीर्तनको प्रमुख स्थान दिया जाता है।

५—चैतन्य सम्प्रदाय—इस मतकी सोलहवीं शताब्दीमें स्थापना हुई। विश्वम्भर मिश्रने, जिनका दूसरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य था, ईश्वर-पुरीके सिद्धान्तोंके अनुसार श्रीमद्भागवत महापुराणमें वर्णित भक्तिका आदर्श स्वीकार किया। इन्होंने जिन पदोंको गा-गाकर इस सम्प्रदायका प्रचार किया, उनमें जयदेव, चण्डीदास और विद्यापतिके श्रीकृष्ण विषयक पद मुख्य हैं। श्रीकृष्ण-भक्तिमें महाप्रभुचैतन्यने राधाको विशेष स्थान दिया। इसका प्रचार सम्पूर्ण उत्तरी भारतमें हुआ। इस मतके अनुयायियोंमें सार्वभौम, ओड़ीसाधिपति, प्रतापरुद्र तथा रामानन्द राय प्रमुख थे। राधाकृष्ण सम्बन्धी पदोंकी रचना करनेवाले कवियोंमें और चैतन्यकी भक्तिका प्रचार करनेवालोंमें नरहरि, वासुदेव तथा वंशी यादव विशेष उल्लेखनीय हैं। इस मतके संगठनकर्त्ता नित्यानन्द थे और रूप एवं सनातनने वृन्दावनके निकट धर्म-तत्त्वका स्पष्टीकरण किया। इस मतमें दार्शनिक दृष्टिकोणके विचारसे निम्बार्कका द्वैताद्वैत मत ही ग्राह्य है। इस मतकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जाति-बन्धनका [illegible] प्रतिबंध नहीं है।

हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंके अतिरिक्त विदेश—खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, ब्रह्मदेश, रूस एवं अन्य पाश्चात्य देशों, मिशनरियों—में प्रचलित रामकथाका संक्षिप्त परिचय और विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लेखकने गोस्वामी तुलसीदासकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति, रामकथा-संबंधी दार्शनिक-भावना, कला-पक्ष, रचना-शैली, तुलसीकी राम-कथाका संगठन, रामचरित-मानसके आधारग्रन्थ, तुलसीकी राम-कथाकी विशेषता, तुलसीदास और उनका युग, कविकी राम-कथा सम्बन्धी अन्य रचनाएँ, भाषा-सम्बन्धी विचार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर आधिकारिक ढंगसे प्रकाश डाला है, जो राम-कथाके प्रेमी पाठकों, छात्रों एवं अन्य राम-कथाके जिज्ञासुओंके लिए विशेष लाभप्रद है इस पुस्तकमें कितनी ही नवीन बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

२—साहित्य-दर्शन ४॥)

१ समालोचना और हिन्दीमें उसका विकास, २ गोस्वामी तुलसी-दासका समाजवाद, ३ कामायनी और बुद्धिवाद, ४ देव और बिहारी एक तुलनात्मक दृष्टि, ५ प्रेमचन्द्रका महत्व, ६ 'पंत'का युगदर्शन, ७ 'कुरुक्षेत्र' ८ सद्गुरु और संत, ९ मीराका धार्मिक-सम्प्रदाय, १० भारतेन्दुकी छन्द योजना, ११ हिन्दी-साहित्यमें भ्रमरगीत परंपरा, १२ छायावादकी देन, १३ हिन्दीका प्राचीन खड़ी बोली गद्य, १४ प्रग-तिवादी कबीर, १५ महाकवि चन्दवरदायी, १६ महाकवि सूरकी काव्य-साधना, १७ अपभ्रंश काव्य एक विहंगम् दृष्टि, १८ जायसी द्वारा पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन, आदि-आदि निबन्ध हैं।

३—साहित्य-परीक्षण ३)

१ भारतीय काव्य-मत, २ भारतीय नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, ३ हिन्दीमें गीति-काव्यका विकास, ४ रहस्यवाद-छायावाद, ५ छाया-वादका शास्त्रीय परीक्षण, ६ साहित्य और सहज भाषा, ७ यथार्थ और प्रतीक, ८ आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध-काव्य, ९ साहित्य एवं परिस्थिति आदि निबन्ध हैं।

उन्हींको प्रधानता दी है। इस मतमें भगवान् श्रीकृष्णके संकीर्तनको प्रमुख स्थान दिया गया है।

५—चैतन्य सम्प्रदाय—इस मतकी सोलहवीं शताब्दीमें स्थापना हुई। विश्वम्भर मिश्रने, जिनका दूसरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य था, ईश्वरपुरीके सिद्धान्तोंके अनुसार भागवतपुराण महापुराणमें वर्णित भक्तिका आदर्श स्वीकार किया। इन्होंने जिन पदोंको गा-गाकर इस सम्प्रदायका प्रचार किया, उनमें जयदेव, चण्डीदास और विद्यापतिके श्रीकृष्ण विषयक पद मुख्य हैं। श्रीकृष्ण-भक्तिमें महाप्रभु चैतन्यने राधाको विशेष स्थान दिया। इसका प्रचार सम्पूर्ण बंगाल प्रान्तमें हुआ। इस मतके अनुयायियोंमें सार्वभौम, [illegible], प्रतापरुद्र तथा रामानन्द राय प्रमुख थे। राधाकृष्ण सम्बन्धी पदोंकी रचना करनेवाले कवियोंमें और चैतन्यकी भक्तिका प्रचार करनेवालोंमें नरहरि, वासुदेव तथा वंशी यादव विशेष उल्लेखनीय हैं। इस मतके संगठनकर्त्ता नित्यानन्द थे और रूप एवं सनातनने वृन्दावनके निकट धर्म-तत्त्वका स्पष्टीकरण किया। इस मतने दार्शनिक दृष्टिकोणके विचारसे निम्बार्कका द्वैताद्वैत मत ही ग्रहण किया है। इस मतकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जाति-बन्धनका विशेष प्रतिबंध नहीं है।

६—वल्लभ सम्प्रदाय—इस मतके संस्थापक आचार्य वल्लभ थे, जिन्होंने विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीमें इसकी स्थापना की। 'पुष्टि'के दो सिद्धान्त इस मतमें मान्य हैं। दार्शनिक दृष्टिकोणसे इस मतमें शुद्धाद्वैतके ही नियम प्रचलित थे। वल्लभाचार्य एवं विट्ठलनाथके

सम्मतियाँ

'मैंने श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीकी 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी है। अनेक बातोंका स्पष्टीकरण अच्छा किया गया है। मुझे पुस्तक बड़ी उपयोगी प्रतीत हुई।

अध्यक्ष—हिन्दी-विभाग — हस्ताक्षर—
सागर विश्वविद्यालय, सागर — —आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी

'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक मैंने देखी। पुस्तक अध्ययन और परिश्रमसे लिखी गई है। विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। श्रीचतुर्वेदीजी इस क्षेत्रमें निरन्तर आगे बढ़ते रहें, यही मेरी इच्छा है।'

हस्ताक्षर—
साकेत — —डा० श्रीरामकुमार वर्मा,
प्रयाग — एम० ए० पी-एच० डी०

'मैंने पं० सत्यदेव चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी। पुस्तकमें अनेक विषयोंका विवेचन अच्छी तरह किया गया है। यह छात्रोंके लिए नितान्त उपादेय है। साहित्यके अन्य जिज्ञासु भी इससे लाभ उठा सकते हैं।'

हस्ताक्षर—
प्रयाग विश्वविद्यालय, — —डा० श्रीउदयनारायण तिवारी
प्रयाग। — एम० ए० पी-एच० डी०

'श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीकृत यह ग्रन्थ शोधपूर्ण है। अपने अध्यवसाय, साधना, अनुसंधान तथा दृष्टिकोणके सहारे उन्होंने प्रस्तुत पुस्तकमें ताजगी ला दी है। विद्यार्थी तो इससे लाभान्वित होंगे ही, साधारण पाठक-वर्ग भी इससे प्रेरणा ग्रहण करेगा। मैं श्रीचतुर्वेदीजीको उनके इस महत्वपूर्ण ग्रन्थके लिये साधुवाद देता हूँ।'

१

साहित्य सम्पादक, अमृत-पत्रिका, प्रयाग।

रह सका। श्रीकृष्णकी उपासनाके अन्तर्गत चैतन्य महाप्रभुने माधुर्य भाव-प्रवणतासे उनकी दाम्पत्य-प्रेमकी व्यंजना की। इस प्रेमके अलौकि रहस्यकी धारा अपने वास्तविक रूपमें विशेष दूर तक प्रभावित न हो स उसके आध्यात्मिक स्वरूपको भिन्न-भिन्न भक्तों तथा कवियोंने भिन्न-भिन्न से ग्रहण किया। अर्थात् प्रेमके क्षेत्रमें प्रेम ही का पतन हुआ या यो सकते हैं कि उसमें सांसारिक तथा पार्थिव आकर्षणकी विकृताव आ गई।

कृष्ण-काव्यकी एक विशेषता यह है कि राम-काव्य धाराके समाना प्रवाहित होते हुए भी यह काव्य-धारा राम-काव्यसे प्रभावित न हो स क्योंकि राम-काव्यके मर्यादावाद और दास्य-भावके प्रभाव कृष्ण-काव्य नहीं पड़ सके। कृष्ण-काव्यके अन्तर्गत मूल प्रेरक शक्ति राधा रही हैं इस काव्य-धाराके माध्यमसे राधाका क्रमिक विकास होता रहा। भावधाराको लक्ष्य करके साहित्यकारोंने जो भावना अपनायी थी, उ मूलमें प्रेम और शृङ्गारकी भावना प्रधान थी। कृष्ण-काव्यके अन्त वर्ण्य-विषयको नवीनतम बनानेकी चेष्टाकी जाती रही, जिससे यह वि अति चिरन्तन होने पर भी नवीन हो बना रहा। एक बात और थी कृष्ण-काव्यके कवियोंमेंसे किसी भी कविने मानवकी समग्र प्रवृत्तियों उस प्रकार समाधान न उपस्थित किया, जिस प्रकार राम-काव्यधार तुलसीदासने आदर्शकी स्थापना करते हुए मानवीय प्रवृत्तियों पर अन्ति समाधान उपस्थित किया था।

⊙

सम्मतियाँ

'मैंने श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीकी 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी है। अनेक बातोंका स्पष्टीकरण अच्छा किया गया है। मुझे पुस्तक बड़ी उपयोगी प्रतीत हुई।

अध्यक्ष—हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

हस्ताक्षर—
—आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी

'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक मैंने देखी। पुस्तक अध्ययन और परिश्रमसे लिखी गई है। विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। श्रीचतुर्वेदीजी इस क्षेत्रमें निरन्तर आगे बढ़ते रहें, यही मेरी इच्छा है।'

साकेत
प्रयाग

हस्ताक्षर—
—डा० श्रीरामकुमार वर्मा,
एम० ए० पी-एच० डी०

'मैंने पं० सत्यदेव चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'हिन्दी-काव्यमें भक्तिकालीन साधना' पुस्तक देखी। पुस्तकमें अनेक विषयोंका विवेचन अच्छी तरह किया गया है। यह छात्रोंके लिए नितान्त उपादेय है। साहित्यके अन्य जिज्ञासु भी इससे लाभ उठा सकते हैं।'

प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग।

हस्ताक्षर—
—डा० श्रीउदयनारायण तिवारी
एम० ए० पी-एच० डी०

'... [illegible] देव चतुर्वेदीकृत यह ग्रन्थ शोधपूर्ण है। अपने अध्यवसाय, ...धान तथा दृष्टिकोणके सहारे उन्होंने प्रस्तुत पुस्तकमें साजगी ... [illegible] इससे लाभान्वित होंगे ही, साधारण पाठक- ...करेगा। मैं श्रीचतुर्वेदीजीको उनके इस ... देता हूँ।'

हस्ताक्षर—

सहायक-ग्रन्थों की सूची—

१—'श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण', २—'श्रीमद्भागवत महापुराण' ३—'महाभारत', ४—'अध्यात्म-रामायण' ५—'कवितावली', ६—'गीतावली', ७—'दोहावली', ८—'रामचरित-मानस'—९'उपनिषदांक', १०—'हिन्दू-संस्कृति अंक'—(गीताप्रेस, गोरखपुर)। ११—'विनय-पत्रिका', और १२—'ब्रजमाधुरीसार'—श्रीवियोगिहरि। १३—'गोस्वामी तुलसीदास' और १४—'कबीर-ग्रन्थावली'—(बाबू श्यामसुन्दरदास)। १५—'कबीर' और १६—'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका'—आचार्य श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी। १७—'तुलसीदास'—डा० माताप्रसाद गुप्त। १८—'दर्शन-दिग्दर्शन—श्रीराहुलसांकृत्यायन। १९—'सूरदास', 'सूरसागर', और 'मानसोक'—आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी। २०—'हिन्दी साहित्यका इतिहास', २१—'जायसी ग्रन्थावली', २२—'गोस्वामी तुलसीदास' २३—'त्रिवेणी'—आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल। २४—'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', २५—'कबीरका रहस्यवाद' २६—'सन्तकबीर'—डा० श्रीरामकुमार वर्मा। २७—'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा २८—'रामचरित-मानस'—श्रीरामनरेशत्रिपाठी। २९—'तुलसीदास और उनका युग'—डा० श्रीराजपति दीक्षित। ३०—'श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका'—श्रीरामदास गौड़। ३१—'हिन्दी-प्रेमाख्यानक-काव्य'—डा० श्रीकमलकुल श्रेष्ठ। ३२—'तुलसी दर्शन'—श्रीबलदेव उपाध्याय। ३३—'राम-कथा'—रेवरेण्ड फ़ादर कामिल बुल्के ३४—'पूर्वी-पश्चिमी-दर्शन'—डा० श्रीराजदेव उपाध्याय। ३५—'तसव्वुफ अथवा सूफीमत'—श्रीचन्द्रबली पाण्डेय। इनके अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि।

हमारे प्रकाशन

१—गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा ४।)

इस ग्रन्थमें राम-कथाकी उत्पत्ति, उसके प्रसार अर्थात् ऋग्वेदसे प्रारंभकर, पुराण-साहित्य, अन्य संस्कृत-साहित्य, प्राकृत, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, काश्मीरी, बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, आसमी,

हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंके अतिरिक्त विदेश—खोतान, चीन, तिब्बत, इन्दोनेशिया, इन्दोचीन, ब्रह्मदेश, रूस एवं अन्य पाश्चात्य देशों, मिशनरियों—में प्रचलित रामकथाका संक्षिप्त परिचय और विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लेखकने गोस्वामी तुलसीदासकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति, रामकथा-संबंधी दार्शनिक-भावना, कला-पक्ष, रचना-शैली, तुलसीकी राम-कथाका संगठन, रामचरित-मानसके आधारग्रन्थ, तुलसीकी राम-कथाकी विशेषता, तुलसीदास और उनका युग, कविकी राम-कथा सम्बन्धी अन्य रचनाएँ, भाषा-सम्बन्धी विचार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर आधिकारिक ढंगसे प्रकाश डाला है, जो राम-कथाके प्रेमी पाठकों, छात्रों एवं अन्य राम-कथाके जिज्ञासुओंके लिए विशेष लाभप्रद है इस पुस्तकमें कितनी ही नवीन बातोंपर प्रकाश डाला गया है।

२—साहित्य-दर्शन ४॥)

१ समालोचना और हिन्दीमें उसका विकास, २ गोस्वामी तुलसी-दासका समाजवाद, ३ कामायनी और बुद्धिवाद, ४ देव और बिहारी एक तुलनात्मक दृष्टि, ५ प्रेमचन्द्रका महत्व, ६ 'पंत'का युगदर्शन, ७ 'कुरु-क्षेत्र' ८ सद्गुरु और संत, ९ मीराका धार्मिक-सम्प्रदाय, १० भारतेन्दुकी छन्द योजना, ११ हिन्दी-साहित्यमें भ्रमरगीत परंपरा, १२ छायावादकी देन, १३ हिन्दीका प्राचीन खड़ी बोली गद्य, १४ प्रग-तिवादी कबीर, १५ महाकवि चन्दवरदायी, १६ महाकवि सूरकी काव्य-साधना, १७ अपभ्रंश काव्य एक विहंगम् दृष्टि, १८ जायसी द्वारा पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन, आदि-आदि निबन्ध है।

३—साहित्य-परीक्षण ३)

१ भारतीय काव्य-मत, २ भारतीय नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, ३ हिन्दीमें गीति-काव्यका विकास, ४ रहस्यवाद-छायावाद, ५ छाया-वादका शास्त्रीय परीक्षण, ६ साहित्य और सहज भाषा, ७ यथार्थ और [illegible] क हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध-काव्य, ९ साहित्य एवं [illegible] है।

५—अमितवेग

इस ग्रन्थमें 'गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा' प्रवर हनुमान्का दिगन्त-विश्रुत-जीवन-चरित आध्यात्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक यात्मक दृष्टिकोणसे अपनाकर रचनाकी गयी है। इ संबंधमें श्रीराम-कथाके पारगत मनीषी रेवरेण्ड फादर है :—'हनुमान्की लोक-प्रियता शताब्दियों तक ब स्वरूप उनके संबंधमें असंख्य कथाओंका प्रचलन हु एक ही कथा सूत्रमें ग्रथित कर श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीजीने त्यके एक अभावकी पूर्त्तिकी है। आशा है, उदीयमान कविको हनुमान्के विषयमें महाकाव्य प्रदान करेगा।'

६—रानी तिष्यरक्षिता

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसकी कथा अनुपम सुन्दरी परिचारिका श्रेष्ठी तिष्यरक्षिताके प्रति अत्यधिक आसक्ति और फलस्वरूप उसे राजमहिषी अभिषिक्त किया जाना। उसका युवराज कुणालके उ हो प्रणय-निवेदन और दृढ़ चरित्र कुणाल द्वारा उसे रानी तिष्यरक्षिताका षड़यंत्र द्वारा कुणालकी आँखें न वेशमें स्थित होकर राज्य-त्याग कर देशाटन करने उसके षड्यंत्रका उद्घाटन, रानी तिष्यरक्षिताको प्राण आदि घटनाएँ अत्यन्त मार्मिक ढंगसे वर्णित हैं। य करुण और निर्वेद तीनोंके सम्मिश्रणसे निर्मित हुई है

७—ललित कथाएँ

महाभारतकी चुनी हुई कहानियोंका अनुपम संग्रह

प्राप्ति स्थान—